

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178991

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83.1
Accession No. H 70
Author SGAR
Title सुदर्शन
1948

This Book should be returned on or before the date
last marked below.

पनघट

[चौदह कहानियों का संग्रह]

सुदर्शन



वोरा एंड कंपनी, पब्लिशर्स, लिमिटेड

३, राउंड बिल्डिंग, बम्बई २

तीसरा संस्करण

मई १९४८

मूल्य साढ़े तीन रुपये

पनघटकी कहानी

नया लेखक कहानी लिखने बैठा, तो कलमने कहा—बोल, क्या लिखूँ ?

लेखक सोचमें पड़ गया कि क्या कोई ऐसा बाग़ नहीं, जहाँ कहानियाँ वृक्षोंकी तरह उगती हों ? आदमी जाए, दो-चार मन-माफ़िक कहानियाँ तोड़ लाए, और उन्हें बनाकर, सजाकर, शीशिकी तरह चमकाकर किताबोंके पन्नोंपर रख दे ।

और लोग उन शीशा फूलोंमें अपना आत्मा देखें, और कभी सुखी हों, कभी दुखी हों, कभी उन्हें झूठा कहकर उनकी तरफ़से मुँह मोड़ लें ।

पाससे एक बूढ़ा गुज़र रहा था । उसने नए लेखककी हैरानीको देखा और कहा—मैं एक ऐसी जगह जानता हूँ, जहाँ कहानिया वृक्षोंका तरह उगती हैं, बड़ी होती हैं, फलती-फूलती हैं । और वहाँ इतनी कहानियाँ हैं कि अगर तू हर रोज़ एक कहानी तोड़े और सारी उम्र तोड़ता रहे, तब भी उनमें कमी न आए, और वह सदा-बहार बाग़ उसी तरह लहलहाता रहे ।

नया लेखक बूढ़ेके साथ साथ चलने लगा ।

पहले शहरकी तंग गलियाँ मिलीं । वहाँ सादगी खेलती थी, प्यार मुस्कुराता था, चिन्ता देखती थी । लेखक वहीं रुक गया और बोला—यहाँ कहानियाँ हैं ।

मगर बूढ़ेने कहा—अभी आगे ।

इसके बाद वे दोनों खुले बाज़ारमें आए । वहाँ बेशरमी नाचती थी, मुस्कुराती थी, गाती थी, और उसके गलेकी तानें सुननेके लिए सैकड़ों लोग अपने घरोंसे दौड़े आते थे । नया लेखक वहीं ठिठक गया और बोला—कहानियाँ यहाँ भी हैं ।

मगर बूढ़ेने जवाब दिया—अभी और आगे ।

इसके बाद हवेलियाँ और कोठियाँ आईं। वहाँ अमीरीके चोचले थे, दिलोकी निर्दयता थी, और शान और शौकत थी। नौजवान लेखक वहीं ठहर गया और बोला—कहानियाँ यहाँ भी तो हैं।

मगर बूढ़ेने जवाब दिया—अभी और आगे आओ।

इसके बाद खेत मिले। वहाँ मेहनत और मजदूरी और गरीबी ज़मीनपर काम करती थी, आसमानपर आशा दूँदती थी, और अपने अँधेरेमें बैठकर रो लेती थी। नए लेखकने आग्रहसे कहा—कहानियाँ यहाँ भी हैं।

मगर बूढ़ा बोला—अभी और आगे आओ।

अब दोनों पनघटके पास पहुँच गए। वहाँ अबोध बचपन था, कुंवारी जवानियाँ थीं, और ब्याहे हुए रूप थे।

वहाँ खिले हुए दिले थे, लहलहाती हुई आशाएँ थीं, और झुमती हुई उमंगें थीं।

वहाँ उजड़ी हुई शरम थी, और ठुकराया हुआ प्यार था, और मुरझाई हुई मेहनत थी।

बूढ़ेने पनघटपर बसे हुए इस संसारकी तरफ़ इशारा किया और कहा—यही वह जगह है, जहाँ कहानियाँ उगती हैं, बढ़ी होती हैं, फलती-फूलती हैं। यहींसे कहानियाँ गलियोंमें जाती हैं, यहींसे बाजारोंमें जाती हैं, यहींसे कोठियोंमें जाती हैं, यहींसे खेतोंमें जाती हैं।

यही कहानियोंका बाग़ है, और यहाँ इतनी कहानियाँ उगती हैं कि अगर तू यहाँसे हर रोज़ एक कहानी तोड़े और अपनी सारी उम्र तोड़ता रहे, जब भी इनमें कमी न आएगी, और कहानियोंका यह सदा-बहार बाग़ इसी तरह लहलहाता रहेगा।

लेखक खुश हो रहा था और उसकी निगाहें अपने लिए कहानीका चुनाव करनेके लिए कहानियोंके बाग़में इधर उधर दौड़ती फिरती थीं।

माहिम-बम्बई }
९ सितम्बर १९३९ }

सुदर्शन

सूची

१ काव्य-कल्पना	...	...	७
२ चित्रकार	...	...	१७
३ सूरदास	...	...	३५
४ प्रतापके पत्र	..	...	५८
५ खरा खोटा	...	...	७५
६ बापका हृदय	...	...	९२
७ मास्टर आत्माराम	...	...	११२
८ साइकिलकी सवारी	...	...	१२८
९ दो परमेश्वर	...	...	१४३
१० मजदूर	...	...	१४६
११ कीर्तिका मार्ग	...	...	१६४
१२ धर्मकी वेदीपर	...	...	१८०
१३ जीवन और मृत्यु	...	...	१९८
१४ हेर-फेर	...	...	२३३

पनघट

काव्य-कल्पना

१

महाराज श्रीहर्षकी गिनती संस्कृतके उन मशहूर कवियोंमें होती है, जिनका नाम अजर और अमर है। भारतवर्षमें गंगा जमना और हिमालय के साथ हर्ष भी सदा जीता रहेगा। उनकी काव्य-कल्पना देखकर लोग आज भी हैरान रह जाते हैं। उनका अधिक समय काव्य-रचनाकी भेंट होता था। उनको अपने राज्यकी इतनी परवा न थी, जितनी कविताकी। श्रीहर्ष प्रायः कहा करते थे—मेरा असली राज्य वह है, जिसपर मेरे विचारोंका शासन है। धरतीका राज्य छिन सकता है, बदल सकता है, नाश हो सकता है। मगर कविता का राज्य वह राज्य है, जिसमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। यहाँ तक कि उसे मौतकी ठंडी उँगलियाँ भी नहीं छू सकती। महाराज अपने ख्यालमें तन्मय रहते, और काव्य और कला, जीवन और ज्योति, प्रेम और पवित्रताके कभी नाश न होने वाले संसारके स्वर्गीय सुपने देखा करते।

एक दिन महाराज बाग़में बैठे थे। सन्ध्याका समय था। दृबते हुए सूरजकी पीली किरणें गुलाबके खूबसूरत फूलोंसे विदा हो रही थीं, और प्रकृति-माताके इन मनोहर बच्चोंको अपनी उदासीनता दे रही थी, जैसे हर स्त्री अपनी सखीके धरसे चलते समय उसके बच्चोंको कुछ न कुछ देना अपना कर्तव्य समझती है। उद्यान-माता अपनी सहेलियोंके वियोगका ख्याल कर करके दुखी हो रही थी, और उसके सुन्दर स्नेह-पूर्ण मुहँपर विषादकी काली लकीरें बढ़ती जाती थीं। महाराज हर्ष प्रकृतिका यह भावोत्पादक दृश्य देखते थे, और उसे लिखते जाते थे।

सहसा महाराजकी कुँवारी चन्द्रमुखी बेटी उषा उनके सामने आकर खड़ी हो गई। सायङ्कालके अन्धकारमें प्रभातका सूर्य उदय हुआ। महाराज इस समय दूसरी दुनियामें थे। कोई अमीर, कोई वज़ीर, राज्यकी कोई महानसे महान घटना भी उनके इस काव्य-काननमें पाँव नहीं रख सकती थी। यह उनकी राजसी आज्ञा थी। मगर प्रेमके लिए कोई द्वार भी बन्द नहीं। प्रेम हर जगह पहुँच जाता, है। महाराजने क्रोधसे सिर उठाया, मगर राजकुमारीको देखते ही उनके क्रोधने मुस्कराहटका रूप धारण कर लिया।

उषाने अपने कवि और महाराज पिताको पुत्रीकी प्यारभरी दृष्टिसे देखा और फिर पवित्रताकी सादगीसे मुस्कराकर कहा—तो आखिर मैंने आपको आ ही पकड़ा। मैंने महलका एक एक कोना ढूँडा, सङ्गीत-मंडपमें गई, चित्र-भवनमें देखा। परन्तु आप...

एकाएक उसने भोज-पत्र देखा, और रुक गई और उसने सङ्कोचसे सिर झुका लिया। उसको ख्याल आया, कि उससे भूल हो गई है। उसने विनय-भावसे महाराजकी तरफ़ देखा, और कहा—पिताजी, मुझे मालूम न था....

महाराजने उसके इन शब्दोंको न सुना, न उसे अपनी बात पूरी करनेका अवसर दिया। वे उठकर उसके निकट आए, प्यार से काँपता हुआ हाथ उसके सिरपर फेरा, और प्यारके इस बसमें करनेवाले अमलको जारी रखते हुए बोले,—बेटी उषा, ज़रा सूर्यकी तरफ़ देख। वह अपनी किरणोंको समेट कर काली चादरमें मुँह छिपा रहा है। उसकी किरणें फूलोंके सिरपर हाथ फेर रही हैं, जिस तरह मैं तेरे सिरपर हाथ फेर रहा हूँ। मेरे दरबारके कवि भी मेरे भाव नहीं समझ सकते। न उनके पास वह आँख है, जो शब्दोंकी सुन्दरताको देख सके, न उनके पास वह कान हैं, जो शब्दोंके संगीत को सुन सकें। मगर मुझे विश्वास है कि मेरी बात तू ज़रूर समझेगी। तू मेरी बेटी है। तेरा मन मेरे मनके सँचेमें ढला है।

महाराजने कविता सुनाई। राजकुमारीने कविता सुनी, और उसकी आँखोंकी चमक और होठोंकी मुस्कराहटने महाराजको विश्वास दिला दिया कि बेटीने बापकी कविताका भाव पूर्ण रूपसे समझ लिया है।

इसके बाद बाप-बेटी, दोनों शामके अँधेरेमें महलको खाना हुए, और उषाने बापके पीछे भाग कर उसके साथ मिलनेका प्रयत्न करते हुए बालेपनकी सादगीसे कहा—पिताजी मैं भी कविता सीखूँगी।

और महाराज, जिन्होंने इससे पहले अपनी प्यारी बेटीकी छोट्टीसे छोट्टी बातको भी नामंजूर न किया था, दिलमें सोचते थे, इसे कविता कौन सिखाएगा? यह जवान है, और कुँवारी है और सुन्दरी है। इधर कवितामें पवित्रता और संयमकी नदियाँ बहा देनेवाले कवि भी कितने साधारण, विषय-वासनाके कैस उपासक होते हैं, यह सचाई महाराज हर्ष जैसे बुद्धिमान और पण्डित कवि-सम्राट्से छिपी न थी। महाराज गंभीर हो गए।

२

वर्षाके दिन थे। आसमानपर काली घटाएँ लहराती थीं, जैसे दुखी हृदयोंपर आशा छाई रहती है। आशाके यह बादल कभी बरसते हैं,

कभी हवाके झोंकोंसे इधर-उधर उड़ जाते हैं। महाराज हर्षके दरबारमें एक सुन्दर नौजवान दंडी संन्यासी आया, और बोला—राजन्, हम संन्यासी हैं, तीन दिनसे अधिक कहीं नहीं ठहरते। मगर अब वर्षा ऋतु शुरू हो गई है, अब हमारे लिए यात्रा करनेकी मनाही है। हम बादलों और बिजलियोंके यह चार महीने कहीं ठहरना चाहते हैं। क्या तू हमारा प्रबन्ध कर सकता है ?

महाराज नवयुवक संन्यासीके चरण छूकर प्रणाम किया, और कहा—महाराज मैं और मेरा सारा राज्य आपकी सेवाके लिए उपस्थित है। मानसरोवरके आज्ञाद राजहंसोंको पिंजरेमें खुश रखना आसान नहीं, मगर मैं अपनी राज-सत्ताकी सम्पूर्ण शक्तियाँ खर्च कर दूँगा और आपको कष्ट न होने दूँगा।

संन्यासीने हाथ उठाकर महाराजको आशीर्वाद दिया, और कहा—भगवान तेरा कल्याण करेंगे।

संन्यासीको राज-महलमें जगह मिल गई, और वह वहाँ वर्षाऋतुका चौमासा काटने लगा। महाराज हर्ष संन्यासीके पास प्रायः आते-जाते रहते थे। धीरे धीरे उनको संन्यासीके सद्गुणोंका ज्ञान हुआ—वह केवल साधु ही न था, बड़ा भारी चित्रकार और बड़ा भागी कवि भी था। और इतना ही नहीं, उसे हर विद्याका पूरा पूरा ज्ञान था। जिस विषयपर बोलता, महाराज हर्ष मुँह देखते रह जाते। इस छोटी उम्रमें यह पांडित्य एक ऐसी बात थी, जो महाराजने कभी न देखी थी। और फिर नवयुवक संन्यासीका प्रफुलित चेहरा, और फले फूले जंगलमें मीठे जलसे भरे हुए दो नीले तालाबोंकी तरह दो शान्त आँखें। दुनियांने ऐसी मोहिनी किसी आदमीके मुँहपर कम देखी होगी। महाराज हर्ष संन्यासीसे जितना अधिक मिलते थे, उनके हृदयमें उसका सम्मान उतना ही बढ़ता जाता था। उन्होंने उस छोटी उम्रके साधुकी हर तरहसे परीक्षा की, और वह हर तरहसे खरा सोना निकला। आदमियोंमें कई दोष होते हैं, संन्यासीमें एक भी न था।

महाराज एक दिन बड़ी नम्रतासे बोले,—स्वामीजी, राजकुमारी कविता सीखना चाहती है। मैंने बहुत ढूँढा, मगर ऐसा आदमी कोई न मिला, जिसपर विश्वास किया जाए।

संन्यासीने आधी बातसे पूरी बात समझ ली, और बिना सझाचके जवाब दिया,—जब तक हम यहाँ हैं, हम पढ़ा दिया करेंगे।

महाराजके मनकी मुराद पूरी हो गई। राजकुमारी कविता सीखने लगी। संन्यासी कविता सिखाने लगा। वर्षों के दिन बीतने लगे।

३

चार महीनेके बाद महाराजने संन्यासीसे पूछा—कहिए राजकुमारी उपाने क्या कुछ सीखा?

संन्यासीने मनका मोह लेनेवाली बड़ी बड़ी और सतेज आँखोंसे महाराजकी तरफ़ देखा, और मुस्कराकर जवाब दिया,—कवि बाप की बेटी है, बहुत कुछ सीख चुकी। इतने थोड़े समयमें कोई दूसरी लड़की कुछ भी न सीख सकती। मगर राजकुमारीका कविता देखकर तो हम भी हैरान रह जाते हैं।

महाराजको आश्चर्य हुआ—मगर केवल चार महीनोंमें?

संन्यासीने जवाब दिया—राजन्, कवि बनते नहीं, पैदा होते हैं। आगकी चिनगारियाँ राख तले छिपी रहती हैं; कविताकी कला सीनेमें सोई रहती है। गुरुका काम केवल यह है कि राख हटाकर कविताकी उन चिनगारियोंको सचेत कर दे, आग अपने आप सुलगने लगेगी। इसके लिए यत्न करनेकी भी ज़रूरत नहीं। हवाके झोंके ही उसके लिए धीके छींटे बन जाते हैं। राजकुमारीमें यह शक्तियाँ पहले ही मौजूद थीं, हमने उन्हें केवल ज़रा सा कुरेद कर जगा दिया है, और अब वह सुन्दर भाषा और सुन्दर भावोंकी विद्यामें प्रवीण हो चुकी है।

महाराजने उल्लास, अभिमान और आश्चर्यसे अपनी बेटीकी तरफ़ देखा। वह ज़मीनकी तरफ़ देख रही थी।

महाराजने कहा—उषा !

उषाने सिर उठाकर बापकी तरफ़ देखा, और लजाकर सिर झुका लिया।

महाराज—अपनी कोई कविता सुनाओगी ना ?

राजकुमारीने उसी तरह भूमिकी तरफ़ देखते हुए सिरके इशारेसे कहा—नहीं।

महाराज— क्यों ?

राजकुमारीने जवाब न दिया।

महाराज— सुनाओ बेटी, कोई अच्छीसी कविता सुनाओ।

उषाने सिरकी साड़ी माथेपर खींचते हुए धीरेसे कहा—आपको पसन्द न आएगी।

अब संन्यासी चुप न रह सका, बोला— उषादेवी, यह तुम्हारी ही परीक्षा नहीं, मेरी भी परीक्षा है। गुरुके पढ़ाएकी लाज रख लेना !

उषाने अपनी कविताओंको उलट-पुलट कर देखा, कि क्या करे, पर निश्चय न कर सकी। बेवसीसे बोली—क्या सुनाऊँ ?

संन्यासी— कुछ सुना दो। मिसरी हर तरफ़से मीठी होती है।

राजकुमारीने साहस करके कहा—कवितापर कुछ लिखा है, वही सुनाए दूँगी।

उसने बोलना चाहा, पर जीभ न खुली। महाराजने संन्यासीसे कहा—आप ही पढ़ दें। इसे शर्म आती है।

संन्यासीने पढ़ना शुरू किया:—

“कविताका कविसे वही नाता है, जो नव-विवाहित रमणीका अपने पतिसे है। पति स्त्रीको छूना, पकड़ना,

गले लगाना चाहता है। मगर नव-वधू लजाती है, अपने आपको बचाती है, और एक तरफ़ भाग जाती है। कविताकी भी यही दशा है। वह कभी कविके सामने आज्ञाकारी नौकरकी तरह सिर झुकाकर खड़ी हो जाती है, कभी उसकी तरफ़ देखकर बे-अदब लड़केकी तरह हँसती है। कभी लज्जासे मुँह छिपा लेती है, और कभी, जब कवि उसके बहुत निकट पहुँच जाता है, तो चञ्चल हरिणीकी तरह कुलाँचें भर कर दूर चली जाती है। कभी ज़रा-सी बातमें सिर झुका लेती है, कभी निर्लज्ज-भावसे अपनी दोनों भुजाएँ पतिके गलेमें डाल देती है।”

राजकुमारीकी यह कविता कैसी मनोहर थी, कैसी भावमयी, और इसके साथ ही कितनी सादी ! इसमें पेचीदगी न थी, न कोई ऐसा गोरखधन्वा था, जिसे समझनेके लिए घंटों हैरान और परेशान होना पड़े। खयाल नया भी था, ऊँचा भी था, और अस्वाभाविक न था। यही कविता किसी दूसरंकी होती, तो महाराज उसे निहाल कर देते। मगर बेटीकी लिखी हुई प्रेम और यौवनकी यह अमर कहानी सुनकर उनकी आँखोंमें खून उतर आया। सोचने लगे—यह कुंवारी लड़की स्त्री-पुरुषके प्यार-मुहब्बतकी बातें क्या जाने ? इसने यह दृश्य कब देखा ? उनके दिलमें एक सन्देह पैदा हुआ, उन्होंने नवयुवक संन्यासीको चुभती हुई दृष्टिसे देखा, और स्थितिको समझनेका यत्न करने लगे। क्या सोना भी आगमें पड़कर खोटा हो गया ! परन्तु संन्यासी हँस रहा था। उसके मुँहपर ज़रा भी भय, उसकी आँखोंमें ज़रा भी सङ्कोच न था। महाराज असमंजसमें पड़ गए। यह चेहरा पापका चेहरा न था ! पाप टेढ़ी आँखोंके सामने सिर नहीं उठा सकता, न उसमें हँसनेका साहस होता है। मगर महाराज फिर भी सोचते थे। उषाने प्यारकी कविता कैसे लिखी ?

महाराज कुछ देर चुप-चाप बैठे सोचते रहे, फिर उठकर धीरे धीरे चले गए। संन्यासी महाराजके मनकी बात समझ गया।

दूसरे दिन महाराजने संन्यासीको विदा करनेके लिए दरबारमें बुलाया, एक हजार एक मुहरोंका थाल उसको भेंट किया, और कहा—यह आपकी दक्षिणा है।

संन्यासीने मुहरोंके थालको अवहेलनाकी दृष्टिसे देखा और कहा—राजन्, तू कवियोंमें राजा, और राजाओंमें कवि है। यह दक्षिणा तेरे योग्य नहीं है। तू हमें अपने योग्य दक्षिणा दे।

महाराजने आश्चर्यसे संन्यासीकी तरफ देखा। मगर संन्यासी मुस्कुरा रहा था—हम मुँहमाँगी दक्षिणा चाहते हैं।

महाराजने अधीनतासे सिर झुकाकर कहा—संन्यासी आज्ञा दे, राजा पालन करेगा।

सारे दरबारी हैरान थे, कि देखें संन्यासी क्या माँगना है ?

संन्यासी बोला—राजन्, कोई अपनी बुद्धियासी कविता सुना दे, हमारी यही दक्षिणा होगी।

दरबारियोंकी आँखें खुली रह गईं। वे दिलमें सोचते थे, संन्यासीने सुनहरा अवसर खो दिया।

महाराजने पूछा—किस विषयपर ?

संन्यासी—किसी गरीबके घरका दृश्य दिखा दे।

महाराजने भोज-पत्र लिया और एक तरफ बैठ गए। आध घंटेके बाद महाराज बोले—कविता तैयार है।

संन्यासी—पढ़ो।

महाराजने कविता पढ़नी शुरू की—

“वर्षा ऋतु है, आसमानपर काले बादल उमड़े हुए हैं।

मगर इससे भी काले बादल गरीब हतभागिनी बुद्धियाके दिलमें छाए हुए हैं। आसमानके बादलोंमें कभी कभी

बिजली भी चमक जाती है। मगर बुढ़ियाके दिलमें सदा अँधेरा है। वहां बिजली कभी नहीं चमकती।

लूतसे पानी टपक रहा है, और इस समाप्त न होनेवाले टपकेसे बुढ़ियाके कच्चे फर्शमें जगह जगहपर गढ़े बन गए हैं। पानीकी बूँदें उन गढ़ोंमें गिरती हैं तो गढ़ोंका पानी चारों तरफ़ उड़ता है, और आसपासके फर्शको भी गीला कर देता है। मगर इनसे भी गहरे गढ़े बुढ़ियाके दिलमें बने हुए हैं।

सायङ्कालके अँधेरेमें लोग अपने अपने घरोंके दीपक जला रहे हैं मगर बुढ़ियाके दिएका तेल, कई दिन हुए समाप्त हो चुका है, और बत्ती कभी की जल चुकी है।

उसके चूल्हेमें कई दिनसे आग नहीं जली। वहाँ मकड़ीने जाल बुन दिया है। उसके घरके चूहे भाग गए हैं, और चमगादड़ इधर-उधर उड़ते फिरते हैं।

यह कविता नहीं थी, किसी हत-भागके घरका चित्र था; मगर कितना सजीव, कैसा हृदय-वेधक ! दरबारियोंने 'वाह-वा' की ध्वनिसे दरबार सिरपर उठा लिया, मगर संन्यासी चुप था।

महाराजने उसकी तरफ़ देखा। संन्यासीने कहा—राजन्, तेरी कविता सचमुच बहुत सुन्दर और भावमयी है। मगर....”

दरबारी, वज़ीर, राजा, सब संन्यासीकी तरफ़ देखने लगे। संन्यासीने कहा—मगर मालूम होता है, तू किसी राजेका पुत्र नहीं, किसी ग़रीब कङ्कालका बेटा है।

दरबारी सन्नाटेमें आ गए। महाराजकी आँखोंसे आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं। उन्होंने तलवारकी म्यानपर हाथ रख कर कहा—संन्यासी, मैं यह अपमान नहीं सह सकता। तू मुझे गालियाँ दे रहा है। और मेरे हाथमें तलवार है।

संन्यासी—तूने यह कविता कैसे तैयार की ? तू राजा है, तूने महलों में जनम लिया है, तू चांदी-सोने में पला है । तूने गरीबी नहीं देखी । तू किसी गरीबके घरका हाल क्या जाने ?

महाराजने उसी तरह क्रोध-भरे स्वरमें कहा—काव्य-कल्पनासे कवि वह कुछ देख सकता है, जो दूसरे खुली आँखोंसे भी नहीं देख सकते ।

संन्यासीने मुस्कराकर जवाब दिया—ऋविराज, तूने ठीक कहा । लेकिन अगर तू राजेका बेटा होकर काव्य-कल्पनाकी सहायतासे गरीबके घरकी दशा देख सकता है, तो तेरी कुंवारी बेटी स्त्री-पुरुषकी प्रेम-लीलाका हाल क्यों नहीं जान सकती ? तूने मुझे सन्देहकी दृष्टिसे देखा था । तेरो आँखें लाल हो गई थीं । तूने समझा था, संन्यासीकी इन्द्रियाँ उसके बसमें नहीं । मगर तेरा सन्देह निर्मूल था । मैं संन्यासी हूँ, दुनियाकी हर एक लड़की मेरी बेटी है ।

यह कहते कहते संन्यासी ने अपना करमंडल उठाया, और दरबारसे बाहर निकल गया ।

महाराजकी आँखें खुल गईं । मगर उनके मुँहसे एक भी शब्द न निकला ।

चित्रकार

१

खट, खट, खट !

किसीने जीनेका द्वार खटखटाया । ठाकुरसिंह चित्र बनानेमें लगे थे । उन्होंने आवाज़ नहीं सुनी । उनकी स्त्री गुजरीने धीरेसे कहा— कोई आया है ।

ठाकुरसिंहने चित्रपर ब्रश फेरते-फेरते मुस्कराकर जवाब दिया— तो चलो, ढड़कर अपने घोंसलेमें छिप जाओ । नहीं कोई देख लेगा, तो कहेगा, जिसकी स्त्री अपने कपड़े भी साफ़ नहीं रखती, वह चित्र क्या खाक बनाता होगा ?

गुजरीने रंगके प्यालेमें उँगली डुबोकर अपने चित्रकार पतिकी कमीज़पर दाग़ लगा दिया, और शोखीसे कहा—सिंहजी, पहले अपने कपड़े तो देख लो, इसके बाद कुछ कहनेकी हिम्मत करना ।

ठाकुरसिंह चौंककर परे सरक गए, और बोले—अरे मेरी कमीज़ खराब कर दी । कैसी पगली है ! बाहर मिलनेवाले खड़े हैं, यह अन्दर होली खेलती है ! .

गुजरीने रंगसे भरी हुई उँगली ठाकुरसिंहके मुँहके पास ले जाकर कहा—खबरदार ! तुम बोले, और मैंने तुम्हारा सारा मुँह रंग दिया ।

ठाकुरसिंह—मेरा ही मुँह रंगना जानती हो, या कुछ और भी सीखा है ? अगर किसी चित्रका मुँह रंग सको, तो चार पैसे न कमा लो ।

गुजरी—तुम फिर बोले !

ठाकुरसिंह (दबकर)—बहुत अच्छा जमादार साहब ! अब माफ़ कर दें । क्या मजाल जो एक भी शब्द बोल जाऊँ । वाह वा ! भई स्त्री तो हमें मिली है । स्त्री भी है, जमादार भी है ।

गुजरी (बनावटी क्रोधसे)—तुम फिर बोलने मांगटा । चूप रहो । कोई लोग आया है ।

ठाकुरसिंह गुजरीकी इस प्रेमपूर्ण सादगीपर लोट-पोट हो गए । वे उसे उठाकर कलेजेमें बिठा लेना चाहते थे, जहाँ उसे दुनियाकी गर्म हवा भी न लगे । इतनेमें द्वारपर फिर खटका हुआ ।

गुजरीने दबे पाँव जाकर जीनेकी जंजीर खोल दी, और भागकर अपने कमरेमें चली गई । ठाकुरसिंहने ऊँची आवाज़से कहा—चले आइए, दरवज़ा खुला है ।

आनेवाला कीमती लिबास पहने था । शक्ल-सूरतसे रोआब टपकता था । उसने ठाकुरसिंहको सिरसे पाँव तक देखते हुए कहा—मैं सरदार ठाकुरसिंह साहब आर्टिस्टसे मिलना चाहता हूँ ।

ठाकुरसिंह की आँखें झुक गईं । खयाल आया, मेरे कपड़े इतने साफ़ नहीं, जितने होने चाहिए । उन्हें ऐसा संदेह हुआ, जैसे मुँहपर मिट्टी लगी है, जैसे बाज़ारमें जाते-जाते कपड़ा फट गया है । मगर क्या हो सकता था ? धीरेसे बोले—फ़रमाइए, मैं हाज़िर हूँ ।

यह कहकर उन्होंने आनेवाल के बैठनेको कुरसी सामने रख दी । आनेवाला कुरसीपर बैठकर बोला—खूब ! मैं समझता था, आप बुढ़े होंगे । मगर मेरा खयाल ग़लत निकला । आपकी आयु तो बहुत छोटी मालूम होती है । पचीस-छब्बीस सालसे अधिक तो न होगी ।

ठाकुरसिंह—जी नहीं, मेरी उम्र तीस सालके लगभग है ।

आगन्तुक—फिर भी कम है । इस उम्रमें ऐसे चित्र बना लेना आपही का काम है । मैंने आपके कई चित्र देखे हैं । देखकर जी खुश हो जाता है । ऐसा मालूम होता है, जैसे वह चित्र नहीं, जीते-जागते जीव हैं । कभी-कभी सन्देह होता है कि वह अभी मुँह खोलकर बोलने लगेंगे । अभी चलने लगेंगे । मुझे आपसे मिलनेकी बड़ी इच्छा थी । आज चला आया ।

ठाकुरसिंह—यह आपकी मेहरबानी है, मैं तो चित्रकार कहानेके भी योग्य नहीं । यह बड़ी भारी विद्या है । इसका पार किसने पाया है ।

आगन्तुक (सुना अनसुना करके)—आपके चित्र खूब बिकते होंगे । ऐसी अच्छी चीजें न बिकेंगी, तो और क्या बिकेगा ? मगर (कमरा देखकर) आपने मकान अच्छा नहीं लिया । यह आप जैसे चित्रकारके योग्य नहीं । जो देखेगा, यही कहेगा कि नाम बड़े और दर्शन थोड़े ।

ठाकुरसिंह—कोई अच्छी जगह मिल जाय, तो मैं आज बदल लूँ । मगर जगह मिलती ही नहीं ।

आगन्तुक—मालपर चलिए, मालपर । वहाँ आपका कारबार और भी चमक जाएगा । यहाँ जो चित्र पचासको बिकता है, वहाँ सौ रुपयेमें बिकेगा । मोतीको मखमलके टुकड़ेपर रख दिया जाए, तो उसकी चमक नहीं बढ़ती, मगर मोल बढ़ जाता है । मेरा खयाल है, मालपर चलकर आप थोड़े ही समयमें कहींसे कहीं पहुँच जाएंगे । अच्छी जगह कामयाबी का पहला जीना है ।

ठाकुरसिंह—आप जैसे सज्जनोंकी शुभ-कामना फल जाए, तो एक महीनेमें सोनेके महल खड़े कर लूँ । मगर अन्धा संसार रुपयेकी कदर करता है, कलाकी नहीं । यहाँ कला कदम कदम पर ठोकरें खाती है ।

आगन्तुकने आश्चर्यकी दृष्टिसे नौजवान चित्रकारकी तरफ़ देखा, और कहा—जब तक किसी सहृदयकी नज़र न चढ़ जाए ।

ठाकुरसिंहने ब्रश हाथमें लिया, और चित्रकी तरफ़ देखकर कहा —

मगर सहृदय सज्जन दुनियामें हैं कहाँ ? अमृतके समान इस वस्तुका भी नाम सुना है, इसे देखा नहीं है ।

यह शब्द नहीं थे, चित्रकारके दिलके घाव थे । आगन्तुककी आँखोंके सामनेसे परदा हट गया । ज़रूर यह आदमी निदयी संसारका शिकार है, ज़रूर इसका दिल दुखा हुआ है । वर्ना इसके मुँहसे यह शब्द कभी न निकलते ।

थोड़ी देर बाद आगन्तुकने कहा—मैं रियासत सकंधीरका दीवान हूँ । मेरा नाम हरजस राय है । महाराजा साहब शौकीन आदमी हैं, और चित्रोंका तो उन्हें खूबत है । उन्हें खुश करना हो, तो कोई बढिया चित्र भेंट कर दो फिर जो चाहो, करा लो । ज़रा इन्कार न करेंगे । दो महीने बाद उनका जन्म-दिन है । मैं इस अवसरपर उन्हें एक बहुत ही बढिया चित्र भेंट करना चाहना हूँ । कीमतकी परवा नहीं, मैं मुँह-माँगा दाम दूँगा । मगर चित्र ऐसा हो कि एक बार तो महाराज फड़क जाएं । कहें, यह तसवीर तुम्हे कैसे मिल गई ? बस, मैं महाराजके इन चार शब्दोंका भूखा हूँ ।

ठाकुरसिंहके मनमें आशाकी गुद्गुदी होने लगी । दीवान साहबकी तरफ़ देखकर बोले—अपनी उमरमें मुझे पहली बार ऐसे सज्जनके दर्शन हुए हैं, जिसके पास कला देखनेवाली आँख, और क़दर करनेवाला दिल दोनों ह ।

दीवान साहब—बस, ऐसी चीज़ बनाओ कि महाराज उछल पड़ें ।

ठाकुरसिंह—अपने मुँहसे अपनी बड़ाई करना अच्छा नहीं लगता । मगर मैं आपको ऐसी चीज़ दूँगा कि आप खुश हो जाएँ ।

दीवान साहब—आपके जो चित्र इस समय तक देख चुका हूँ, उनसे बढिया होगा न ?

ठाकुरसिंह—इसकी चिंता न करें । रागीको जब पता लग जाए, कि उसके सामने राग-विद्याके जानकार बैठे हैं । उस समय वह मामूली चीज़ नहीं गाता ।

दीवान साहब खड़े हो गए और बोले— तो आप कब तक मुझे तसवीर दे देंगे ।

ठाकुरसिंह भी विदा करनेको खड़े हो गए और दिलमें हिसाब करके बोले—एक महीनेसे कम समयमें तो तैयार न हो सकेगा ।

दीवारपर मोटे अक्षरोंमें लिखा था — आधे दाम पेशगी । दीवान साहबने यह नियम आते ही पढ़ लिया था । ठाकुरसिंह मनमें सोचते थे, अभी बटुआ खोलते हैं, अभी नोट निकालते हैं । देखें क्या देते हैं । अमीर आदमी हैं, रुपये पैसे की परवाह नहीं और काम बढ़िया मांगते हैं । पांच सात सौसे कम क्या देंगे ? मगर दीवान साहब उठे, और फिर आनेको कहकर नीचे उतर गए । ठाकुरसिंह मुंह देखते ही रह गए । उमड़ी हुई काली घटा देखकर किसानका दिल नाचने लगा था । उसे खुशी हुई थी । मगर हवाके झोंकोंने घटाको उड़ा दिया । पानी की एक बूंद भी न बरसी ।

२

गुजरी अपने कमरेके अन्दरसे यह सब कुछ देख रही थी । दीवान साहबके जाते ही उसने कमरेसे निकल कर जीनेका द्वार बन्द कर दिया, और प्यारसे अपने निराश पतिका हाथ थाम लिया । ठाकुरसिंहकी आंखें सजल हो गई थीं । गुजरीने सहानुभूतिपूर्ण स्वरसे कहा—तुम अपना जी क्यों थोड़ा करते हो ? इस समय रुपया नहीं मिला, न सही, घबराने की क्या बात है ? मुझे तो ज़रा भी दुःख नहीं हुआ । उलटी खुशी है । मुझे तो विश्वास है कि यह आदमी हमारा सच्चा दोस्त होगा । मेरे दिलमें कोई कह रहा है कि इससे हमें लाभ पहुंचेगा । मगर उसे क्या मालूम कि यह पूरे कंगाल हैं, इनके पास पैसा भी नहीं । यह मकान, यह असबाब यह बिजली देखकर किसीको यह शक भी नहीं हो सकता है । ज़रा सोचो ।

ठाकुरसिंहने गुजरीकी तरफ़ देखा, और ठंडी साँस भरकर जवाब दिया—

आज करवा चौथ है, तुमने सुहागका व्रत रखा है, और हमारे पास एक पैसा भी नहीं। लोग खुशियां मना रहे हैं, हम बैठे भाग्यको रोते हैं।

गुजरी—मगर यह अपनी अपनी किम्मत है। जो किसमतमें लिखा है, उसे कौन मिटा सकता है? बाकी रही करवा चौथके व्रतकी बात, उसकी चिन्ता न करो। कहींसे आ जाएगा, खा लेंगे; न आएगा, भूखे सो रहेंगे।

ठाकुरसिंह—और नौकरको क्या खिलाएँगे? वह तो बच्चा है, समझता ही नहीं कि हाथ तंग है, चुप रह जाऊँ। हमारी भी क्या शान है, अपने खानेको रोटी नहीं, नौकर रख लिया!

गुजरी—इसका प्रबन्ध भी हो जाएगा। तुम अपना दिल खराब न करो, नहीं बीमार हो जाओगे।

ठाकुरसिंहको स्त्रीकी इन बातोंसे धीरज हुआ। वह समझते थे, दीवान साहबके जाते ही गुजरी उन्हें गालियाँ देने लगेगी, तकदीरको कोसने लगेगी, मगर पतिको उदास देखकर वह आशा की देवी बन गई, जो कभी निराश नहीं होती। ठाकुरसिंहने उसे श्रद्धा-भावसे देखकर कहा—जी चाहता है, इन चित्रोंको आग लगाकर कहीं निकल जाएँ। काम करानेको सभी हैं, पैसे-देते समय प्राण निकलते हैं। कभी कहते हैं कल आओ, कभी कहते हैं परसों आओ।

गुजरी—यही तो खराबी है, वर्ना हमें ज़रा भी तकलीफ़ न हो। देखो, गंगू गया है, कुछ लाता है, या सब फिर आनेको कहते हैं।

ठाकुरसिंह—मुझे डर है, आज कोई भी न देगा।

गुजरी—वाह गुरुपर विश्वास रखो। (चित्रकी तरफ़ इशारा करके) यह चित्र किसका है!

ठाकुर०—एडीटर 'शौकत-हिन्द' का।

गुजरी—कैसा आदमी है!

१ पंजाबमें सुहागका व्रत है, जब स्त्रियाँ चाँदको अर्घ्य देकर खाना खाती हैं।

ठाकुर—आदमी तो शरीफ़ है ।

गुजरी—पैसेवाला भी है, या हमीं जैसा भूखा बंगाली है ?

ठाकुर—आदमी तो खानदानी है । बाकी हमारा प्रारब्ध ।

गुजरी—तस्वीर बनाकर ले जाओ, तो पैसे दे देगा या नहीं ?

ठाकुर—अब मैं किसीके मनका हाल क्या जानूँ । हाँ, उम्मीद तो है, कि दे देगा ।

गुजरी—तो इसे पूरा क्यों नहीं करते ! कितने रुपये मिल जाएँगे ?

ठाकुर—तीस माँगें थे, उसने बीस कहे । पच्चीस पर फ़ैसला हो जाएगा ।

गुजरकी चेहरेपर आशाकी आभा झलकने लगी । हँसकर बोली—जालडी खाटम करो । टाइम थोड़ा है, वर्ना जामाडार खफ़ा हो जाएगा टो टोमारा कमीज रंग देगा ।

अब वह फिर वही हँसमुख, वही बेपरवा वही आशावादी गुजरी थी, जो भूखी रहकर भी हँसती थी, खेलती थी, चहकती थी ।

ठाकुरसिंह चित्र बनाने लगे । उन्होंने कल रातसे कुछ खाया न था । प्रातःकाल भूख मालूम हुई थी, मगर इस समय प्यास भी न थी । इन्हें शरीरमें एक नई स्फूर्तिका अनुभव होता था । कभी यह रंग धोलते, कभी वह रंग धोलते और चित्र बनाते जाते थे । उनका हाथ आज कसा तेज़ चलता था । मन काममें डूबा हुआ था । इतनी एकाग्रता उनमें कभी न थी । यहाँ तक कि पाँच बज गए और उन्होंने सिर न उठाया । दफ्तरोंके बाबुओंको छुट्टी हो गई । पंखी भी अपना बसेरा लेने लगे । गउएँ और भैंसें भी अपने घरोंको आ गईं । मगर ठाकुरसिंहको आराम कहाँ ! वह अभी तक उसी लगनसे चित्र बनानेमें लगे थे । आशामें कितना जीवन है, कितनी जागृति, कितनी ज्योति ! यों कहनेको एक कच्चा धागा है, मगर इसी कच्चे धागेने सारे संसारको बांध रखा है । इसी के सहारे सारी दुनिया उड़ती फिरती है ।

इतनेमें गंगू आया । स्त्री-पुरुष दोनोंका हृदय धड़कने लगा । कुछ

लाया है, या नहीं ? एक मीठा शब्द सुनकर दोनोंके हृदय खिल जाएंगे और अगर वह खाली हाथ लौटा हो तो ? आदमी कितना परार्थी कितना दूसरोके बसमें है ! ठाकुरसिंह उससे पूछते हुए भी डरते थे । मगर स्त्री अबला होनेपर भी हिम्मत नहीं हारती । उसने गंगूसे कहा— तू सारा दिन बाहर गवाँ आया । बोल, कुछ मिला भी या नहीं ?

गंगूने जवाब दिया,—कहींसे भी नहीं मिला ।

ठाकुरसिंहके दिलमें किसीने छुरा भोंक दिया । तलमलाकर बोले— अमृत फैक्टरीवालोंने क्या कहा ?

गंगू—कहा कि सरदार साहब कहीं बाहर गए हैं । आएंगे, तो भिजवा देंगे, हम कुछ नहीं कर सकते ।

ठाकुर—और लन्दन-वाच कम्पनीवाल ?

गंगू—बोले, आज बिक्री नहीं हुई, कल आना ।

ठाकुर—और राय साहब होतूराम ?

गंगू—वह अभी कराचीसे नहीं आए ।

ठाकुरसिंह (क्रोधसे)—और तू अब तक कहाँ मर गया था ? पहले चला आता, तो कहीं और ही भेज देता । अब मैं क्या करूँ ?

गंगूने सहमकर जवाब दिया—मियाँ याकूबकी तरफ़ चला गया था । उन्होंने बिठा लिया कि अभी मनी आर्डर आते हैं, तो लेकर जाना । वहीं बैठा रहा । आखिर चला आया । वह तो अब भी न आने देते थे । कहते थे, ज़रा और ठहरो, शायद कोई देनेवाला ही आ जाए ।

ठाकुरसिंह बड़बड़ाते हुए उठे, और तस्वीर लेकर बाहर चले गए ।

गुजरी रोने लगी । संध्या हो चली थी । सुहागन स्त्रियाँ अपने-अपने थालोंमें मिठाई, बादाम, धीके दीए रखकर सुहागन रानीकी कथा सुनने जा रही थीं । इस समय उनके चेहरे प्रसन्न थे ! आँखें प्रकाशपूर्ण ! आज उन्होंने सुहागका व्रत रखा था, आज वह पतिकी मंगल-कामना

करने जा रही थीं। मगर गुजरी क्या करे ? उसके प्राण पिंजरेमें फँसे हुए पंछीके समान फड़फड़ा रहे थे, मगर उड़नेकी शक्ति न थी। उसने ठंडी आह भरी, और छतकी तरफ़ देखने लगी।

इतनेमें उसकी पड़ोसिनने साथके छज्जेसे पुकारकर कहा—क्यों बहन गुजरी ! कथा सुने चलोगी ?

गुजरी फूट-फूटकर रोने लगी। वह कैसी अभागिन है, जो सुहाग-व्रतके दिन सुहाग-कथा भी नहीं सुन सकती। मगर पड़ोसिनपर अपनी विवशता प्रगट भी नहीं करना चाहती थी, आवाज़ सँभालकर बोली—बहनजी, मैं तो सुन भी आई।

पड़ोसिन चली गई, गुजरी फिर उदास हो गई। उसे ज़ालिम अमीरोंपर रह-रहकर क्रोध आता था, जो ग़रीब मज़दूरोंसे काम करा लेते हैं, पैसे समयपर नहीं देते। इस वक्त वह चंडिका देवी बनी हुई थी। अगर कोई अमीर उसके सामने आ जाता, तो उसका खून पानी एक कर देती। वह सोचती थी, सबने इन्कार कर दिया, किसीने यह भी न सोचा कि चलो दे दो, त्योहारका दिन है, उसे भी ज़रूरत होगी। ऐसे ही पापोंके कारण तो वर्षा नहीं होती, इसी लिए तो अकाल पड़ते हैं।

आध घण्टा बीत गया, गुजरी उसी तरह बैठी रही। उसके चारों तरफ़ अँधेरा था, मगर उसने बत्ती नहीं जलाई। यह बाहरका अँधेरा उसके दिलके अँधेरेके सामने कितना तुच्छ था ! इतनेमें गंगूने आकर कहा—बीबीजी, कुछ खानेको है, या नहीं ? बड़ी भूख लगी है।

बात मामूली थी, मगर गुजरीकी देहमें आग लग गई। जैसे सूखी बारूद रगड़से भी जल उठती है। गरजकर बोली—तू आदमी है, या गधा ? देखता नहीं, कहींसे भी पैसे नहीं मिले। मुरब्बत तो इन लोगोंको छू भी नहीं गई। मालिक मरे या जिए, इनकी बलासे। इन्हें अपने कामसे काम है।

गंगू खाना खानेके बदले गालियाँ खाकर चुप चाप ऊपर जा बैठा । उसे अपनी मूर्खतापर पश्चात्ताप हो रहा था । सोचता था, क्यों रोटी मांगने चला गया ? क्या एक दिन भूखा न रह सकता था ? वे भी तो भूखे हैं । आप खाएंगे तो मुझे भी ज़रूर देंगे । थोड़ी देर बाद गुजरी हिम्मत करके उठी, और पड़ोसिनको बुलाकर बोली—बहन, ज़रा एक चार आनेके पैसे देना । वह बाहर गए हैं, मेरे पास दस रुपयेका नोट है, रेज़गारी नहीं है ।

मगर उसका दिल धक-धक कर रहा था कि अगर इसने भी न दिए, तो क्या इज्जत रह जाएगी । मगर पड़ोसिनने चवन्नी दे दी । गुजरीको यह चवन्नी नहीं, चार सौ रुपये थे । भागी-भागी ऊपर चढ़ गई और गंगूसे बोली—जा, जाकर दो आनेके चावल ले आ, एक आनेका दूध, एक आनेकी चीनी । मगर जल्दी आना । तेरी आदत है, जहाँ चार आदमी देखे, वहीं खड़ा हो गया । मगर यह समय देर करने का नहीं । भागकर जा, भागकर आ ।

गंगूने चवन्नी ली, और नीचे उतर गया । इधर गुजरीने जल्दी जल्दी आग जलाई, और गंगूकी प्रतीक्षा करने लगी । मगर आध घंटा बीत गया, और गंगू न आया । आखिर कहाँ चला गया ? इतनी देर कहाँ लग गई ? बनियेकी दुकान तो दूर नहीं, तीन-चार मिनटका रास्ता है, ज़रूर कहीं खड़ा हो गया होगा । इतना भी खयाल नहीं कि आज त्योहारका दिन है । सरदार साहब आते हैं, तो कहती हूँ, मैं बाज़ आई ऐसे नौकरसे, इसे जवाब दे दो । इसे तो समय कुसमयका भी विचार नहीं । यहाँ आग जल रही है, वह कहीं खड़ा समय नष्ट कर रहा होगा ।

मगर आध घण्टा और गुज़र गया और गंगू फिर भी न आया । अब गुजरीके क्रोधने चिन्ताका रूप धारण कर लिया । सोचने लगी कहीं किसी गाड़ी तले न आ गया हो । आँखें बन्द करके चलता है, सामने तो देखता ही नहीं । गुजरीका दिल दहल गया, मानो गंगू सचमुच गाड़ी

तले कुचला गया है। इतनेमें गंगू उसके सामने आकर खड़ा हो गया, और सिसक-सिसककर रोने लगा। गुजरीने घबराकर पूछा—क्यों ! क्या हुआ ?

गंगूने रोते-रोते जवाब दिया—चवन्नी कहीं गिर गई।

गुजरीने ठंडी साँस भरी और निराशासे वहीं बैठ गई।

३

उधर ठाकुरसिंह तस्वीर लेकर शौकत हिन्द के दफ्तरमें पहुँचे, और सम्पादकसे बोले,—लीजिए जनाब, तस्वीर तय्यार हो गई।

सम्पादक साहबने तस्वीरको उड़ती हुई नज़रसे देखा, और बेपरवाई-से मेज़के एक कोनेकी तरफ़ इशारा करके कहा—रख दीजिए।

और यह क़दर थी उस चीज़की, जिसे चित्रकारने भूखा प्यासा रहकर बनाया था, जिसमें उसने अपना दिल लगाया था, जिसपर उसने अपने प्राण छिड़के थे, जिसपर उसने बड़ी बड़ी आशाएं बांधी थीं। क्या इसके लिए इस माषाण-हृदय अन्धे व्यापारीके पास प्रशंसाके दो शब्द भी न थे ? केवल दो शब्दोंसे उनको सन्तोष हो जाता, वे अपनी थकावटको भूल जाते। समझते कि दुनिया अभी क़दरदानोंसे ख़ाली नहीं हो गई। रुपया नहीं देते, प्रशंसा तो करते हैं। कलाकारोंके लिए यही बहुत है। मगर यहाँ वह भी न था। ठाकुरसिंहके जीमें आया कि तस्वीर उठा लूँ और कहूँ, जनाब, मैं तस्वीर आपके हाथ न बेचूँगा। अगर आपको मेरी कलाकी परवा नहीं, तो मुझे भी आपके धनकी परवा नहीं। मगर फिर घरका और घरकी दशाका ध्यान आ गया। ग़रीबीने आनका गला धोंट दिया। तस्वीरको हाथमें लेकर बोले—आप ज़रा देख तो लेते।

सम्पादक—कल देखूँगा, इस समय रहने दीजिए।

ठाकुर—बहुत बढ़िया है, आप खुश हो जाएंगे।

सम्पादक—यह कहनेकी ज़रूरत ही नहीं। आप जिस चीज़को हाथ लगाएंगे वही सुन्दर बन जाएगी। सौन्दर्य तो आपके हाथोंका मैल है।

ठाकुर—आप तो मुझे बनाते हैं।

सम्पादक—जी नहीं, मेरा सचमुच यही विचार है।

ठाकुर—इसपर पूरे तीन दिन लगे हैं।

सम्पादक—आप चाहते, तो एक दिनमें बना लेते। बल्कि अगर आप डटकर बैठ जाते, तो तीन चार घण्टोंसे ज्यादाका काम न था।

ठाकुर—जी नहीं, अच्छी चीज़ अच्छा समय खाए बिना जवान नहीं होती।

सम्पादक—अरे ! आप तो शायरी भी करने लगे।

ठाकुर—आपकी मेहरबानी हो जाए, तो शायरी भी करन लगूँगा। अब आज्ञा दीजिए, अँधेरा हो रहा है।

सम्पादक—बहुत अच्छा। फिर किसी दिन आइएगा, एक और भी तस्वीर बनवाना है।

ठाकुर—कहिए, कल ही आ जाऊँ ? और इस तस्वीरके रुपये ?

सम्पादक—इतना जल्दी !

ठाकुर—बहुत ज़रूरत है।

सम्पादक—तो दो चार दिनमें मिल जाएँगे।

ठाकुर—न साहब, ऐसा जुल्म न कीजिएगा। बड़ी आस लेकर आया हूँ। अभी दिलवा दीजिए।

सम्पादक—(कुरसीसे उठते हुए) दो चार दिनसे पहले तो किसी सूरतमें न दे सकूँगा।

ठाकुर—बड़ी ज़रूरत है, पाँच रुपये ही दे दें इस समय।

सम्पादक—(सिर हिलाकर) इस समय अगर पाँच पैसे माँगें, वह भी न मिलेंगे। बिल्कुल फाँक हूँ।

ठाकुर—आपने तो कहा था, तस्वीर बनाकर लाओ, रुपये उसी समय मिल जाएंगे ।

सम्पादक—मालूम होता है, आप हमें चोर समझ रहे हैं, जो आपकी तस्वीर लेकर भाग जाएंगे । यहाँ छै-छै महीने गुज़र जाते हैं, कोई तगादा भी नहीं करता ।

ठाकुर—उनके पास खानेको होगा, तगादा न करते होंगे । हम मजदूर आदमी हैं, जो कमाते हैं, वही खाते हैं ! हम कैसे बैठे रहें ? हमें तो इसी समय चाहिए ।

सम्पादक—आप तो पंजे भाड़कर पीछे पड़ गए । एक बार कह दिया, इस समय नहीं हैं; माफ़ करो । मगर जनाब अपनी ही कहे जाते हैं । मेरी सुनते ही नहीं ।

अब ठाकुरसिंह भी तेज़ हो गए, बोले—अगर आपके पास रुपये न थे, तो आपने काम क्यों कराया ! मैं यों निराश तो न होता ? जिसके पास नक़द रुपये होते, उसका काम करता और काम करनेके साथ ही रुपये ले लेता । काम ख़त्म कर लो, और फिर बैठे पैसोंका इंतज़ार करो; यह तो मुसीबत है । इस से बेकारी भली । उसमें और नहीं, आराम तो मिलता है ।

सम्पादक महोदय सन्नाटेमें आ गए । सोचने लगे, यह आदमी कितना कमीना है । इसे मेरे मान-अपमानका ज़रा भी ख़याल नहीं । थोड़ी देर बाद बोले - तो आप अपनी तस्वीर उठाकर ले जाइए, मुझे इसकी ज़रूरत नहीं ।

ठाकुरसिंह (आश्चर्यसे)—आपने कहकर बनवाई है, और मैंने आपके लिए बनाई है । फिर आप कैसे कह सकते हैं, आपको ज़रूरत नहीं ? अगर ज़रूरत न थी, तो पहले न कहते ।

सम्पादक—मगरं मुझे क्या मालूम था कि आप ऐसी ख़राब चीज़ बना लाँगे ! इससे अच्छी तस्वीर तो स्कूलके लड़के भी बना सकते हैं ।

और यह भी किसी लड़के ही की बनाई हुई है, आपकी नहीं। चले हैं हमें चकमा देने। मगर हम भी जनाब हाथ पहचानते हैं, हाथ ! यह तस्वीर आपने नहीं बनाई।

ठाकुर—मगर तस्वीर तो आपने अभी देखी ही नहीं।

सम्पादक—आते ही देख ली, मुझे ज़रा भी पसन्द नहीं। पत्रमें छाप दूँ, तो लोग कहें, सम्पादक पागल हो गया है। ख़रीदारी छोड़ दें।

ठाकुरसिंहका सिर चकराने लगा। आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। तस्वीर लेकर चुपचाप बाहर निकल आए,। पछताते थे कि क्यों बात बढ़ाई? रुपये आज न मिलते, दो दिन बाद मिल जाते, अब वह भी गए। तस्वीर इनकी है, दूसरा कोई इसके लिए पैसा भी न देगा। वह चाहते थे सम्पादक बुलाकर तस्वीर माँग ले, तो चुपचाप दे दूँ, चूँ भी न करूँ। मगर वह दूर चले आए, और उन्हें किसीने भी न बुलाया। जो थोड़ी बहुत आशा थी, वह भी न रही।

अब चारों तरफ़ अँधेरा था। क्या करें, क्या न करें! बहुत सोचते थे, मगर उन्हें कोई आदमी दिखाई न देता था जो इस विपदके समय उनकी सहायता करे। उन्हें घर जाते हुए भी डर लगता था। गुजरीको क्या मुँह दिखाएंगे? आज करवा-चौथका व्रत है, स्त्रियाँ चन्द्रमाको अर्घ्य देकर मिठाई और फल खाएंगी। हमारे घर आटा भी नहीं। दुर्भाग्य तो देखो, घरमें सिवाय लकड़ियोंके और कोई भी चीज़ नहीं बची, सब कुछ चुक चुका गया। ठाकुरसिंह शहरसे बाहर निकल गए, और पैरेडमें बैठकर चिन्तामें डूब गए। कभी सोचते, नदीमें डूब मरें; ऐसे जीवनसे तो मौत ही भली। कभी ख्याल आता, साधु हो जाएँ, गुजरीको उसका पिता ले जाएगा। चार दिन याद करकरेके रोएगी, फिर भूल जाएगी। मगर उनमें इतना साहस भी न था।

कुछ देरके बाद वह उठे, और शहरकी तरफ़ ख़ाना हुए। पहले धीरे धीरे चले, फिर तेज़ हो गए। आशाके निकट पहुँचकर हम

अधीर हो जाते हैं, हमारी शान्ति भंग हो जाती है। अब उन्हें एक मित्रका ख्याल आ गया था; शायद वह दो चार रुपये दे दे।

४

रातके साढ़े आठ बजे थे, करवा-चौथका चाँद निकलनेमें थोड़ी देर बाकी थी। हर मकानपर स्त्रियाँ खड़ी थीं, और आसमानकी तरफ़ देखती थीं, कि चाँद निकला है, या नहीं? जो छोटी लड़कियाँ भूखसे अधीर हो रही थीं, वह कहती थीं, चाँदको भी आज ही बैर लेना था, पहले तो इतनी देर कभी न होती थी। जो स्यानी थीं, वह मुस्कराती थीं और कहती थीं, अभी निकलेगा।

मगर गुजरी अपने अँधेरे कमरेमें औंधे मुँह लेटी थी। वह चाँद की क्या प्रतीक्षा करती, ग़रीबके पास अर्घ्य देनेके लिए कच्ची लस्सी भी न थी, न व्रत खोलनेके लिए रोटीका एक टुकड़ा था। निराश होकर लेटी थी, और अपने भाग्यको कोस रही थी। इतनेमें ठाकुरसिंहने आकर उसकी पीठपर हाथ फेरा, और प्यारसे कहा, ले उठो! चाँद निकल आया है, चलकर अर्घ्य दे लो। लस्सी और गंडेस्त्रियाँ नहीं है, ठण्डा जल तो हैं। देवता लोग कुछ खाते पीते थोड़े हैं! श्रद्धा देखते हैं और उसकी तुम्हारे पास कमी नहीं। लो अब उठकर छतपर चलो।

गुजरी चुपचाप उठकर खड़ी हो गई। उसने इतना भी न पूछा कि तस्वीर के दाम मिले या नहीं? समझ गई, न मिले होंगे। मिलते तो नाचते हुए आते कूदते हुए आते। वह बेदिलीसे पतिके साथ ऊपर चली गई, और नलसे हाथ-मुँह धोकर बोली—पानीका एक लोटा मँगवा दो, तो अर्घ्य दे लूँ।

ठाकुर—वह देखो चौकीपर धरा है, उठा लो।

गुजरीने जाकर लोटेमें लस्सी और पास दूसरी चीज़ें देखीं, तो उसका

दिल नाचने लगा । तुनककर बोली—तुमने मुझे बड़ा धोखा दिया । पहले क्यों न कहा, कि सब कुछ ले आया हूँ । यह तो बहुत कुछ है ।

ठाकुर—पहले चाँदकों अर्घ्य दे लो, फिर बातें करेंगे ।

गुजरी—कैसे झूठे आदमी हैं । कहते थे, पानीहीसे अर्घ्य दे लो ।

ठाकुर—मगर अब तो चावल और गंडेरियाँ भी हैं ।

गुजरीने लस्सी, चावल और गंडेरियोंसे चन्द्रमाको अर्घ्य दिया, और हाथ बाँधकर पतिकी दीर्घायुके लिए प्रार्थना की । इस समय उसे चाँद मुस्कराता हुआ दिखाई दिया, जैसे आशीर्वाद दे रहा हो, जैसे उसे कह रहा हो, यों ही घबराती थी, अब कहो, ! गुजरीके मुँहसे हँसी फूट-फूटकर निकलती थी । गुजरी रोकती थी, मगर हँसी रुकती न थी । वह इठलाती हुई पतिके पास आई, और बैठकर बोली—क्या कुछ लाए हो, देखूँ ।

ठाकुरसिंहने मिठाईकी टोकरी सामने रखकर कहा—यह रहा नम्बर एक ।

गुजरीने मिठाई देखी, तो मुँहमें पानी भर आया, मगर शान्तिसे बोली—इतनी क्यों ले आए ? दो रुपयेसे कमकी न होगी । एक रुपये की लाते तो ठीक होता ।

ठाकुर—एक रुपयेकी तो मैं ही खा जाता, शायद इससे भी ज्यादा खा जाऊँ । इससे भूखा हूँ, और क्या ? देखना कैसे बढ़-बढ़के हाथ मारता हूँ । केवल तुम्हारे कहनकी देर है ।

गुजरी —(मुस्कराकर) खैर, और क्या लाए ?

ठाकुरसिंहने फलोंकी टोकरीसे कागज़ उठाकर कहा—यह रहा नम्बर दो ।

कुछ सेब थे, कुछ अनार, आध सेर अंगूर, और एक सरदा । गुजरीके कुम्हलाए हुए दिलको ठंडा पानी मिल गया । बोली—अब मालूम हुआ, आज करवा-चौथका व्रत है ।

ठाकुरसिंहने जेबसे एक बंडल निकालकर खोला। उसमें एक रेशमी साड़ी थी। गुजरीकी आँखें चमकने लगीं। ठाकुरसिंहने कहा— यह रहा मुँहवर तीन।

गुजरीने अपना सिर पतिके कन्धेपर रख दिया, और आँखें मूँद लीं। खुशी इतनी थी, कि मुँहसे बात भी न निकलती थी। सारे दिनकी थकान देखते-देखते दूर हो गई। ठाकुरसिंहने उसके सिरपर हाथ फेरकर कहा— अब भी खुश हुई या नहीं ?

गुजरी—जबानसे क्या कहूँ, मेरा मुँह देख लो।

यह कहकर गुजरीने अपने पतिकी तरफ़ देखा, और मुस्करा दी।

ठाकुरसिंहने गुजरीका मुँह दोनों हाथोंसे पकड़ लिया, और कहा— अब हमारा भी चाँद निकला। मुझे ऐसा मालूम होता है, कि यह मुझसे बातें कर रहा है।

गुजरी—(शरारतसे) कहता है, मुझे देखो !

ठाकुर—नहीं, कहती है, मुझे अर्ध्य दो।

यह कहते कहते ठाकुरसिंहने एक पेड़ा उठाकर गुजरीके मुँहमें दे दिया। व 'न न' करती ही रही, मगर ठाकुरसिंहने एक न सुनी, कहा—तुमने अपने चाँदको अर्ध्य दिया है या नहीं ? हम अपने चाँदको अर्ध्य दिए बिना कैसे खालें ? पाप लगेगा।

गुजरीने भी एक पेड़ा पतिके मुँहमें दे दिया। स्त्री पुरुष दोनों खाने लगे और झूमने लगे। रात मुस्कराने लगी। चाँदनी मुस्कराने लगी। दुनिया मुस्कराने लगी।

इतनेमें गंगूने आकर कहा—मियाँ याकूबका आदमी बीस रुपये दे गया है।

ठाकुरसिंहका चेहरा और भी चमकने लगा। गुजरीने गंगूसे रुपये ले लिए, और पतिकी तरफ़ देखकर कहा—पहले मिल जाते, तो इतनी तकलीफ़ न होती।

ठाकुर—उस समय यह पेड़े भी ऐसे मीठे न लगते ।

इतनेमें किसीने नीचे दरवाजा खटखटाया ।

ठाकुर—कौन है ?

आवाज—जरा नीचे आइए ।

गुजरीने मुँह बनाकर कहा—इस समय कौन आ गया, बैठे रहो, गंगू पता ले आता है ।

ठाकुरसिंह (हँसकर)—घबराती काहेको हो ? मैं नीचे जा रहा हूँ, दिल्ली तो नहीं जा रहा । अभी एक मिनटमें आया ।

गुजरी—इस वक्त तो एक मिनट भी एक घंटेसे कम नहीं ।

ठाकुरसिंह नीचे गए । थोड़ा देर बाद लौटे, तो चेहरेपर अद्भुत आभा थी । गुजरीने पूछा—कौन था इस वक्त ?

ठाकुर—दीवान हरजस रायका आदमी था ।

गुजरी—कौन हरजस राय ? वहीं तो नहीं, जो दुपहरको आया था ? वही होगा ।

ठाकुर—बस-बस-बस ! वही था । उसीने तस्वीरके लिए पेशगी रुपया, भेजा है ।

गुजरीके दिलमें गुदगुदी होने लगी, जल्दीसे ठाकुरसिंहके पास आकर बोली—कितना रुपया ?

ठाकुरसिंहने एक एक शब्दपर रुक रुककर कहा—तीन सौ—रुपया ।

गुजरीका दिल खुशीसे धड़कने लगा । बोली—झूठ तो नहीं बोल रहे मुझ से ?

ठाकुर—झूठ बोलूँगा, तो मेरा यह जमादार नाराज न हो जाएगा ? यह तुम्हरा चेक रहा ।

यह कहकर ठाकुरसिंहने चेक गुजरीके हाथमें दे दिया । गुजरी चेक और रेशमी साड़ी लेकर जल्दी जल्दी नीचे उतर गई ।

सूरदास

१

सूरदास कौन था ? कहाँका रहनेवाला था ? उसका असली नाम क्या था ? यह किसीको भी मालूम न था, न वह अपना हाल किसको सुनाता था। अगर कोई पूछता, तो जवाब देता—भैया ! पापी जीव हूँ, हाल क्या सुनाऊँ ? दुनिया की ठोकरें खाकर गंगा मैयाकी सरण आ पड़ा हूँ। जान निकल जाए, तो रामका नाम लेकर गंगामें बहा देना ! इससे ज्यादा बातचीत वह अपने सम्बन्धमें कभी न करता था, मगर अस्लमें वह ऐसा तुच्छ न था। उसके आनेसे काशीकी शोभा बढ़ गई थी। दशाश्वमेध घाटमें तो जैसे जान-सी पड़ गई थी। प्रातःकाल चार बजे उठता और तम्बूरा लेकर बैठ जाता था। तम्बूरा बजाता था और हरि-भजन गाता था। उसका आलाप सुनकर लोग मंत्र-मुग्ध हो जाते थे। उसके चारों तरफ़ लोगोंकी भीड़ लग जाती थी। जब वह असार संसारके वैराग्यसूचक गीत गाता था, उस समय वह साधारण अन्धा मालूम न होता था, कोई उच्च कोटिका दार्शनिक विद्वान् मालूम होता था। उसका एक-एक शब्द श्रोताओंके हृदयमें खूब जाता था। लोग उसके गानोंमें तन्मय हो जाते थे। वह अनाड़ी गवैया न था, राग-विद्याका पूरा उस्ताद था। स्त्री, पुरुष, बच्चे सब उसकी

प्रशंसा करते थे। कोई उसे पैसा देता, कोई फल कोई आटा और कोई कपड़ा; मगर वह कभी किसीसे कुछ माँगता न था। आँखोंका अंधा था, दिलका अंधा न था। कोई दे या न दे, इसकी उसे चिन्ता न थी। पर लोग उसे उसकी ज़रूरतसे भी ज्यादा देते थे। दोपहर होते-होते उसके सामने पैसों और खाद्यपदार्थोंका ढेर-सा लग जाता था। जब घाट लोगोंसे खाली हो जाता, तो वह अपने गाने-बजानेकी कमाईको समेटकर गिनता, और तब इतनी ऊँची आवाज़से जैसे कोई किसीको सुना रहा हो, कहता—यह तो बहुत है। भैया, मैं इतना क्या करूँगा? उसे आजकी परवा थी, कलकी परवा न थी।

गंगा घाटके लोभी साधु उसके पास आकर कहते—सूरदासजी, हमें तो कुछ भी न मिला, टापते रह गए। आज भूखा रहना पड़ेगा। फिर एक लम्बी साँस छोड़कर कहते—कलजुगका जमाना है, जात्रियोंके दिल पत्थर हो गए हैं। आते हैं, नहाते हैं, चले जाते हैं। हमारी तरफ कोई आँख भी नहीं उठाता।

सूरदास उनकी बातें सुनता, तो अपने खाने-भरके लिए रखकर बाँकी उन्हें बाँट देता। और यह उस गरीबका हाल था, जो आप रोटार्के एक एक टुकड़ेको मोहताज था, जिसकी सारी जायदाद एक तम्बूरा, एक लकड़ी और चार चिथड़े थी। उसको यूँ फटे हालों देखकर कौन कह सकता था कि उसके सीनेमें राज-हृदय धड़क रहा है, कितना महान् कितना विशाल!! बाहरकी दीवारोंपर निराशा छाई हुई थी, जो रोती थी। अन्दर संगमरमरका महल अपनी विभूति लिए खड़ा था, जो मुस्कराता था।

२

इसी तरह कुछ वर्ष बीत गए। सूरदास अपनी अंधेरी दुनियाकी काली, और कभी न समाप्त होनेवाली लम्बी रातमें उसी तरह

खड़ा था। शायद संसारके इस सबसे बड़े दुर्भाग्यकी तरफ उसका ध्यान ही न था। संसारके सुखोंसे दूर, प्रकाशके सुषमापूर्ण दृश्योंसे परे, यौवनके मद-भरे चित्रोंके आनंदसे वंचित होनेपर भी उसके जीवनमें इतना सन्तोष, इतना हर्ष था, जो राजमहलोंमें बादशाहोंको भी प्राप्त नहीं। वहाँ हजारों चिन्ताएँ होंगी, यहाँ एक भी न थी। सूरदास दिनको गाता था, जैसे पंछी फूलोंकी डालियोंपर चहकता है; रातको घाटकी सीढ़ियोंपर पाँव फैलाकर सो रहता था, जैसे छोटा बच्चा नींद आनेपर जहाँ हो, वहीं सो जाता है। उसे यह विचार भी नहीं आता कि कहीं सन्दूकका ताला खुला न रह गया हो, कहीं घरमें चोर न घुस आएँ। जीवन-सुखके ये लुटेरे बच्चोंके अकंटक संसारमें पाँव भी नहीं रख सकते। मानव-रुधिरके प्यासे ये भेड़िये बच्चोंके सामने आकर पालतू कुत्ते बन जाते हैं, जो दुम हिलाते हैं, पाँव चाटते हैं, काटते नहीं। यही हाल सूरदासका था। उसका स्वभाव बालकोंके समान सरल था। उसकी ज़रूरतें न हाथ फैलाती थीं, न निराश होकर ठंडी आँहें भरती थीं। उसकी सृष्टि आहार निद्रा तथा गाने बजाने तक परिमित थी। इससे आगे न वह आशाकी खोजमें जाता था, न निराश होकर खूनके आँसू रोता था। सन्तोषका इससे अधिक प्रत्यक्ष, ज्वलन्त, जीता-जागता उदाहरण गंगाके घाट ने कम देखा होगा।

रातका समय था। आकाशके तारे गंगाकी लहरोंपर नाचते थे। सूरदास घाटकी सीढ़ियोंपर लेटा एक साधुसे बातचीत कर रहा था।

साधु—सूरदासजी, आज तो बड़ी गरमी है। अपने रामकी मरजी है कि जलमें खड़े रहें, बाहर न निकलें। बाहर निकलते हैं, तो देहमें आग लग जाती है।

सूरदास—बरखा होनेवाली है, आज तारे क्या निकले होंगे। बादल धिरा होगा। जरूर बरसेगा। हुम्मस हो रहा है।

साधु—नहीं सूरदासजी, तारे निकले हुए हैं। जो भागवान हैं, वे

घरोंमें छतोंपर लेटे होंगे । नौकर खुसामद करते होंगे । एक हम हैं कि यहाँ परालब्धको रो रहे हैं ।

सूरदास—परमेसरका नाम लो भैय्या । उनको हजारों फिकिर हैं । बताओ तुम्हें क्या फिकिर है ? बड़े मजेमें हो महाराज । उस जिन्दगीमें जाकर चार दिन न रह सकोगे । मेरा खयाल है कि दो दिनमें भाग आओगे । एक दिनमे भाग आओगे ।

साधु (मुस्कराकर)—नहीं सूरदास, वह जिन्दगी बड़ी अच्छी है । यह जिन्दगी जिन्दगी नहीं, जिन्दगीका मजाक है । हम जी नहीं रहे, अपने दिन पूरे कर रहे हैं ।

सूरदास—तो जाओ, कोई राँड़ ढूँढ़कर सादी कर लो उससे , और गिरस्ती बसाओ । जब तुम्हारे मनकी तिरसना नहीं मिटी, तो गेरुए कपड़े पहनना बेफायदा है ।

साधु—आज एक सेठ आया था । सबको एक-एक धोती दे गया । जब हम पहुँचे तो धोतियाँ ही खतम हो गईं । हम मन मारकर रह गए । कहा, जा साले, तेरी आसा कभी पूरी न हो । तुम्हें भी एक ठो मिली होगी, गए थे या नहीं ?

सूरदास—मुझे दरकार ही न थी ।

साधु—अब जात्री भी कम आने लगे । पहले भीड़ लगी रहती थी । अब नसा-पानी भी मुस्किलसे होता है ।

सूरदास—पर वह साधु ही क्या, जिसे नसेका सौक हो । साधु तो वह है, जो रामका भजन करे ।

साधु—अब तो सेव आरिये बन गए । जिसे देखो, नमस्ते नमस्ते कर रहा है । न किसीमें प्रेम है, न किसीमें सरधा है । राम जाने, दुनिया खतम क्यों नहीं हो जाती ?

सूरदास (बातका रुख बदलनेके लिए)—बड़ी गरमी है । आज नींद नहीं आएगी ।

साधु—अगर कुछ दिन यही हाल रहा, तो हम भूखों मरेंगे, कोई मुठ्ठी-भर धान भी न देगा ।

सूरदास—(अपनी लाठीको टटोलकर) हमें परमेश्वर देगा भाई, पुरसकी क्या औकात है ? हम तो मर जाएँ, पर किसीके सामने हाथ न फैलाएँ । हमें तो माँगते हुए सरम लगती है । हमारा तो हिरदा बिदरोह करता है । भूखा पड़ रहना मंजूर, पर माँगना मंजूर नहीं । माँगनेसे पहले मरना पड़ता है ।

साधुने चिलमपर आग रखी और सूरदासकी तरफ घृणासे देखकर कहा—तुममें यह पानी होगा सूरदास ! अपने रामसे तो भूख नहीं सही जाती । बिना माँगे कौन साला देता है ?

यह कहकर साधु चिलम पीने लगा ।

सूरदास—परमेश्वर देता है, और कौन देता है ? पर तुम परमेश्वरसे माँगते ही नहीं हो । वह दे कैसे ?

साधुने कुछ चिढ़कर जवाब दिया—तुम भी तो लोगोंके सामने ही गाते हो । परमेश्वरके सामने क्यों नहीं गाते ? खानेको मिल जाता है, तो चले हैं उपदेस करने । दो दिन भूखे रहो, तो होस ठिकाने आ जाएँ । और क्या ?

मगर सूरदास अब भी सन्तुष्ट था । मुस्कराकर बोला—हम तो परमेश्वरके सामने ही गाते हैं, सुननेको कोई सुन ले । इससे हमको कोई मतलब नहीं ।

अकस्मात् एक दूसरे साधुने आकर कहा—क्यों सूर, क्या कर रहे हो तुम ?

सूरदास उठकर बैठ गया और अपने तम्बूरे और लाठीपर हाथ फेरकर बोला—बातचीत कर रहे हैं महाराज ! पर आज बड़ी गरमी है, सीर फुँका जाता है । आओ बैठो ।

बूढ़ा—नहीं सूरदास, बैठनेकी बेला नहीं, आज एक अजीब बात

हुई । घाटपर किसीका बच्चा रह गया । तीन-चार सालकी उमिर होगी । बहुत खोज की, पर उसके माता-पिताका कहीं पता नहीं लगता । बताओ, क्या करें ? बड़ा प्यारा बच्चा है ।

सूरदास (बेचैन होकर)—रो रहा होगा ?

बूढ़ा—रोता तो इस तरह है कि तुमसे क्या कहूँ । बाबू ! बाबू ! कहकर चिल्ला रहा है । उसे रोते देखकर मेरा तो हिरदय हिल जाता है ! माँ-बाप भी कैसे बेपरवा होते हैं ! न मिले, तो क्या करें ? जीवन-भर रोते रहें । इस समय जाने कहा चले गए हैं ?

सूरदास लाठी लेकर खड़ा हो गया और अन्धी आँखोंकी पलकें झपकाकर और गर्दन हिलाकर बोला—ढूँढ़ रहे होंगे, सायद अभी आ जाएं । तुमने बच्चेको चुप कराया ।

बूढ़ा—लाख पुचकारते हैं, मिठाइयाँ देते हैं, मगर वह चुप नहीं होता । बराबर रोता जाता है । बताओ क्या करें ?

सूरदास (मुस्कराकर)—मेरे पास आ जाए, तो (चुटकी बजाकर) एक मिनटमें चुप हो जाए । क्या मजाल जो जरा भी रो जाए !

बूढ़ा—वाह सूरदास, तुम तो छिपे रुस्तम निकले । तो चलो, चलकर ले आओ ।

आगे आगे बूढ़ा चला, पीछे पीछे सूरदास । एक मिनटमें दोनों धाटके दूसरे सिरेपर जा पहुँचे, जहाँ बालक फूट-फूटकर रो रहा था । सूरदासने जाते ही लाठी ज़मीनपर रख दी और हाथ फैलाकर कहा—लाओ तो इसे मेरे पास—आ बेटा, मेरे पास आ । यह कहकर उसने बालकको उठा लिया और गलेसे लगाकर उसके सिरपर हाथ फेरने लगा । बालकने पहले तो हैरानीसे सूरदासकी तरफ़ देखा । शायद वह सोच रहा था कि यह कौन है ? मगर दूसरे ही पलमें उसने अपना सिर उसके कन्धेपर रख दिया और धीरे-धीरे सिसकने लगा । मानो घबराए हुए बालकको माँकी गोदमें आश्रय मिल गया ।

वह कुछ देर सिसकियाँ भरता रहा । इसके बाद चुप हो गया । सच्चे प्रेमके राज्यमें रोने-धोने की फुरसत कहाँ ?

३

दूसरे दिन सवेरे ही सूरदास हलवाईकी दुकानपर खड़ा हलवा पूरा माँग रहा था । लोग देखते थे और हैरान होते थे । यह वही सूरदास था, जिसने किसीके सामने कभी हाथ न फैलाए थे । जो कहता था, मरता मर जाऊँगा, कभी मुँहसे न मागूँगा । आज उसकी यह टेक कहाँ चली गई थी ? आज उसके आत्माभिमानको क्या हो गया था ? गंगाघाटके साधुओंने कहा — सूरदास, यह कायापलट कैसी ? एक ही रातमें क्यासे क्या हो गए !

सूरदासने अपनी अँधी आँखोंसे उनकी तरफ़ देखा और पलकें झपककर कहा—भैया, एक ही दिनकी बात है । आज साँझ तक इसके माँ-बाप आकर ले जाएँगे ।

यह कहकर उसने बच्चेको सीनेसे लगा लिया और उसका सिर चूम लिया ।

मगर साँझ हो गई, और बच्चेको लेने कोई न आया । दो-तीन दिन और इसी तरह बीत गए, फिर भी कोई न आया । दिन सप्ताहोंमें बदल गए बालक, जिसे सूरदास 'दीपक' कहता था, उससे हिल-मिल गया । कभी उसकी गर्दनपर सवार हो जाता, कभी गोदमें आ बैठा, कभी आकर तम्बूरेको छेड़ता, कभी लकड़ी लेकर भाग जाता । सूरदासको उसकी यह बाल-क्रीड़ाएँ बड़ी प्यारी लगती थीं । क्या मजाल जो कोई उसे ज़रा भी डाँट जाए । अब दोपहरके समय वह अपने गाने-बजानेकी कमाई साधु-ओमें नहीं बाँटता था, न गाते समय अब वह सबर-सन्तोष प्रकट करता था । अब उसे जितना मिलता, उतना ही कम था । जैसे अब यह सूरदास वह सूरदास न था । उसकी आमदनी अब पहलेसे बढ़ गई थी, मगर उसके

चित्तकी वह शांति कहाँ थी ? जब वह गाता, बालक अपनी बड़ी बड़ी कटोरासी आँखोंसे लोगोंकी तरफ़ देखा करता । लोग पूछते—यह बच्चा कौन है ? सूरदास कहता ‘हज़ूर किसी भागवानका पुत्र है । सोचता हूँ, इसे तकलीफ़ न हो । क्या याद करेगा । लोग कहते—सूरदास, इसे ज्यादा सिर न चढ़ा, बिगड़ जाएगा । सूरदास किसी विचारसे सहमकर ठंडी साँस भरता और गिड़गिड़ाकर जवाब देता—सरकार, परमेश्वरने चार दिनके लिए पाहुना भेजा है । मेरे पास हमेसा थोड़ा बैठा रहेगा । सायद आज ही इसके माँ-बाप आ जाएँ और इसे ले जाएँ । अपने आप सुधर जाएगा । मैं तो यह सोचता हूँ, इसका मन मैला न हो । जब यह उदास होकर चुपचाप बैठ जाता है, तो मेरे कलेजेमें तूफ़ान-सा उठ खड़ा होता है । जाने किसका बेटा है । वहाँ जाने इसकी कैसी-कैसी खुसामदें होती होंगी । जाने कैसे-कैसे नौकर खिदमत करते होंगे । यहाँ एक अन्धके सिवा इसका कौन है ? मैं भी डाँट-डपट करने लगूँ, तो इसका हिरदा मुरझा जाए । अब कैसा चहकता फिरता है । फिर सिर भी न उठाएगा ।

मगर बारह साल गुज़र गए, दीपक को लेनेके लिए कोई भी न आया । सूरदासने समझ लिया, अब यह मेरे ही सिर पड़ा । अब वह रातको घाटपर नहीं सोता । उसने शहरमें एक छोटासा मकान किराए पर ले लिया है । वहाँ सभी ज़रूरी चीज़ें हैं । दरी है, पलंग है, बर्तन हैं; सन्दूक हैं, एक टाईमपीस है, एक मेज़ और कुरसी है, शीशा और कंधी है, एक लैम्प भी है । मगर यह सब कुछ दीपकके लिए है, सूरदासके लिए नहीं । वह अब भी वही सूरदास है । उसी तरह गंगा—किनारे गाता है । उसी तरह भीख माँगता है । हाँ, लोभी बहुत हो गया है । अब उसके स्वर्च बहुत बढ़ गए हैं । पहले आज़ाद था, अब गुलाम है । पहले निश्चिन्त होकर सोता था, अब रातको चौक चौककर उठ बैठता है । घाटपर सवेरे ही पहुँच जाता है । बड़ी मेहनतसे गाता है । मिन्नत कर करके माँगता है । जब तक एक रुपया सवा रुपया न मिल जाए, उठनेका नाम नहीं लेता । कभी उसके लिए रुपया

मिट्टीके बराबर था, अब कौड़ी-कौड़ाको दाँतोंसे पकड़ता है। मुश्किल है, जो किसीको एक पैसा भी दे जाए। हाँ, दीपकके लिए उसकी जान भी हाज़िर है। उसके लिए अच्छीसे अच्छी वस्तुएँ खरीदता है, और वह चीज़ें उसे देकर खुश होता है। दीपक नवीं श्रेणीमें पढ़ता है। सूरदास उसे अपने हाथसे खाना बनाकर खिलाता है। और स्कूल भेजता है। उसके बाद फिर घाटपर जा बैठता है। फिर गाता है, और माँगता है। मगर तीन बजेसे पहले घर पहुँच जाता है, ताकि दीपकको स्कूलसे आते ही पानिके लिए दूध मिल जाए। रातको वह लैम्पके सामने बैठकर पढ़ता है, सूरदास दरीपर लेटकर अपने दिलसे बातें करता है। कभी कभी दीपकको पुकारकर देख भी लेता है कि कहीं सो तो नहीं गया। सो जाए, तो उठाकर बिठा देता है, और कहता है, 'पढ़।' रातको सोते समय उसे दीपक की के खयाल आते हैं। जाग उठता है, तो सोचता है, यह नौकर हो जाए तो इसका ब्याह कर दूँ। घाटपर एक साधुनी है। उसके एक बारह-तेरह सालकी बेटी है। लोग कहते हैं, वह देखने-सुननेमें भी अच्छी है। उसका गला बड़ा सुरीला है। गाती है तो समा बँध जाता है। सुनने वाले मस्त हो जाते हैं। सूरदास चाहता है, उसका दीपकसे ब्याह हो जाए। वह भी बहूवाला बन जाए। उसे भी अपने हाथसे खाना पकाना न पड़े और वह बैठा हुक्म चलाया करे। ज़रा-सी भी बात इच्छाविरुद्ध हो जाए, तो रूठ जाया करे। दोनों मनाएं, जब माने। मगर हाँ, फिर वह घाटपर जाना बन्द कर देगा। नहीं, लोग दीपकको बुरा-भला कहेंगे। और वह दीपककी बुराई नहीं सुन सकेगा।

ये आशाएँ कितनी प्राण-पोषक थीं, कितनी उल्लासमयी ! सूरदासको ऐसा मालूम होता था कि उसकी अँधेरी दुनिया जगमगा रही है। जैसे उसकी आँखें खुल जानेवाली हैं। जैसे उसका संसार बदल जानेवाला है। अब तक भीख माँगता था, अब राजसिंहासनपर बैठ जायगा। यह

विचार आते ही उसके दिलका कमल खिल उठता था। उसकी तबीयत हरी हो जाती थी। साधुनीको भी यह सम्बन्ध पसन्द था। फकीरकी बेटीको इससे अच्छा वर और कौन मिलेगा ? दीपक आज नवीं जमातमें पढ़ता है। कल दसवीं पास करके कहीं नौकर हो जाएगा और बाबू कहलाएगा। लड़की राज करेगी। साधुनी उस समयका विचार करते ही एकदम भावोंके स्वर्गमें पहुँच जाती थी। हमारी वर्तमान दशा कैसी भी शोचनीय क्यों न हो, मगर हमारे भविष्यको आशाकी जोतसे किसने खाली किया है ?

४

मगर सिर्फ सूरदास ही को दीपकसे स्नेह न था। दीपकको भी सूरदाससे प्यार था। स्कूलसे आता, तो 'दादा, दादा' कहकर उसके गलेसे लिपट जाता था। उसे खाना पकाते देखकर उसे कष्ट होता था। उसका घाटपर जाना तो अब उसे असह्य होता जाता था। अगर उसके बसमें होता, तो एकदम बन्द कर देता। हर रोज़ कहा करता—दादा, मुझे नौकर हो जाने दो, फिर यह कभी न होगा, कि घाटपर तुम पाँव भी धर जाओ। जो कमाऊँगा, तुम्हारे हाथमें दूँगा। जैसा चाहो खर्च करना। मैं ज़रा दखल न दूँगा। सब बुरा-भला तुम्हारे हाथमें होगा। मुझे केवल दोनों समय पेट भरनेको मिल जाए। मुझे और कुछ न चाहिए। मैं कमाऊँगा, तुम खर्च करो।

एक दिन सूरदासने कहा—दीपू, अब अगर तुम्हारा बाप आ जाए, तो क्या करो ? मैं जानूँ, खुसीसे उसके साथ चल दो। मेरा खयाल भी न करो। जाने फिर कभी याद भी करो या न करो। जाने तुम मुझे कभी चिट्ठी-पत्री भी लिखो, या न लिखो। लड़के बेपरवाह होते हैं।

दीपकने सूरदासकी ओर राग और रोषकी मिली-जुली दृष्टिसे देखकर जवाब दिया—दादा, ऐसी बातें न करो, नहीं तो मैं रो दूँगा। अब मेरे

मा-बाप सब तुम ही हो और कोई नहीं। जिस प्रेमसे, जिस आदरसे मुझे तुमने पाला है, ऐसे आदर और प्रेमसे कोई बाप भी अपने बेटेको क्या पालेगा। मैं तुम्हें बाप ही समझता हूँ। मुझे सुपने में भी कभी यह खयाल नहीं आता कि तुम मेरे बाप नहीं हो।

सूरदासकी अंधी आँखोंसे आँसू बहने लगे। उसने अपनी दोनों भुजाएँ फैला दीं। दीपकके हाथमें किताब थी, वह उसे ज़मीनपर पटककर सूरदासके गलेसे लिपट गया, और रोते-रोते बोला—दादा, फिर ऐसी बात न कहना, मुझे तकलीफ़ होती है।

सूरदासने दीपकके मुँहपर प्यारसे हाथ फेरा, और अधीर होकर पूछा—अच्छा बता, अगर तेरा बाप आ जाए, तो तू उसके साथ जाएगा न जाए? जो वह बहुत भागवान हो, बड़ा अमीर हो, बड़े इक़बालवाला हो, बोल, क्या करे? मुझ अन्धे फकीरका खयाल करे या उसका, सच सच कह।

दीपकने तड़से जवाब दिया—सच कहता हूँ दादा, चाहे वह लखपती हो, तब भी परवा न करूँ। किसी रियासतका राजा हो, तब भी न जाऊँ। मेरे लिए जो तुमने किया है, वह कोई किसकिं लिए कम करेगा। अगर तुम न होते, तो मैं रो-रोकर मर जाता। कोई रोटीका टुकड़ा भी न देता। दादा, इसमें ज़रा भी झूठ नहीं है। मैं चाहता हूँ, मेरे मा-बाप मुझे लेने न आएँ। मैं यह घर कभी न छोड़ूँगा।

सूरदास—अरे, यह घर! इसमें क्या धरा है, मूरख कहींका। यह भी कोई घर है?

दीपक—जो इसमें है, वह बड़े बड़े राजमहलोंमें भी नहीं है दादा!

सूरदासका हृदय खिल गया। खुश होकर बोला—अरे इसमें क्या है? तुम्हारे रहने लायक भी तो नहीं है।

दीपक—वाह! रहने लायक क्यों नहीं है? इसमें तुम हो, तुम्हारा स्नेह है। इससे ज्यादा संसारमें और मुझे क्या चाहिए? मुझे अगर

कोई स्वर्ग भी दे, तब भी यहाँसे न जाऊँ । दादा, तुम्हें शायद विश्वास न हो, मुझे इस घरकी एक-एक चीज़ प्यारी है । यहाँका चप्पा चप्पा मेरा मित्र है । मुझे इसकी एक-एक ईंट अपनी लगती है । कभी कभी तो ऐसा लगता है कि यह मेरा शरीर है ।

सूरदासको किसीने आकाशपर चढ़ा दिया । इस समय वह उस गरीब, माँगकर खानेवाले, गंगा-घाटपर बैठकर तम्बूरा बजानेवाले अन्धे फकीरसे कितना दूर, कितना परे था ! उसके दिलमें आनन्दकी लहरें उठ रही थीं । अब उसकी महनत सफल होनेकी थी । अब अन्धेकी अंधेरी दुनियामें आशाका दीपक जल रहा था । उसने दीपकको गलेसे चिपटा लिया और खुशीसे रोने लगा ।

५

दो साल और बीत गए । दीपकने एन्ट्रेन्सकी परीक्षा पास कर ली और कालेजमें भरती हो गया । सूरदास किंकर्तव्यविमूढ़ था । क्या करे ? क्या न करे ? उसकी भिक्षाकी आमदनी तीस-पैंतीससे अधिक न थी और इस आमदनीसे कालेजके विद्यार्थीका निर्वाह होना कठिन था । इस समस्याने उसे हैरान कर दिया था । वह दीपकको समझाता 'बैटे, कहीं नौकरी कर ले, अब मुझसे घाटपर नहीं बैठा जाता ।' दीपक जवाब देता 'दादा, इतनी पढ़ाईको कौन पूछता है ? कोई बीस-पच्चीस रुपयेसे भी ज्यादा न देगा । इससे हमारा निर्वाह कभी न होगा । एफ० ए० पास कर लूँ, तो चालीस-पचास कहीं गए नहीं हैं । किसी तरह दो साल निकल जाएँ; तो सारी उम्रका रोग कट जाए ।' बात ठीक थी । सूरदासका मुँह बन्द हो जाता । मगर रुपया कहाँसे आए ? वह अन्धा था, और घाटपर बैठकर गाता था और जो कुछ लोग उसे भिक्षा के रूप में देते थे, वह रुपया सवा रुपया रोज़ से अधिक न होता था । इधर दीपकको शहरका पानी लग गया था । पहले सीधे-साधे कपड़े

पहनता था। अब कोट-पतलून पहनने लगा। नेकटार्डिके बिना अब उसका कालेज जाना असम्भव था। बूट-पालिश और बालोंके लिए तेलका खर्च बढ़ गया। पहले घरमें व्यायाम कर लेता था, अब टेनिसकी चाट लग गई। सूरदास समझाता, तो मुँह फुला लेता था। कहता—तुम तो चाहते हो, कालेजमें नक्कू बनकर रहूँ। मुझसे यह न होगा, कहिए, पढ़ाई छोड़ दूँ? यह मेरे लिए ज़रा भी मुश्किल न होगा। लेकिन अगर पढ़ना है, तो जैसे दूसरे चलते हैं, वैसे ही मुझे चलना होगा। वर्ना आज उनकी आँखोंमें गिरुंगा, कल अपनी आँखोंमें गिर जाऊंगा।

सूरदास यह भी न चाहता था। कभी कभी उसे यह सन्देह होता था कि दीपकका स्वभाव बदल रहा है। अब उसमें स्वार्थकी मात्रा बढ़ती जाती है। यह सन्देह उसके लिए अत्यन्त दुःखदायी था। पर वह इस सन्देहको ज्यादा देर तक दिलमें ठहरने न देता था। हम कोई बात अपने निकटके बन्धुओंके विरुद्ध किसीसे सुनना नहीं चाहते। यहां तक कि अपने दिलसे भी नहीं। यही हाल सूरदासका था। वह अपने आपको धोखा दे रहा था। उसकी एकमात्र अभिलाषा थी कि जैसे भी हो, दीपक एफ० ए० पास कर ले। मगर रुपया? यह सवाल बड़ा टेढ़ा था। तीस-चालीस रुपयेकी आमदनी थी और साठ-सत्तरका खर्च। सूरदास इसी चिन्तामें घुला जाता था। उसे रातको नींद न आती थी। आखिर रातको काशीकी गलियोंमें जाकर गाने लगा कि शायद इसी तरह कुछ बन जाए। गानेमें दर्द था। स्त्रियाँ अपने घरोंमें बुला लेतीं, और गीत सुनतीं। सूरदास उनसे अपना रोना रोया करता, कहता—माजी, लड़का कालेजमें पढ़ता है, मदद करो। स्त्रियाँ कहतीं—सूरे, तू इतना कमाता है, वह सब कहाँ जाता है? सूरदास अपनी अंधी आँखोंको इधर-उधर घुमाता और कहता—बड़ा खर्च है माजी! पिसा जाता हूँ। किसी तरह दो वर्ष गुज़र जाएं, तो सुकर करूँ। स्त्रियाँ कहतीं—बड़ा निर्दयी छोकरा है। नौकरी क्यों

नहीं कर लेता ! तू इस आयुमें कहाँ तक मेहनत करेगा ! सूरदास जवाब देता—नौकरी क्या करे । कोई तीस-चालीस भी तो न देगा । स्त्रियाँ कहतीं—बूढ़े, तेरी अकल मारी गई है । क्या अब तेरा लड़का डिपटी हो जाएगा ! सूरदास उत्तर देता,—परमेश्वर जो चाहे, कर दे । उससे यह भी दूर नहीं है । जाने उसकी किसमतमें राज करना ही लिखा हो । माजी, आज एक रुपया दे दीजिए । बड़ा पुत्र होगा । बड़ी जरूरत है । बस, एक रुपया मिल जाए । इसके बदले परमेश्वर आपको सौ रुपया देगा माँजी ! स्त्रियोंको दया आ जाती । आना, दो आने चार आने दे देतीं । सूरदासका काम बन जाता ।

६

इधर यह दुबला, पतला, निर्बल बूढ़ा सिपाहियोंके समान जीवनकी लड़ाई लड़ रहा था, उधर दीपक सुन्दरता और यौवनकी उपासना करने लगा । उसकी जमातमें एक विधवाकी रूपवती बेटी रूपकुँवर पढ़ती थी । दीपकका उससे प्रेम हो गया । हर समय एक साथ रहने लगे । क्लासमें भी एक साथ पढ़ते थे । इकट्ठे सैरको जाते और अपने भविष्यकी बातें सोच सोचकर खुश होते । दूसरे विद्यार्थी यह देखते थे और हँसते थे । कुछ ऐसे भी थे जिन्हें ईर्ष्या होती थी । वह कहते—यह अन्धेका बेटा कैसा भाग्यशाली है । कालेजमें एक ही परी थी, उसीको ले उड़ा । हम टापते ही रह गए । लड़की निरी मूर्खी है, जो उसके चकमोंमें आ गई । चार दिनमें पछताने लगेगी । न जाने किसका बेटा है ! शायद किसी भंगी-चमारका लड़का हो ! मगर इन प्रेमके परवानोंको किसीकी भी परवा न थी । इनका प्रेम बराबर बढ़ता जाता था, मगर जब एफ़० ए० का नतीजा निकला और दोनों पास हो गए, तो विरह-वेदनाका भयंकर भूत दिखाई दिया । जब तक पढ़ते थे, विरहकी चिन्ता न थी, पर नतीजा निकलते ही उनके ब्याह-शादीका सवाल उठ खड़ा

हुआ। रूपकुँवरकी सगाई अपनी जातिके एक अमीर वकीलसे हो चुकी थी। उसके माँ-बापने लिखा, अब हम ज़्यादा प्रतीक्षा नहीं कर सकते, जल्दी ब्याह कर दो। उधर साधुनीने सूरदाससे कहा—अब तो दीपकने एफ० ए० की परीक्षा भी पास कर ली है, अब ब्याहमें देर न करो। लड़की जवान हो गई है।

दीपक और रूपकुँवर दोनों घबरा गए। सोचने लगे, काश, परीक्षामें फ़ेल हो जाते, तो एक वर्षका और मौका मिल जाता, मगर हाय अफ़सोस, उनके भाग्यमें फ़ेल होना न लिखा था ! विद्यार्थी फ़ेल होकर रोते हैं, वे पास होकर रोते थे।

एक दिन दीपकने रूपकुँवरसे कहा—दादा नहीं मानता। कहता है, मैं साधुनीको वचन दे चुका हूँ। अब इनकार क्योंकर कर दूँ ? लड़की तुम्हारे नामपर बैठी है। वह क्या करेगी ?

रूपकुँवरने दीपककी तरफ़ करुणायुक्त दृष्टिसे देखा और गर्दन झुका ली।

दीपकने डरते-डरते पूछा—तुम्हारी माँ क्या कहती है ?

रूपकुँवरने सिर हिलाकर धीरेसे जवाब दिया—वह भी नहीं मानती। कहती है, जाने किसका बेटा है ! तुम्हें अन्धे कूँएमें कैसे भोंक दूँ ? कहती है, सूरदास अंधा है मैं तो अंधी नहीं हूँ।

दीपकके सीनेमें तीर-सा चुभ गया। थोड़ी देर दोनो चुपचाप अपने अपने दिलमें कुछ सोचते रहे। इसके बाद दीपकने एक ठंडी सांस भरी और कहा—रूप, अगर मुझे मालूम होता कि हमारे प्रेमका यह परिणाम होगा, तो तुमसे कभी प्यार न करता। हँस-हँसकर मिले थे, रो-रोकर जुदा होंगे।

रूपकुँवरने नागिनकी तरह सिर उठाया और कहा—हमें जुदा कौन कर सकता है ? कोई नहीं। मुझे माँकी भी परवा नहीं है।

दीपक—कहना आसान है कि हम जुदा न होंगे, मगर जुदा तो होना ही पड़ेगा रूपकुँवर !

दोनों फिर चुप हो गए। साँझका समय था; गंगाका पानी, उसके किनारेके वृक्ष, पक्षियोंका कलरव, दिनकी रोशनी—सब धीरे धीरे अँधेरेमें डूब रहे थे। ठीक उसी तरह उनकी आशाओंके फूल, जीवनका प्रकाश, मनोकामनाओंकी शोभा—सब कुछ निराशाके अँधेरेमें डूबा जा रहा था। सहसा रूपकुँवरने दीपकके कन्धेपर हाथ रखा, उसकी आँखोंमें अपनी आँखें डालीं और साहससे बोली—चलो, कहीं भाग चलें। ऐसे देशमें, जहाँ हमारा अपना कोई भी न हो। विरोध अपने ही करते हैं, पराए नहीं करते।

दीपकने रूपकुँवरका फूल-सा हाथ अपने हाथमें लेकर धीरे से कहा—बदनाम हो जाएंगे।

रूप०—पर चिन्ता तो मिट जाएगी।

दीपक—दादा क्या करेगा ? यह भी सोचा तुमने ?

रूप—करना क्या है। घाटपर बैठकर गाना गाएगा। तुम भोले हो। समझते हो, उसे भी तुम्हारा उतना ही खयाल है, जितना तुम्हें उसका खयाल है। मगर यह तुम्हारी भूल है। वह तुम्हें चार दिनमें भूल जाएगा।

दीपक—और तुम्हारी माँ ?

रूपकुँवर (अपने सिरकी साड़ीको ठीक करके)—वह भी चार दिन रोएगी, फिर चुप हो जाएगी। समझ लेगी, लड़कीने अपने मनकी मरजी पूरी कर ली। और क्या !

यह कहकर रूपकुँवरने शर्मसे गर्दन झुका ली। इस अदा ने दीपकके दिलमें आग लगा दी। उसका दिल दोनों तरफ़ दौड़ता था। उसे दादाका भी खयाल था, रूपकुँवरका भी। वह दोनोंको चाहता था, मगर दोनों एक दूसरेसे दूर थे। दोनोंके बीचमें हज़ारों कोसोंका फ़ासला था। दीपक सोचने लगा।

आखिर वही हुआ जो ऐसे अवसरपर सदासे होता आया है। रूप

और यौवनके लोभने कर्त्तव्यका गला घोट दिया । दूसरे दिन दोनों कहीं भाग गए ।

७

सूरदासका संसार सूना हो गया । चारों तरफ़ भागता फिरता था और दीपकको ढूँढ़ता था । कालेजके प्रोफ़ेसरोके पास जाकर रोया, विद्यार्थियोंसे जाकर पूछा, दीपकके मित्रोंके पास गया, पर दीपकका किसीको भी पता न था । क्या क्या आशाएँ थीं, सबपर पानी फिर गया । क्या क्या उमंगें थीं, सब मिट्टीमें मिल गईं । क्या क्या सोचा था, सब सुपना हो गया । लोग कहते—‘सूरदास, अब बैठकर हरि-भजन कर । चला गया है, तो चला जाने दे ।’ सूरदास जवाब देता—‘क्या करूँ, जी नहीं मानता ।’ गंगा घाटके साधु कहते—सूरे, तू तो बावला हो गया है, कभी पराया बेटा भी अपना हुआ है ? पराया सदा पराया है । अब उसका ख्याल छोड़ दे । अब वह कभी न लौटेगा ।

एक पुजारीने कहा—जब तक पढ़ता था, उसे तेरी ज़रूरत थी । अब पढ़-लिख गया है, अब उसे तेरी क्या ज़रूरत है ? अब वह तेरे पास क्यों रहे ।

सूरदासकी आँखोंसे आँसू बहने लगे ।

वह लाठीके सिरेपर हाथ रखकर बोला—उसे तो खाने पीनेकी भी सुध नहीं । कोई न खिलाए, तो दो दो दिन खाना ही न खाएगा, बड़ा भोला है । बड़ा बे-परवा है ।

एक और साधुने कहा—यह सब माया है सूरदास । तू अगर जरा सोचे, तो तेरे हिरदेके किवाड़ खुल जाएं । तेरी आत्मा जाग उठे । मगर तू सोचता ही नहीं ।

और सूरदासके दिलपर जो बीत रही थी, उसे कौन जानता था ? सन्ध्या-समय घरको जाता, तो सोचता, शायद दीपक आ गया हो; मगर वहाँ कोई न मिलता । रातको ज़रा दरवाज़ा हिलता, तो सूरदास उठकर बैठ जाता, शायद वही हो, मगर वह कहाँ था ? अन्धेकी किसमत उसकी अन्धी आँखोंसे भी ज़्यादा अंधेरी थी ।

इसी तरह तीन वर्ष गुज़र गए, दीपक और रूपकुँवरकी कोई टोह न मिली । रूपकुँवरकी माँ बेटीके वियोगमें रो-रोकर मर गई । सूरदास जीता है, पर उसका हाल मुर्देसे भी बुरा है । पहले शरीर मज़बूत था, अब हड्डियोंका पिंजर रह गया है । अब उसे किसीने हँसते नहीं देखा । गाना भी छूट गया है ; जब किसीसे बात करता है, तो उसकी आँखोंमें आंसू आ जाते हैं । चुपचाप घाटपर बैठा रहता है, और दोपहरको उठकर घर चला आता है । साधुओंने बहुत समझाया कि मकान छोड़ दे, मगर सूरदास मकान नहीं छोड़ता । उसे अब भी दीपकके आ जानेकी आशा है । हर रात उसके पलंगपर बिस्तरा बिछाता है, हर सप्ताह उसकी चादर बदल देता है । रोज़ लैम्पकी चिमनी साफ़ करता है, रोज़ पुस्तकोंपरसे गर्द झाड़ता है । उसकी इस अन्धी, बहरी, निराश न होनेवाली मुहब्बतको देखकर लोगोंके कलेजेमें हूक-सी उठती है ।

आखिर एक दिन सूरदासके सोए हुए भाग्य जागे ।

रातका समय था । सूरदास दीपकके पलंगकी चादर बदल रहा था और गुज़रे हुए दिनोंको याद कर रहा था । अकस्मात् किसीने दरवाज़ा खटखटाया । सूरदास सचेत हो गया । यह हवाका धक्का न था, न कोई जीव जन्तु था । ज़रूर कोई आया है । यह विचार आते ही सूरदासने झपटकर किवाड़ खोल दिया, और बिना प्रतीक्षा किए पूछा—कौन, दीपक है क्या ?

आनेवाला—नहीं, दीपक नहीं; मगर उसका समाचार है ।

सूरदासकी नस-नसमें खुशी दाढ़ गई । वह साधुको घसीटकर अन्दर ले गया, और पलंगपर बैठाकर हाँफते हुए बोला—जल्दी बताओ, क्या खबर है ?

यह कहकर उसने झटपट लेम्प जला दिया ।

साधु—मैंने तुम्हारा दीपक देखा है ।

सूरदासका मुँह आशाकी रोशनीसे चमकने लगा । जल्दी-जल्दी आँखें झपककर बोला—कहाँ देखा है, बाबाजी ! कहाँ देखा है ?

साधु—लाहौरमें ।

सूरदास—वही था ? कहीं तुमसे भूल तो नहीं हुई ?

साधु—भूल कैसे होगी ? मैं उसे सैंकड़ों और हजारोंमें पहचान लूँ । वह राँड भी उसके साथ थी, दोनों बाज़ारमें जा रहे थे । मैंने देखते ही पहचान लिया कि वही है । अब तो सा'ब बन गया है । अब वह बिलकुल सा'ब मालूम होता है । सूर, जरा चिलम तो दे मुझे ।

सूरदासने चिलमपर आग धर दी । साधु दम लगाने लगा ।

सूर०—तुमने बुलाया नहीं उसे ?

साधु—बुलाया क्यों नहीं, झट आगे बढ़कर कहा 'बाबू सा' ब कुछ दान मिल जाए ।' उसने मेरी तरफ मुस्कराकर देखा और कहा, 'बाबा । कुछ काम क्यों नहीं करते ?' वह राँड बोली 'मुफ्तमें खानेकी आदत पड़ गई है,' मगर दीपकने एक पैसा दे ही दिया । उस राँड का अस्व्यार होता, तो न देती । बोलो, चलोगे ? मैं उसका मकान भी देखा आया हूँ । ग्वालमंडीमें है ।

सूरदासको साधुके मुँहसे दीपककी स्त्रीके लिए राँडका शब्द सुनकर ज़हर चढ़ गया, मगर उसने क्रोधको प्रकट न होने दिया । बोला—जरूर चलूँगा । तुम भी चलोगे न ? तुम्हारा किराया मैं दूँगा । आज मुझे बड़ी खुशी है । आज मुझे अपने दीपककी खबर मिली है । उसे सरम लगती होगी, वरना आप आकर मुझे ले जाता । मैं जाते ही छिमा

कर दूँगा, तो बड़ा खुस होगा। बोलो, कब चलोगे ? आज ही क्यों नहीं चलते ? उसे पाकर मैं जी जाऊँगा।

साधु—आज नहीं सूरे, परसों चलेंगे। मैं तुम्हें उसके दरवाज़ेपर पहुँचा कर चला आऊँगा, यह पहले कहे देता हूँ।

सूर०—चले आना; मगर परसों तो बहुत दूर है। अब मुझसे धीरज न होगा। कल चलो।

यह कहकर सूरदासने साधुके चरण पकड़ लिए। अब वह इनकार न कर सका, बोला—कल ही सही, रुपयोंका परबन्ध कर लो। मेरे पास किराया नहीं है।

सूर०—किराएकी चिन्ता न करो तुम। अब इस वक़्त कहाँ जाओगे ? यहीं पड़ रहो। क्यों ?

साधु—नहीं सूरे, घाटपर जाऊँगा। सीधा इधर ही आ रहा हूँ। इस वक़्त जाने दो, सबसे मिलना है।

साधु चला गया। सूरदास बैठकर सोचने लगा—दीपक क्या कहेगा ? देखते ही गलेसे लिपट जाएगा, और छिमा माँगेगा। मैं पहले खफा हूँगा, फिर मान जाऊँगा। उसकी बहू लायक मालूम होती है ; चलो, अच्छा हुआ साधुनीकी लड़की फिर भी फकीरनी ही थी। यह पढ़ी लिखी है। मेरा जरूर खयाल करेगी ; ऐसी स्त्रियोंका हिरदा नरम होता है।

सूरदासने तम्बूरा उठाया और गाने लगा। आज उसका सुर कितना मीठा, कितना सुरीला था। आज उसका दिल उमड़ा हुआ था। आज उसकी कुम्हलाई हुई आशा पानी पीकर फिर हरी हो उठी थी। जब सवेरा हुआ, तो उसने मिट्टीके भाँडेसे रुपये निकाले और अंटीमें बाँधकर घाटकी तरफ़ चला। आज उसके पाँव ज़मीनपर न पड़ते थे। आज वह उड़ा जाता था।

चौथे दिन रातके समय लाहौरमें ग्वालमंडीके एक दोमंज़िले मकानके सामने एक टमटम रुकी, और उसमेंसे वह खाधु और सूरदास उतरे। साधु सूरदासको मकानके पास ले गया और दूसरे दिन मिलनेका वादा करके चला गया। सूरदास कुछ देर चुप रहा, इसके बाद उसने धीरेसे किवाड़ खटखटाया।

थोड़ी देर बाद किसीने अंदर से पूछा—कौन है ?

सूरदासका कलेजा धड़कने लगा—यह वही था, वही आवाज़ थी, वही उच्चारण था, वही शब्द थे, वही माधुरी थी। जरा भी फर्क न था। वही जिसके लिए सूरदास तीन साल तक छटपटाता रहा था। जिसके सामने वह अपना जीवन भी तुच्छ समझता था।

“कौन है ?” दीपकने फिर पूछा और उसके साथ ही कमीज़ पहने नंगे सिर आकर दरवाज़ेमें खड़ा हो गया।

सूरदासने दीपकके पाँवोंकी आहट पहचान ली और दोनों हाथ फैलाकर कहा—भैया ! मैं हूँ सूरदास।

दीपकने एक क्षणके लिए सूरदासके भूखे सूखे शरीरको देखा, और इसके बाद ‘दादा ! दादा !’ कहकर उसके गलेसे लिपट गया।

थोड़ी देरके बाद दोनों कमरेमें बैठे थे, और बातें कर रहे थे। सूरदासने कहा—देखा ! मैंने तुझे आ पकड़ा आखिर। अब कहाँ भागेगा ?

दीपक—शायद आपको विश्वास न हो। कई बार तैयार हुआ कि चलकर आपको यहाँ ले आऊँ। मगर शरम रास्ता रोक लेती थी।

सूरदास—एक खत ही लिख दिया होता।

दीपक—रूपकुँवर कहती थी, मेरी माँको पता लग गया, तो बड़ी परेशानी उठानी पड़ेगी।

सूरदास—वह तो कभीकी मर चुकी । तुम्हें मालूम है या नहीं ?

दीपक—जी हाँ, मालूम हो गया था । आप तो आधे भी नहीं रहे । आप मुँहसे न बोलते तो शायद मैं पहचान भी न सकता । वह शकल ही नहीं रही ।

सूरदास (दीपकके शरीरपर हाथ फेरकर)—तुम भी तो बहुत कमज़ोर हो गए । कुछ दूध पीते हो या नहीं ? भैया, दूध रोज़ पिया करो । दूधमें, बड़ी ताकत है ।

दीपक—रोज़ पीता हूँ दादा ! मुझे तो सब कहते हैं, तुम बहुत मोटे हो गये हो ।

सूरदास—चल झूठा कहींका । जो बात काशीमें थी, वह बात कहाँ ? क्या तलब मिलती है ?

दीपक—६०) मिलते हैं दादा । वह भी स्कूलमें पढ़ाती है । ६०) उसे भी मिलते हैं । सवा सौ हो जाता है । बड़े मजेमें हैं ।

सूरदास—बुढ़ेका तो ख़याल ही न था । अब खोपड़ीपर आकर सवार हो गया । तेरी इस्त्री बुरा तो न मानेगी, कि यह अन्धा कहाँसे आन मरा ।

दीपक—वह मुझसे ज्यादा प्रसन्न हो रही है । कहती है, अहोभाग्य ! जो हमारा बड़ा कोई घरमें आया ।

मगर प्रसन्नताकी पोल आधी रातको खुली ।

आधी रातका समय था । सूरदासकी आँख खुल गई । दीपक और रूपकुँवर धीरे धीरे बातें कर रहे थे । अन्धोंके कान बहुत पतले होते हैं । सूरदासने एक-एक शब्द सुन लिया । रूपकुँवर कह रही थी—बड़े संकटमें फँस गए । क्या करें ?

दीपक बोला—मैंने इसीलिए चिट्ठी नहीं लिखी थी कि दोड़ा हुआ चला आएगा ।

रूपकुँवर—कह दो वहीं चला जाए। हम पाँच रुपये हर महाने भेज दिया करेंगे। इसके लिए पाँच रुपये बहुत हैं।

दीपक—अन्धा कभी न मानेगा।

रूपकुँवर—तो मैं बिठाकर पराठे खिलाऊँ, यह मुझसे भी न होगा। कौन हाथ झुलसे।

दीपक—यार-दोस्त पूछेंगे 'यह कौन है' तो क्या कहूँगा ?

रूपकुँवर हँस पड़ी—कह देना मेरे पूज्य पिताजी हैं, और क्या ? देखकर निहाल हो जाएंगे।

दीपक—साठ सत्तर वर्षका हो गया, मौत भी नहीं आती। और अभी दस वर्षसे पहले कभी न मरेगा। देख लेना।

सूरदासको ऐसा मालूम हुआ, जैसे खाट उसके नीचेसे निकली जाती है, जैसे उसके दिलपर किसीने सैकड़ों मनका पत्थर रख दिया है। वही लड़का जिसे उसने इतने लाड-प्यारसे पाल-पोसकर बड़ा किया था, जिसके लिए रात-दिन एक कर दिया था, जिसके पढ़ानेके लिए उसने अपना आत्म-गौरव भी बेच दिया था, वही लड़का आज उसकी मातके लिए मिन्नतें मान रहा था ! जिसे उसने पन्द्रह साल खिलाया, वह उसे एक दिन भी न खिला सका !

सूरदासने दूधे पाँव उठकर अपनी लाठी उठाई और चुपचाप दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल आया। नया शहर था। नई गलियाँ थीं। नए रास्ते थे। पग-पगपर ठोकरें खाता था, और गिरता था, मगर चला जाता था। कहाँ ? किसके पास ? यह वह आप भी न जानता था। वह चाहता था, किसी तरह दीपकके घरसे दूर निकल जाए। थोड़ी देरके बाद बड़े जोरसे बिजली कड़की और इसके साथ ही वर्षा होने लगी। मगर सूरदास अब भी गिरता-पड़ता, ठोकरें खाता, भागा चला जा रहा था। सारी गन वर्षा होती रही, सारी रात सूरदास इधर-उधर भागता, दौड़ता, ठोकरें खाता रहा।

दूसरे दिन पुलीसको सड़कपर एक अन्धे फकीरकी लाश मिली।

प्रतापके पत्र

१

रामनिवास, जालंधर

१ जुलाई १९१५

मेरे प्यारे राधाकृष्ण

नमस्ते । आखिर हमारा ब्याह हो गया, और बड़ी धूम-धामसे । हमारे गाँवके बुढ़े बुढ़े आदमियोंका कहना है कि यहाँ ऐसा ब्याह हमने तो नहीं देखा । पिताजीने दिल खोलकर खर्च किया । इतना दिल खोलकर मानो वह इस अवसरपर अपना सारा धन पानीके समान बहा देंगे, मानो अपना सब कुछ खर्च देंगे । मैंने एक आध बार दूनी ज़बानसे कहा कि आप ज़्यादा खर्च कर रहे हैं । इसपर मुस्कराकर बोले—तुम्हारा ब्याह है, तुम्हें बोलनेका अख्तियार नहीं, चुप-चाप देखते चलो । इस समय मैं किसीकी न सुनूँगा । फिर मुझे मुँह खोलनेका साहस नहीं हुआ । वे खर्च करते थे, मैं चुप-चाप देखता था । इसके बाद बारात पेशावर पहुँची । लड़कीवालोंने हमारे ठहरनेका और स्वातिर-तवाज़ोका ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया था कि तुमसे क्या कहूँ ! किसीको भी शिकायतका मौका नहीं मिला । अगर तुम आते, तो देखते कि ब्याह का प्रबन्ध कैसा किया जा

सकता है। असम्भव था कि किसीके मुँहसे कुछ निकले, और वह चीज़ उसी समय हाज़िर न कर दी जाए।

मगर मुझे केवल एक ही खयाल था। सोचता था, देखूँ, श्रीमतीजी कैसी हैं? दहेज़ मिले या न मिले, पर स्त्री अच्छी मिल जाए। कहीं कुरूपा न हो, काली न हो, भड़ी न हो। हे भगवान्! बचा लेना, नहीं तो जीवन ही नष्ट हो जाएगा। भाँवरें पड़नेका समय आया, तो दिल धक धक कर रहा था। मगर मेरे अंदेशे निर्मूल सिद्ध हुए। मैंने उसका माखन सा हाथ देखा, तो शान्ति और संतोषकी साँस ली—वह सुन्दरी थी। कमसे कम काली न थी। स्त्रीका हाथ देखकर उसकी शक्ल-सूरतका अन्दाज़ा किया जा सकता है। भाग्यवान् घर अपनी ड्योढ़ीहीसे पहचाना जाता है। तुम हँसोगे, हँस लो। मगर मैं दावेसे कह सकता हूँ, कि अपने ब्याहमें तुम भी यही करोगे। एक ही महीना बाकी है, फिर पूछूँगा। मगर फिर भी मुझे बड़ी चिन्ता थी। यह चिन्ता उस समय तक दूर न हुई, जब तक मैंने घर पहुँच कर देवीजीके साक्षात् दर्शन न कर लिए। गाँव-भरकी स्त्रियाँ कहती हैं, बहू क्या है, चाँद है। मैंने देखा, तो मुग्ध हो गया। चलो, यह चिन्ता तो मिटी।

बीस दिन हुए, हम दोनों यहाँ आ गए हैं। बड़े मजेसे कटती है। अब मालूम हुआ है, जीवन किसे कहते हैं। लज्जाने मुझपर जादू कर दिया है। यही जी चाहता है, उसे आँखोंसे ओझल न होने दूँ। हर समय देखता रहूँ। बड़ी सरल-स्वभाव है; जब देखो, हँसती और मुस्कराती रहती है। कभी चुप नहीं बैठती, कभी उदास नहीं होती। मुझे जी-जानसे चाहती है। कचहरीसे लौटता हूँ, तो द्वारपर खड़ी पाता हूँ। ज़रा भी देर हो जाए, तो घबरा जाती है। उसकी आँखोंसे प्यार छलक छलक पड़ता है, गोया आँखें क्या हैं अमृतके भरे हुए कटोरे हैं। ऐसा नारी-रत्न पाकर मैं फूला नहीं समाता। कोई रूप चाहता है, कोई प्यार चाहता है। मुझे स्वर्गकी यह दोनों चीज़ें मिल गईं।

एक मजेदार घटना सुनो। कल संध्या-समय कुछ मित्र बैठे थे, और इधर-उधरकी बातें हो रही थीं। इतनेमें एक साहब बोले—आज इंग्लिस्तानकी एक बड़ी बढ़िया नाटक कम्पनी आई है, तमाशा देखना चाहिए। सबने हाँ में हाँ मिलाई। मगर मेरा जी न चाहता था, मैंने इनकार कर दिया। बस जनाब, उन शोहदोंने ऐसे ऐसे ताने मारे कि तुमसे क्या कहूँ ? विवश हो गया। पर सोचता था, लज्जा अकेली है, कैसे जाऊँ ? घबरा गया। मुझे किंकर्तव्यविमूढ़ देखकर एक महाशय बोले, क्यों, स्त्रीसे डरते हो क्या ? अरे भाई ! कोई बहाना बना दो। मैं बड़ा चकराया कि झूठ कैसे बोल दूँ ! दूसरे मित्रने कहा, कचहराईमें जजके सामने, और घरमें स्त्रीके सामने जो सच बोले, उससे ज़्यादा बेवकूफ़ कोई नहीं। इसपर सब हँसने लगे। लाचार झूठ बोलना पड़ा। कह दिया, आज आर्य-समाजकी मीटिंग है, वहाँ देर हो जाएगी। एक दो बजेसे पहले न लौट सकूँगा, तुम सो रहना। उस ग़रीबको क्या पता था कि यहाँ कोई दूसरी ही मीटिंग है। उदास होकर बोली, मैं जागूंगी।

हम थियेटरमें पहुँचे। नाटक शुरू हुआ। सब मित्र हँसते थे, मुस्कराते थे, ऐक्टरोंके अभिनयपर टीका-टिप्पणी करते थे। मगर मेरा मन बैठा जाता था। नाटककी तरफ़ ध्यान ही न था। आखिर पहले ऐक्टक। अंतिमा दृश्य आया। यह दृश्य बड़ा हृदयवेधक था। एक बे-परवा शराबी शराबखानेमें बैठा अपना धन, अपना स्वास्थ्य, अपना मनुष्यत्व अपने हाथोंसे नष्ट कर रहा था, और घरमें उसकी स्त्री उसकी तसवीरसे बातें कर रही थी, और समझती थी कि उसका पति कारबारकी नई नीतिके सम्बन्धमें अपने मालिकसे बातचीत कर रहा है। मैं चौंक पड़ा। मेरी पीठपर किसीने चाबुक मार दिया। यह काल्पनिक नाटकका काल्पनिक दृश्य न था। मैंने नाटकके दर्पणमें अपना काला मुँह देखा और तलमलाकर खड़ा हो गया। मित्र-मंडली रोकती ही रह गई, मगर मैंने उनकी एक न सुनी, और चला आया। घर पहुँचकर देखा, तो ग़रीब लज्जा लालटेन सामने रखे बैठी है, और ऊँघ रही है। मैं कट

गया । मुझे अपने आपसे धृणा हो गई । मुझे उसके निकट जाते, उसे छूते, उसे हाथ लगाते संकोच हो रहा था । मैंने मुँहसे कुछ न कहा, मगर दिलमें प्रतिज्ञा कर ली है कि अब लज्जासे कभी झूठ न बोलूँगा ।

तुम निश्चिन्त रहो, तुम्हारे ब्याहमें जरूर आऊँगा ।

तुम्हारा मित्र

प्रताप

२

रामनिवास, जालन्धर

१४ सितम्बर १९१५

प्यारे राधाकृष्णजी !

नमस्ते । पत्र मिला, पढ़कर आश्चर्य हुआ । आखिर इसका क्या मतलब कि भाभीजी का हाल दो सतरोंमें समाप्त कर दिया । रूपवती है, कद लम्बा है—यह बातें तो ब्याह ही में मालूम हो गई थीं । मैंने जो कुछ पूछा था, उसके बारेमें एक भी शब्द नहीं लिखा, हाँ इधर-उधरकी बातोंसे दो कागज़ काले कर दिए । मैंने पूछा था भाभीजी का स्वभाव कैसा है ? तुम्हारे साथ लड़ाई-दंगा तो नहीं करती रहती ? सारा दिन क्या करती हैं ? कुछ घरका काम-काज भी करती हैं, या केवल उपन्यास ही पढ़नेका शौक है ? बताओ, इन बातोंका तुमने क्या जवाब दिया ? कुछ भी नहीं । एक हम हैं कि अपनी ' मेम साहब ' की एक एक बात लिख देते हैं और पूरे विस्तारसे !

रसोई बनानेके लिए नौकर रक्खा था, देवीजीने निकाल दिया । कहती हैं, हमारी आज्ञादीमें फर्क पड़ता है । हर समय सहमे सहमे रहो, कहीं कुछ सुन न ले, कहीं कुछ देख न ले । यह रोग कौन पाले ? भट पड़े सोना जो छेदे कान । मैंने बहुत कहा, कि तुम्हारी

तबीयत बिगड़ जाएगी । मगर जनाब, कौन परवा करता है । अब सारा काम-काज अपने “ श्रीहाथों ” से करती हैं, और ज़रा भी नहीं थकती । और फिर लुत्फ़ यह कि हमारा कोई भी काम नहीं रुकता । सारा घर शीशेकी तरह चमकता है । जब नौकर था, ऐसी सफ़ाई उस ज़मानेमें भी न होती थी । मेरे दफ़्तरका चपरासी है, उससे भाजी आदि मँगवा लेती हैं, और सब काम आप करती हैं । यहा तक कि कमरोंकी सफ़ाई भी खुद करती हैं । मैं रोकता हूँ, और वह हँसकर टाल देती हैं । कहती हैं अपने घरका काम करनेमें लाज कैसी ? अपने पाँव तो रानियाँ भी धो लेती हैं । और फिर इन कामोंको भी ऐसे श्रद्धा-भावसे करती हैं, मानों किसी उपास्य देवताकी पूजा कर रही हों । एक दिन मैंने कहा, लज्जा, तुमको अब यह काम न करने दूँगा । मैं वकील हूँ, कहार नहीं हूँ । जो कहारियाँ भी न करें, तुम वह कर रही हो । इसपर जोशमें आगई, और एक पूरा व्याख्यान दे डाला । भाइ मुझपर तो रोब पड़ गया । मैं समझता था, सीधी सादी लड़की है । पर यह तो पूरी फ़िलासफ़र निकली । इसके विचार कैसे गम्भीर हैं ! ऐसी स्त्रियाँ मैंने अपने समाजमें नहीं देखीं । लज्जाका गौरव मेरी दृष्टिमें दिन-प्रति दिन बढ़ता जाता है । परमात्मा मुझे उसके योग्य बनाए ।

तुम्हारा मित्र

प्रताप

३

रामनिवास, जालन्धर

२० दिसम्बर १९१५

भाई जान !

नमस्ते । पत्र आपका मिला, पढ़कर आनन्द आ गया । मुझे सुपनेमें भी यह आशा न थी कि भाभीजी ऐसे स्वभावकी होंगी ! मिसिज़

प्रतापचन्द बहुत देर तक हँसती रहीं। फुरमाती हैं, ऐसा जवाब दूँगी, कि छठीका दूध याद आ जाए। हमने कहा—हम ऐसा जवाब देंगे कि सातवींका दही याद आ जाए।

तुम क्रिसमसकी छुट्टियोंमें दिल्ली बुलाते हो, मगर हम वहाँ न आ सकेंगे। हमारी सैर यहीं होगी। लज्जा कहती है, इन छुट्टियोंका रास्ता देखते देखते तो आँखें भी पक गई, अब दिल्ली आने-जानेमें कैसे उड़ा दें? तुमको भी असुविधा होगी। मुँहसे शायद मुरब्बतके मारे न कहो, मगर दिलमें ज़रूर गालियाँ देते रहोगे। और जहाँ तक भाभीजीको मैंने तुम्हारे पत्रोंसे समझा है, वह तो साफ़ साफ़ कह दगी कि तुम दोनों अजीब आदमी हो। हमने हँसी-मज़ाक़के तौर पर ख़त लिखा था, तुम सचमुच टिकट लेकर गाड़ीमें बैठ गए। इतना भी न हुआ कि एक आध बार नहीं कर दें। बताओ; उस समय मैं क्या जवाब दूँगा? तुम तो गरदन खुजलाते हुए छतकी तरफ़ देखने लग जाओगे। मगर हमारी आँखें तो ऊपर न उठेंगी।

न भाई, यह नहीं होगा। छुट्टियोंका पूरा सप्ताह यहीं बीतेगा। प्रातःकाल साहब बहादुर और मेमसाहब कम्पनी बाग़की सर करेंगे; दुपहरको ताश खेलेंगे, शामको सिनेमा हालमें जाकर प्रेम, रूप और यौवनके रसीले तमाशे देखेंगे और रातको घर आकर उन तमाशोंके खास खास हिस्सोंकी नक़्क़ उतारेंगे। कहो इससे रंगीन और दिलचस्प सैर और कहाँ होगी? दिल्लीमें क्या पड़ा है, लाल क़िला और कुतब साहबकी लाठ' और छुट्टियोंके रंगीन दिनोंका गला घोटनेके लिए नीरस भाई और एक कोतवाल भाभी! बाप रे बाप! ऐसी मूर्खता कौन कर सकता है? कमसे कम एक वकील तो नहीं, चाहे उसकी वकालत अभी तक न चली हो।

हाँ एक बातका मुझे बड़ा भय है। लज्जाकी छोटी बहन शान्ता यहाँ कन्या-महाविद्यालयमें पढ़ती है। क्रिसमसमें उसको भी छुट्टियाँ

होंगी । कहीं वह न आ जाए । परमात्मा उसे सुबुद्धि दें, वर्ना हमारी सारी शुभ इच्छाएँ मिचट्टीमें मिल जाएंगी ।

तुम्हारा प्रताप

४

रामनिवास, जालन्धर

२८ दिसम्बर १९१५

माई डिअर राधाकृष्ण !

नमस्ते । जिस बातका भय था, वही हुई । शान्ता २४ तारीख को हमारे घर आ गई । अगर पहले पता होता तो भगवान् जानता है, तुम्हारा निमंत्रण ज़रूर स्वीकार कर लेता । और न होता, दिल्लीकी सैर तो हो जाती । और फिर तुम्हारे यहाँ हमें उस लोकलज्जाकी ज़रूरत न थी, जिसका हम आज-कल यहाँ खयाल रखना पड़ता है । कुँवारी लड़की है, उसके सामने आँख भी उठाएँ, तो शर्म आती है । एक दिन खाना खा रहे थे । मैं मना करता रहा, लज्जाने थालमें और रोटी फेंक दी । मेरा पेट भर चुका था, एक ग्रासके लिए भी जगह न थी । भैंने पूछा—मुझे तो भूख नहीं, अब यह रोटी कौन खाएगा ?

लज्जाने धीरेसे जवाब दिया—आप खाएँगे ।

मैं—मुझे तो अब ज़रा भी भूख नहीं । जो खाना था, खा चुका !

लज्जा—खा कैसे चुके ? एक ज़रा-सी रोटी है । खा जाओ ।

म—नहीं मेरी रानी ! इस वक्त तो माफ़ ही कर दो ।

बस इसी बातपर ख़फ़ा हो गई कि तुमने मेरी बहनके सामने यह शब्द कहे क्यों ? वह दिलमें क्या कहती होगी ? यही कि दोनों निर्लज्ज हो गए मेरे सामने भी मज़ाक़ करनेसे न रुके । और जो उसने विद्यालयमें जाकर अपनी किसी सहलीसे कह दिया, फिर तो ग़ज़ब ही हो जाएगा । कहो

कैसा दुर्भाग्य है, अपने घरम भी पराए बनकर रहो और अपनी औरत को भी आँख मारो । क्या सोचा था, क्या हो गया ? और शान्ता इतनी भोली है, कि इन बातोंको ज़रा नहीं समझती, रातको भी बहनके साथ ही सोती है । अब हमारा यह हाल है कि खीरका थाल सामने धरा है, खानेको मन ललचा रहा है, मगर आँख उठाकर देखते भी नहीं कि कहीं कोई यह न कह दे, भूखा है, देखते ही टूट पड़ा । हाथ बढ़ाते भी हैं, तो इस शानसे जैसे श्रीमान्जी अनुरोधसे खा रहे ह । गो सच यह है कि पेटमें चूहे दौड़ रहे हैं । अगर संसारके व्यवहारका भय न होता, तो थालहीको मुँह लगा देते, चमचेकी भी परवाह न करते, मगर अब...

तुम पूछोगे, आजकल दिन कैसे कटता है ? दफ्तरम बैठा कानूनी पुस्तकें देखा करता हूँ । मगर केवल देखता हू, पढ़नेमें किस मरदूदका जी लगता है ! लेकिन शान्ताका आना मुझे ही नहीं अखरा, लज्जाको भी बुरा मालूम हुआ है । एक दिन शान्ता छतपर बैठी एक पुस्तक पढ़ रही थी, लज्जाने मुझे इशारेसे कमरेमें बुलाया और मेरा हाथ प्यारसे अपने हाथमें लेकर कहा—खफ़ा क्यों रहते हो ? क्या करूँ, छुट्टियोंके दिन बड़े मजेसे गुज़रते, मगर शान्ताके मारे सिर नहीं उठाया जाता । मैंने एक आध बार कहा भी है कि तुम्हारी पढ़ाईमें अड़चन पड़ती होगी, विद्यालय चली जाओ । पर वह इतनी भोली है कि ज़रा नहीं समझती; कहती है, कोई बात नहीं । एक सप्ताहके लिए बहन मिली है, उसे तो न छोड़ूँगी ।

मैं (लज्जाकी ठुठ्ठीको हाथसे ऊपर उठाकर)—अगर यह न आती, तो ताश खेलते, प्यार मुहब्बतकी बातें करते और....

लज्जा मेरा संकल्प जानकर पीछे हट गई, और हँसकर बोली—तुम बड़े वह हो । दूर खड़े रहो ।

मैं—क्यों लज्जा, यह क्यों नहीं कहती कि हम तुम्हें मिलनेको रोज़ विद्यालय आ जाया करेंगे ।

लज्जा (मुस्कराकर)—यह तीर भी खाली गया । वह कहती है, तुम मेरी बड़ी बहन हो, तुम्हें कष्ट न दूँगी ।

बताओ, क्या किया जाए ? उधर तुम अपनी गोपीको साथ लिए मथुरा और वृन्दावनकी सैर करते फिरते हो । अगर तुम्हारा कहा मान लेते, तो इस संकटमें काहेको फँसते ?

मगर इतना ही नहीं । मेरे दिलपर एक बोझ-सा पड़ा रहता है । तुम मेरे परम मित्र हो, तुमसे क्या परदा है ? मुझे लज्जापर कुछ संदेह हो गया है । बहुत यत्न करता हूँ, मनको समझाता हूँ, मगर मन नहीं मानता । कल शामको घर आया, तो लज्जा बैठी कुछ लिख रही थी, और ऐसी तन्मय होकर, कि उसे मेरे आनेकी भी खबर न हुई । शान्ता ऊपर थी । मेरे दिलमें ख्याल आया कि आगे बढ़कर लज्जाकी आँखोंपर पीछेसे हाथ रख दूँ । चौंक उठेगी । मैं कहूँगा, तुम्हें मालूम भी न हुआ । यह सोच कर मैंने पाँवसे जूता निकाल दिया, और धीरे धीरे आगे बढ़ा । एकाएक वह चौंक पड़ी । उसने मुझे देखा, और कागज़ छिपा लिया । मैं कहता था, दिखाओ, क्या लिखती थीं ? वह कहती थी क्यों दिखाऊँ ? न दिखाऊँगी । मैंने प्यारसे कहा, क्रोधसे कहा, गम्भीरतासे कहा । मगर उसपर इनमेंसे किसी बातका भी असर न हुआ । राम जाने क्या लिख रही थी ? कोई खास बात ही होगी, वरना मुझसे छिपानेकी ज़रूरत ही क्या थी ? मैं हारकर चुप हो रहा, मगर सन्देहकी आग दिलमें धधक रही थी । सारी रात नींद नहीं आई ।

अब ऐसा मालूम होता है, जैसे कोई कीमती चीज़ खो गई हो, या जैसे किसी अज्ञात भयसे दिल काँप रहा हो । कई बार खयाल आता है कि बात कुछ भी नहीं; अपने भाई या पिताको पत्र लिख रही होगी । मैं भी कैसा छोटे दिलका आदमी हूँ, ज़रा-सी चञ्चलतापर ऐसी सुशीला, प्रेममयी, पतिव्रतापर ऐसा सन्देह ! निश्चय ही मैं पागल हो गया हूँ । पर क्या करूँ, यह सन्देह साँपके ज़हर की तरह पल पल बढ़ता जाता

हैं। संसारकी हर एक चीज़ बदली हुई दिखाई देती है। परमात्मा करे, यह वहम ही हो। मगर जब तक कागज़ देख न लूँगा, चैन न आएगा।

तुम्हारा

चिन्ता-ग्रस्त प्रताप

५

रामनिवास, जालन्धर

३ जनवरी १९१६

भाई जान !

तुम्हारा पत्र मिला, मगर अब मुझे समझाना बेकार है। जो होना था, हो चुका। तुम्हारा खयाल है, मेरा दिमाग चल गया है। तुम समझते हो, लज्जा सती-साध्वी है। मेरी भी ऐसी ही धारणा थी। मगर काश ऐसा होता, तो इस समय मैं इतना दुखी, अधीर, अशान्त न होता। तुम्हें यह सुनकर शोक होगा कि लज्जा इस दुनियासे चल बसी, मगर मुझे इसका ज़रा भी शोक नहीं। हाँ, अगर न मरती, तो ज़रूर शोक होता।

वह पत्र मैंने पढ़ लिया। सन्ध्याका समय था, लज्जा शान्ताको छोड़नेके लिए विद्यालय चली गई थी। मैंने मैदान साफ़ पाकर मेज़की दराज़ खोल ली। मुझे आशा न थी कि ख़त वहाँ होगा। मैं समझता था, वह ऐसी अदूरदर्शी, इतनी मूर्खी नहीं। मगर वह कागज़ वहीं था, उसी तरह, न लपेटा हुआ, न तह किया हुआ। मैंने उसे पढ़ा, और मेरा सिर चकराने लगा। यह मामूली कागज़ न था, लज्जाके पापोंका प्रमाण था। यह चिठी न थी, मेरे प्रेमापमानकी घृणा-पूर्ण कहानी थी। मैंने सिर पीट लिया। किसे खयाल था कि लज्जा जैसी नेक लजीली, प्यार करनेवाली स्त्री ऐसी औरत होगी ? किसी दूसरेकी ज़बानसे मैं यही बात सुनकर

उसपर कभी विश्वास न करता, मैं उसका मुँह नोच लेता, मैं उसकी गदरन मरोड़ देता। मगर अब....यह सन्देह न था, लज्जाके अपने हाथकी लिखी हुई चिट्ठी मेरे सामने थी, और मैं उसे अपनी आँखोंसे पढ़ रहा था। यह प्रेम-पत्र किसी मनमोहनके नाम था—“प्यारे मनमोहन, ब्याह हो गया; पर मैं अब भी तुम्हारी हूँ। मेरा पति मुझे बहुत चाहता है, मेरी हर एक इच्छाको पूरा करना अपना धम्म समझता है। मगर तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मुझे उसकी शक्लसे भी घृणा है। उसे देखकर मेरी देहमें आग-सी लग जाती है। अगर अपने बसकी बात होती, तो एक दिनमें भाग खड़ी होती, और तुम्हारे पास पहुँच जाती। पर अपनी और तुम्हारी बदनामीका भय है।

राधाकृष्ण, यह अधूरा पत्र पढ़कर मुझपर बिजली-सी गिर पड़ी। मैं वहीं कुरसीपर बैठ गया। नहीं, बैठा नहीं, गिर पड़ा, और फूट फूटकर रोया। इस तरह मैं अपने जीवनमें आज तक कभी नहीं रोया। कितनी लज्जा, कैसे शोककी बात है, कि जिस स्त्रीपर मैं अपनी जान निछावर करता था, जिसका प्रेम मेरे दिलका प्रकाश था, जिसकी मुस्कराहट देखकर मेरे शरीरके रोम रोममें आनन्दकी लहर दौड़ जाती थी, वही स्त्री किसी दूसरेको चाहती थी। और मैं कितना मूर्ख था, कि मुझे इसका ज़रा भी पता न था। वह द्वारपर खड़ी होकर मेरी प्रतीक्षा करती थी, वह मुझे देखकर खुशीसे झूमने लग जाती थी, उसकी आँखें चमकने लगती थीं, मगर प्यारकी ये धोखेबाज़ियाँ केवल इसलिए थीं कि मैं उल्लू बना रहूँ। परमात्मा जाने, इसी छत-तले बैठकर उसने अपने अपवित्र हाथोंसे इसी तरहके और कितने पापभरे पत्र लिखे होंगे।

थोड़ी देर बाद वह आ गई। उसके मुँहपर इस समय भी वही सादगी थी, आँखोंमें वही प्रेम! मगर अब मैं पागल नहीं हो गया। अब मैंने उसका दिल देख लिया था। ऊपर जलकी लहरें खेलती थीं, नीचे भयानक घड़ियाल बैठा था। जब तक घड़ियाल न देखा था, तब तक धोखा खाता रहा, पर अब मैंने वह घड़ियाल देख लिया था। लज्जाने

मेरे बदले हुए तेवर देखे, और डर गई। उसने मुझे मनाना चाहा। उसने मेरे क्रोधका कारण पूछा, मगर मैंने उसे झिड़ककर परे हटा दिया। अब वह रौं रही थी। पता नहीं क्यों, उसकी आँखोंमें आँसू देख कर मेरा दिल घबरा गया। मुझे ऐसा संदेह होने लगा कि मैं उसके साथ अन्याय कर रहा हूँ। मैं आगे बढ़ा कि उसे गलेसे लगा कर चुप करा दूँ। सहसा उसका पत्र याद आ गया। मैंने अपने आपको रोक लिया। उसका यह रोना भी उसके प्रेमक समान धोखा था। मैं पागलोंकी तरह उठ कर बाहर चला गया। वह रोकती रह गई, मगर मैंने उसे धक्का देकर गिरा दिया, और बाहर निकल गया। वह बड़े ज़ोरसे ज़मीनपर गिरी, मगर मैंने ज़रा भी परवा न की।

रातको ग्यारह बजे मैं घर लौटा। लज्जा रसोई घरमें बैठी मेरी राह देख रही थी। पर मुझे भूख न थी, मैंने साफ़ कह दिया, मैं कुछ न खाऊँगा। कितनी धोखेबाज़ थी, इस समय भी इस तरह फूट फूट कर रोई, मानो उसका दिल फटा जा रहा है। मगर मैं उसके छलको खूब समझता था। दूसरे दिन सोकर उठा, तो वह चारपाईपर मरी पड़ी थी। पता नहीं ज़हर खा लिया, या राज़ खुल जानेके भयसे दिलकी धड़कन बन्द हो गई। मैंने परमात्माको धन्यवाद दिया कि उस खूबसूरत बलासे पछ्छा छूटा। ब्याहपर जितना खश हुआ था, उसकी मौतपर उससे भी ज़्यादा खश हुआ।

तुम्हारा

प्रताप

६

रामनिवास, जालन्धर

५ जनवरी १९१६

प्यारे भाई !

तुम्हारा खयाल ठीक है। मैं सन्देह ही सन्देहमें बरबाद हो

गया । मैंने अपने हाथोंसे अपनी सोनेकी लंका जलाकर भस्म कर ली । वह सचमुच देवी थी । उसके मनमें पापकी छाया भी न थी । मगर मेरी आँखोंपर परदे पड़ गए थे । अगर मैं उस समय ज़रा भी सोच-समझसे काम लेता, तो आज यों रोना न पड़ता । मगर अब क्या हो सकता है ? जो होना था, हो गया । पहले छिपाया था, पर अब न छिपाऊँगा । न छिपानेसे कुछ लाभ है । लज्जाने ज़हर नहीं खाया, न उसे किसी साँपने काटा था, न दिलकी थड़कन बंद हुई । उसका हत्यारा मैं हूँ, उसे खुद मैंने मारा है । मेरे ही पापी हाथोंकी निर्दय अँगुलियोंने उसका गला घोट दिया था ।

रातका समय था, वह दिन-भरकी चिन्ता और संतापसे थक कर सो गई थी । उसके गुलाबी गालोंपर उसके आँसुओंके निशान अभी तक बाकी थे । उसका एक हाथ सिरके नीचे था, दूसरा सीनेपर था । चेहरेपर हार्दिक वेदनाकी गहरी छाया थी । इसपर भी उसकी मोहनी छबिकी शोभासे सारा कमरा जगमगा रहा था । ऊपर बादल थे, नीचे चाँद चमक रहा था । मगर जिसकी आँखें दुखती हों, उसको रोशनी भी चुभती है । मेरी भी यही दशा थी । उसका रूप उस समय मुझे ज़हर मालूम हुआ । मेरा खून उबल रहा था । मैं धीरेसे उसके पलंगपर बैठ गया । उसकी आँख खुल गई । उसने मुझे प्यारकी अध-खुली आँखोंसे देखा, और अपने साथ लिटानेके लिए हाथ बढ़ा दिए । अब मैं क्रोधको वसमें न रख सका । मैंने उसका गला पकड़ लिया, और उसे अपनी देहकी पूरी शक्तिसे दबाया । उसकी आँखें बाहर निकल आईं । मगर उनमें भय न था, आश्चर्य था । वह समझ न सकती थी कि मैं क्या कर रहा हूँ, और उसका अपराध क्या था ? वह गला छुड़ानेके लिए चेष्टा करती थी और मैं पागलोंके समान उसे और भी जोरसे दबाता जाता था । यहाँ तक कि उसकी चेष्टा समाप्त हो गई; और इसके साथ ही उसकी जीवन-लीलाका भी अन्त हो गया । अब पलंगपर वह न थी, उसकी लाश थी । उस समय मैं

खुश था। मगर असलमें यह मेरी जीत न थी, मेरे जीवनकी सबसे बड़ी हार थी।

इसका ज्ञान मुझे आज ही दोपहरको हुआ। शान्ताकी कुछ पुस्तकें मेरे यहाँ पड़ी थीं, वह लेने आई। बहनका घर था, मगर बहन न थी, शान्ता फूट फूट कर रोने लगी। उसे रोते देखकर मेरी आँखें भी सजल हो गईं। रूमाल निकालकर मुँह पोंछने लगा, तो जेबसे एक कागज़ गिर पड़ा। यह वही कागज़ था जिसने लज्जाका राज खोल दिया था। जिसे देखकर मैं पागल हो गया था। जो उसके पापोंका जीता-जागता प्रमाण था। शान्ताने उसे उठा लिया, और उचटती हुई दृष्टिसे देखकर ठण्डी आह भरी।

मुझे आश्चर्य हुआ—तो क्या यह भी जानती है? मेरे दिलमें उथल-पुथल होने लगी। मैंने काँपते हुए कहा—शान्ता!

शान्ताने अपनी आँसुओंसे भरी हुई आँखें ऊपर उठाई, और बेपरवाईसे मेरी तरफ़ देखा। उनमें बहनकी मौतके दुःखके सिवाय और कुछ भी न था।

मैं—क्या तूने यह कागज़ देखा है?

शान्ता—हाँ देखा है।

और वह अब भी उसी तरह शान्त थी। मेरा दिल बाज़के पंजोंमें फँसे हुए कबूतरकी तरह तड़प रहा था।

मैं—यह तुम्हारी बहनका पत्र है।

शान्ता—नहीं, यह उसकी पहली कहानीका पहला भाग है।

मैंने शान्ताके यह शब्द सुने, मगर इनका अर्थ न समझ सका। मगर मैं इतना जान गया, कि मुझसे कोई भयानक भूल हो गई है। इस समय मेरा दिल बड़े जोर जोरसे धड़क रहा था, और उसकी आवाज़ मेरे कानों तक आ रही थी।

मैंने घायल पंखीके समान तड़प कर पूछा—शान्ता, तूने क्या कहा ?

शान्ताने मेरी तरफ़ देखा और अपनी बहनकी यादमें ठण्डी साँस भर कर कहा—जीजाजी, आपसे क्या कहूँ, बहनजीने यह कहानी कैसे चावसे लिखनी शुरू की थी। वे इसे छः पत्रोंमें समाप्त करना चाहती थी। यह उस कहानीका पहला पत्र है, और वह भी अधूरा। मैंने कहा—जीजाजीसे पूछ लो, तो कहानी और भी अच्छी बन जाए। मगर उन्होंने जवाब दिया,—दुर पगली ! उनको मालूम हो गया, तो सारा मज़ा ही किरकिरा हो जाएगा। मज़ा जब है, कि उनको पता भी न लगे, और कहानी किसी अख़बारमें छपकर सामने आ जाए। हैरान हो जायँगे, दङ्ग रह जायँगे ! कहेंगे, लज्जा, मुझे बिल्कुल पता न था कि तू कहानियाँ भी लिख सकती है। पर किसे खयाल था कि मौत घातमें है। कहानी समाप्त न हुई, लिखनेवाली समाप्त हो गई।

मैं तड़प कर खड़ा हो गया—तो वह निर्दोष थी, और मैं ही अन्धा हो गया था। अब मुझे उसकी एक एक बात याद आने लगी। वह भोला-भाला चेहरा, वह सादगी, वह अचरजमें डूबी हुई सुन्दरता, वह सहमी हुई आँखें, आज सब कुछ सुपना हो गया। कैसी स्त्री थी, जिसपर स्वर्गकी देवियोंको भी डाह होता, मगर मैं उसके योग्य न था। मुझे उसकी पूजा करनी चाहिए थी, मगर मैंने अपने निर्दयी हाथोंसे उसका गला घोट दिया और परमात्माका न्याय संसारके इस सबसे बड़े अन्यायको चुपकी आँखोंसे देखता रहा, और उसको ज़रा भी जोश न आया।

अब रात हो गई है। कमरेका लम्प रोशन है, मगर मेरे दिलका दीपक बुझ चुका है। किसी किसी वक्त ऐसा जान पड़ता है, कि वह रसोई घरमें खाना बना रही है। अभी आएगी, अभी कुरसीके पीछे खड़ी हो जाएगी। वही मधुर, वही सुकोमल, प्यारके अमृतमें सना हुआ वही स्वर फिर सुनाई देगा। हृदयको विश्वास ही नहीं होता, कि वह मर चुकी है। मैं इस

तरह चला, जैसे कोई सुपने में चल रहा हो, और रसोई-घरमें जा पहुँचा। वहाँ प्रकाश था। तो क्या प्रकृतिके न बदलनेवाले नियम बदल गए ? मेरा दिल धड़कने लगा। मैं जल्दीसे आगे बढ़ा। मगर वहाँ पहाड़ी नौकर रोटी बना रहा था, जो मेरे एक वकील मित्रने भेज दिया था। मैं रोता हुआ लौट आया। मुझे विश्वास हो गया कि सचमुच मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया। अगर वह जिन्दा होती, तो वह अपनी रसोईमें किसी पराएको पाँव भी न धरने देती। हा विधाता ! यह प्रेमका नाटक कितनी जल्दी समाप्त हो गया।

कमरेमें वह मेज़ उसी जगह पड़ा है। वह कुरसी भी वहीं धरी है, जिसपर बैठकर उसने वह पत्र-गाथा लिखनी शुरू की थी। कलम, दवात, कागज़ सब कुछ वही हैं, केवल वह नहीं है। सन्दूकोंमें उसके हाथोंके तह किए हुए कपड़े भी उसी तरह पड़े हैं, खूँटीपर उसकी रेशमी सारी उसी तरह लटक रही है। मशीनमें आधी सिली हुई कमीज़ उसकी राह देख रही है। मगर वह कहाँ चली गई ? साहित्यके साथ खेलेने चली थी। मगर गरीबको क्या मालूम था कि यह साहित्य-क्रीड़ा नहीं मृत्यु-क्रीड़ा है। मैं वकील हूँ। कचहरीमें आकाश-पातालकी बातें करता हूँ। पर इतनी समझ न आई कि उससे पूछ तो लूँ, यह पत्र किसके नाम है ? सच है, बुरे दिनों में आँखें बन्द हो जाती हैं।

अब नौ बज गए हैं, दस बजे मेरे और मेरी लज्जाके मा-बाप आ रहे हैं। उनको अपना काला मुँह कैसे दिखाऊँगा ? जब पूछेंगे, कि लज्जा कहाँ है, तो क्या जवाब दूँगा ? उसकी मौत का कारण क्या बताऊँगा ? हे भगवान् ! वह समय कभी न आए। मगर दीवारकी घड़ी टिक टिक कर रही है, और समय बीत जाएगा। उस समय मैं क्या करूँगा ? नहीं, यह असम्भव है। यह नहीं होना चाहिए। यह नहीं हो सकता। यह नहीं होगा। अब मैं जिन्दा नहीं रहूँगा।

यह दीवार-घड़ी उस रात भी इसी तरह टिक टिक कर रही थी

मैंने उसका गला दबाया और यह टिक टिक करती रही। वह तड़प कर ठण्डी हो गई, और यह टिक टिक करती रही। आज रात भी यह उसी तरह टिक टिक कर रही है। और एक घण्टे के बाद भी जब कि मेरे और उसके अभागे माता-पिता हम दोनों की रहस्यमयी मृत्यु पर खून के आँसू बहा रहे होंगे, इसकी टिक टिक इसी तरह जारी रहेगी। नमस्ते।

तुम्हारा अभागा मित्र

प्रताप

खरा खोटा

१

पण्डित प्रभुदत्त बैरिस्टरी पास करके लौटे, तो प्रायः रात रात भर घरसे बाहर रहने लगे। उनके मित्र बहुत थे, हर रोज़ किसी न किसीके घर दावत रहती। बूढ़े पिता कौशल्यादास कुछ बहुत पढ़े-लिखे न थे, मगर उन्होंने दुनिया देखी थी। पुस्तकोंके जानकार न थे, दुनियाके जानकार थे। बेटेके रङ्ग-ढङ्ग देखकर मन ही मनमें कुढ़ते थे, मगर मुँहसे कुछ कहते न थे। आखिर जब बेटा रातके बारह बारह बजे तक बाहर रहने लगा, तो उनके धीरजका बन्धन टूट गया। रोगी दिनकी पीड़ा सह लेता है, पर रातका दुख छातीका पहाड़ हो जाता है। उसे सहना आसान नहीं पण्डित कौशल्यादासका भी यही हाल था। वे समझते थे ये लच्छन अच्छे नहीं, बेटा हाथसे निकला जाता है। रातको घरसे बाहर रहना दुर्व्यसनोंका शुरू है। कुछ दिनों तक सोचते रहे कि कुछ कहें या न कहें। कहीं बेटा बुरा न मान जाए, कहीं सामने न बोल बैठे। आज तक कभी उसने मेरे सामने सिर नहीं उठाया; कहीं ऐसा न हो, मेरी डाँट-डपट सदाके लिए उसे मेरे हाथसे खो दे।

पण्डित कौशल्यादासने कुछ दिनों तक मुँह न खोला। मगर जब उन्होंने देखा कि रोग दिन पर दिन बढ़ता जाता है और व्यसन आदत

बन रहा है तो चुप न रह सके। एक दिन बोले—बेटा, दिनको जहाँ चाहो जाओ, पर रातको बाहर न रहा करो। तुम वहाँ जलसे रचाते हो हम यहाँ परेशान रहते हैं और तुम्हारी राह देखते हैं। इससे सारे धरकी नीन्द खराब होती है।

प्रभुदत्त बाहर जानेको तैयार थे। यह सुन कर उनके पाँव रुक गए। धीरेसे कहने लगे—मैं इन दावतोंसे खुद तंग आ गया हूँ। आप शायद विश्वास न करेंगे, पर मैं सच कहता हूँ, मेरा भी शामको घरसे निकलने को जी नहीं चाहता। मगर मुश्किल यह है, कि जब कोई मित्र बुला भेजता है तब 'न' करना मुश्किल हो जाता है। आप ही बताएं, क्या करूँ, क्या न करूँ। मैं आप परेशान हूँ।

कौशल्यादास—तो क्या हर रोज़ तुम्हारे मित्र ही बुला भेजते हैं ? मुझे यह खयाल न था।

प्रभुदत्त—मैंने विलायतमें तालीम पाई है, मुझे वहाँका पानी नहीं लगा। मैं उन लोगोंमें हूँ जो पिताकी आज्ञा न मानना पाप समझते हैं। अब जो हो गया सो हो गया। पर आजसे साँभके बाद कभी घरसे बाहर न निकटूँगा।

कौशल्यादास प्यारसे बेटेकी तरफ़ देख कर बोले—तो क्या आज भी किसी मित्रके यहाँ जा रहे थे ?

प्रभुदत्त—जी हाँ। डाक्टर कपिलदेवने बुलाया था।

कौशल्यादास—और कल कहाँ गए थे ?

प्रभुदत्त—प्रोफ़ेसर शर्माके यहाँ।

कौशल्यादास—मगर तुम तो लगातार कई दिनोंसे साँभको बाहर जाते हो और आधी आधी रातको लौटते हो। क्या तुम्हारे इतने मित्र हैं ? मुझे सन्देह है, वे तुम्हारे मित्र न होंगे, परिचित होंगे। आजकल सच्चा मित्र कहाँ मिलता है ?

प्रभुदत्तके आत्म-सम्मानको चोट पहुँची। मुँह लाल हो गया। सँभल कर बोले—मुझे इनमेंसे हर एक पर पूरा विश्वास है। चाहूँ तो जान मांग लूँ, चूँ तक न करेंगे।

कौशल्यादास—यह सब कहनेकी बातें हैं। नई सभ्यता दावे बहुत करती है, मगर कर्म-क्षेत्रमें उसे दो कदम भी चलना कठिन हो जाता है।

प्रभुदत्तकी भौंहें टेढ़ी हो गई। सिर उठा कर बोले—मेरे मित्र ऐसे नहीं हैं।

कौशल्यादास—तुम बुरा तो मानोगे, पर एक सवालका जवाब दो। क्या तुमने कभी उनकी परीक्षा भी की है?

प्रभु०—परीक्षा उसकी की जाती है, जिसपर सन्देह हो। मुझे उनपर सन्देह ही नहीं है।

कौशल्यादास—मगर मैं तो जब तक परीक्षा न कर लूँ, तब तक किसीपर भी भरोसा नहीं करता। तुम्हारे मित्रोंपर कैसे भरोसा कर लूँ?

प्रभुदत्तकी आँखें लाल हो गई, मगर पिताकी तरफ़ देखकर क्रोध ठण्डा हो गया। जब ज़रा अपने आपमें आए तो बोले—आप चाहें तो परीक्षा कर लें। जब सोना खरा है तो उसे कसौटीका क्या भय?

२

रातके एक बजे कौशल्यादास और प्रभुदत्त घरसे निकले और लाला सिकन्दरलालके मकानपर पहुँचे। ये साहब उस शहरके सबसे बड़े ठेकेदार थे। इनसे और प्रभुदत्तसे पुरानी दोस्ती थी। स्कूलमें भी एक साथ पढ़े थे। बचपनके दिनोंको याद करके उनकी आँखोंमें चमक आ जाती थी। प्रभुदत्तको यों तो अपने सब मित्रोंपर भरोसा था, मगर लाला सिकन्दरलाल पर खास भरोसा था। उनकी प्रेमसे सनी हुई बातें

सुनकर उनका मन अधीर हो जाता था, और वे आनन्दसे झूमने लग जाते थे। कौशल्यादासने सबसे पहले उन्हींकी परीक्षाका निश्चय किया। इस समय कौशल्यादासकी बगलमें एक कपड़ा था, जिसमें कोई चीज़ लिपटी हुई थी।

सिकन्दरलालने प्रभुदत्त और कौशल्यादासको अपने मकानपर देखा, तो बेहद खुश हुए। बार बार कहते थे—यह मेरा सौभाग्य है, जो आपके दर्शन हुए। प्रभुदत्त तो रोज़ आता है, मगर आपके चरणोंसे मेरा घर आज ही पवित्र हुआ है। आपने बड़ी कृपा की, आपने बड़ी मेहरबानी की। मैं तो निहाल हो गया।

कौशल्यादासने बात काट कर कहा—बेटा, क्या कहूँ, तुम्हारे भाईने ग़ज़ब ढाया है। इस समय सहायता के लिए तुम्हारे पास आया हूँ, तुम सहायता न करोगे तो हमारा बचाव कठिन है।

सिकन्दरलालने प्रभुदत्तकी तरफ़ देखा, और डर गए। इस समय न उनके होठोंपर वह मुस्कराहट थी, न आँखोंमें वह प्रकाश। निराशाकी मूर्ति इससे अच्छी किसी चतुर चित्रकारने भी कम बनाइ होगी। क्या यह वही हंसमुख प्रभुदत्त था, जिसकी रोशन आँखें मित्र-मण्डलीको जगमगा देती थीं? तब आँखें इतनी उदास और इतनी सूनी सूनी न होती थीं, उस समय मुखपर चंचल मुस्कराहट खेलती थी, इस समय निराशाकी पीली छाया आ बैठी थी।

हैरान होकर सिकन्दरलालने पूछा—गगर बात क्या है? मुझे तो चिन्ता लग गई।

कौशल्यादासने थोड़ी देर सोचा, और फिर चारों तरफ़ देख कर धीरेसे कहा—तुम्हारे दोस्तने आज अपनी स्त्रीकी हत्या कर डाली है।

सिकन्दरलाल चौंक पड़े। पिता-पुत्रकी तरफ़ घूर घूर कर देखा और सोचने लगे—ये यहाँ क्यों आ मरे? मैं इनकी क्या सहायता कर सकता हूँ? रातके एक बजे आए हैं, पहले पता होता तो किवाड़ ही न

खोलता। नौकरसे कहलवा देता, बीमार हैं, इस समय जगानेसे मना किया है। पर अब क्या करूँ ? इसको भी मेरा ही घर सूझा। और पचासों दोस्त हैं। किसी दूसरेके पास क्यों नहीं ले गया ? मुझसे यह तो न होगा ! पराई आगमें कौन कूदे ? किसीके कानमें भनक भी पड़ गई तो मारा जाऊँगा। घरकी तलाशी होगी, पुलिस पकड़कर ले जाएगी, और सम्भव है, सज़ा भी हो जाए। उस समय यह मित्रता मेरे किस काम आएगी ? परन्तु 'न' कैसे करूँ ? सैकड़ों बार सच्चे प्रेमके दावे किए हैं, प्यारकी क़समें खाई हैं, बढ़ बढ़कर बातें बनाई हैं। यह मनमें क्या कहेगा ?

इन विचारोंमें सिकन्दरलाल कई मिनट तक उलझे रहे, फिर बोले मुझे यह बात सुनकर बहुत खेद हुआ। इनके लिए मैं जान भी दे सकता हूँ, मगर मेरे पड़ोसमें पुलिस इन्स्पेक्टर रहता है। क्या बताऊँ, बड़ा ही हज़रत और कायाँ है। उसकी आँखें हृदयकी तह तक पहुँचती हैं। और मुझ जैसे दुर्बल हृदय आदमी की आँखें तो अपने आप ही सारा भेद खोल देंगी। तो भी मैं आपसे बाहर थोड़ा ही हूँ। आज्ञा क़ीजिए, मैं पालन करूँगा।

प्रभुदत्तने यह जवाब सुना, तो उसकी आँखें खुल गईं। उसे यह ख़याल न था। वह समझता था, सिकन्दरलाल मेरे लिए फाँसीपर चढ़नेको भी तैयार हो जायगा। मगर इस उत्तरसे वह हैरान रह गया। ख़याल आया कि यह आदमी जब मेरे लिए कुछ करनेको तैयार नहीं तो फिर मुँहसे इतनी बातें क्यों बनाता है ? साफ़ शब्दोंमें क्यों नहीं कह देता कि मुझसे कुछ न हो सकेगा ? कोई सीधा-सादा आदमी होता तो साफ़ साफ़ शब्दोंमें अपने मनकी बात कह देता। उस समय उसके मनमें यही विचार आया कि क्या सभ्यता झूठका दूसरा नाम है ?

तब उसने अपनी आँखें संसारदर्शी पिताकी तरफ़ उठाईं। उनमें दिल धरा था। मगर सिकन्दरलालको उनमें कुछ भी दिखाई न दिया।

और कौशल्यादासको ऐसा मालूम हुआ, मानो प्रभुदत्त चिल्ला चिल्लाकर कर रहे हैं, चलो यहाँ क्या रक्खा है ? मैंने बहुत धोखा खाया, मुझे यह आशा न थी, मैं बेवकूफ था ।

३

इसके आध घण्टे बाद पिता-पुत्र दोनों शहरसे बाहर निकले और एक दूसरी कोठीमें पहुँचे । यहाँ मिस्टर के० सी० सेठी इञ्जीनियर रहते थे । ये भी प्रभुदत्तके मित्र थे और इनपर भी प्रभुदत्तको बड़ी आशा थी । आज कौशल्यादास इनके प्रेमकी परीक्षा करने आए थे । मगर प्रभुदत्तके पाँव आगे न बढ़ते थे । उनमें किसीने रस्सा नहीं डाला । बेड़ियाँ नहीं डालीं, उन्हें कोई रोक नहीं रहा था, वे थके-माँदे नहीं थे, फिर भी उनके पाँवमें शक्ति न थी । उनके पाँव अशक्त थे । मगर उन पाँवसे भी अधिक अशक्त इस समय उनका दिल था ।

मिस्टर सेठी जगाए गए । पहले तो वे बहुत सटपटाए । मगर जब उनको बताया गया कि पण्डित प्रभुदत्त और उनके पिता आए हैं, तो चुप हो गए । जल्दीसे मरदानेमें आकर बोले — आप बहुत रात बीते आए हैं, यह मिलनेका समय नहीं है । कोई खास बात होगी, ऐसा जान पड़ता है । कहिए, क्या आज्ञा है ?

पण्डित कौशल्यादासने प्रभुदत्तकी तरफ़ इशारा किया और जवाब दिया — तुम्हारे भाईने आज अपनी स्त्रीको मार डाला है । हमने उसका शरीर तो आँगनमें दबा दिया है । पर जब सिर दबाने लगे तब नौकरोकी आँखें खुल गई । अब हम सिरका क्या करें ? बाहर दबाना बहुत खतरनाक है । अगर कोई देख लेगा, तो आफ़त आ जाएगी । वैसे फेंक देना भी ठीक नहीं । अब तो तुम्हारी शरण आए-हैं, अपने घरमें जगह दो । सारी उम्र तुम्हारा उपकार न भूलेंगे ।

मिस्टर सेठीने कुछ देर तक विचार किया और फिर बोले—माफ़

कीजिए, मैं साफ़गो आदमी हूँ, मुझे झूठ बोलना अच्छा नहीं लगता । म आपको धोखेमें नहीं रखना चाहता । यह रोग मेरे बसका नहीं । और जो कहो, कर सकता हूँ, पर अपने आपको इस हत्याके अभियोगमें फँसानेका मुझमें बता नहीं । मेरे भी बाल-बच्चे हैं, मुझे उनका भी ख्याल है । और मैं खुद भी जीना चाहता हूँ ।

प्रभुदत्तके अन्देशे पूरे हो गए । यह पानीका ठण्डा झरना न था, लहरें मारनेवाली नदी न थी, यह जलते रेतका थल था । इसमें आकर्षण था, पर सच्चाई न थी । इसमें जादू था, पर प्रेम न था । प्रभुदत्तकी आँखें झुक गईं । आज उन्होंने मित्रोंकी प्रीत खो दी थी । इसकी अपेक्षा वे हजारों रुपयोंका नुक़सान हँसकर सह लेते ।

४

आकाशमें तारे जल रहे थे, ज़मीनपर बिजलीके लैम्प जल रहे थे, मगर प्रभुदत्तके हृदयमें अथाह अन्धकार छाया हुआ था । चारों तरफ़ देखते थे, कहीं आशाकी किरण दिखाई न देती थी । सोचते थे, आज तक भौंठू ही बना रहा । कैसी मीठी बातें करते थे ! ऐसा जान पड़ता था, मानो इनके बराबर मेरा और कोई शुभचिन्तक न होगा, प्राण तक क़ुरबान कर देंगे । मुझे इनके शब्दोंपर कभी सन्देह तक नहीं हुआ । मैं समझता था, सब कुछ हो सकता है, केवल यह नहीं हो सकता । पर आज आँखें खुल गईं । मैं भी कैसा मूर्ख था, दूधके धोखेमें छालू पीता रहा, और कभी सन्देह तक नहीं हुआ । मैं बुद्धिहीन अन्धा था । सोनेके ख़यालमें पीतल उठा लाया । मगर आज अँधेरा दूर हो गया । अब धोखेमें न आऊँगा ।

प्रभुदत्त इन विचारोंमें मग्न थे, और उनके सामने बैठे कौसल्यादास बेटेके अज्ञानपर हँस रहे थे । थोड़ी देर बाद उन्होंने पूछा—क्यों बेटा, अभी क्या किसी और पर भी झरोसा है ? अगर है तो चलो उसे भी देख लें ।

प्रभुदत्तने शरमसे आँखें झुका लीं, और जवाब दिया—अब और शरमिंदा न कीजिए। इनका इस तरह आँखें फेर लेना मुझे कभी न भूलेगा कौशल्यादास—तुम्हें इनके ऊपर बहुत भरोसा था ?

प्रभुदत्त—पर अब तो कान हो गए।

कौशल्यादास—कैसी बढ़ बढ़कर बातें बनाते थे !

प्रभुदत्त—झूठकी जीभ बहुत चलती है।

कौशल्यादास—चलो, तुम्हारी आँखोंसे परदा तो हटा, यही गनीमत है।

प्रभुदत्त—यह मेरे जीवनका पहला सबक है, आजसे किसीपर विश्वास न करूँगा। एक अँगरेज़ फ़िलासफ़रका वचन है, संसारमें परमेश्वर मिल सकता है, दोस्त नहीं मिल सकता। मैं इस विचारपर हँसता था, मगर आज इसपर विश्वास हो गया। दुनियामें दोस्त नहीं है।

कौशल्यादास—यह भी तुम्हारी भूल है। दुनिया सच्चे दोस्तोंसे ख़ाली नहीं है, मगर यह चीज़ किसी किसी भाग्यवान्‌के ही हाथ लगती है। हर कीसीको नहीं मिलती

प्रभुदत्त—मैं तो इसे भी भूल ही समझता हूँ। परियोंके समान सच्चे मित्रोंकी कहानियाँ सभीने सुनी हैं, मगर उन्हें देखा किसने है ?

कौशल्यादास—मैंने देखा है।

प्रभुदत्त—मुझे तो अब विश्वास नहीं होता। आपने भी आजमाया न होगा।

कौशल्यादास—अच्छी तरह आजमा चुका बेटा ! चाहो तो तुम भी आजमा लो। फिर तो मानोगे ?

प्रभुदत्त—मगर मेरा दिल नहीं मानता। ये भी बड़ी बड़ी बातें बनाते थे।

कौशल्यादास—तो आज रातको तैयार रहना, मैं तुम्हें आज अपना

मित्र दिखाऊँगा। तुम देखकर चौंक उठोगे। तुम्हारी आँखें खुल जाएंगी। तुम कहोगे, क्या इस दुनिया में यह भी हो सकता है ? मगग मेरे मित्रों की संख्या अधिक नहीं है। मैंने सारी उम्र में केवल एक मित्र बनाया है। और यह मित्र वह है जो प्राण द देगा, पर धोखा न देगा।

५

आधी रातका समय था, बाप-बेटा फिर घरसे बाहर निकले और चक्ररदार गलियोंसे गुज़रते हुए एक छोटेसे मकानके सामने जा पहुँचे। कौशल्यादासने आवाज़ दी—लाला साईदास !

लाला साईदास सो रहे थे, आवाज़ सुनकर जाग उठे और नीचे भाँक कर बोले—कौन है इस समय ?

कौशल्यादास—मैं हूँ। दरवाज़ा खोल दो।

लाला साईदासने आवाज़ पहचानी और समझ गए कि कोई मुसीबत आई है, नीचे आकर बोले—क्या बात है ? साफ़ साफ़ कह दो।

यह कहकर वे दोनोंको अन्दर ले गए और एक चारपाईपर बैठ गए। कल वाला नाटक फिरसे दोहराया गया। कौशल्यादासने सारी कहानी फिरसे सुनाई। साईदास बोले—वह सिर कहाँ है ?

कौशल्यादासने कपड़ेमें लपेटी हुई चीज़की तरफ़ इशारा किया और कहा—मेरे पास है।

साईदास—मुझे दे दो।

कौशल्यादास—क्या करोगे ?

साईदास—ठिकाने लगा दूँगा।

कौशल्यादास—कहीं भण्डा न फूट जाए !

साईदास—नहीं फूटगा।

कौशल्यादास—कोई भाँप न जाए । मामला बहुत बढबं है ।

साईदास—पर तुम्हें कोई कुछ न कहेगा, यह भरोसा रखो ।

कौशल्यादास—क्या करोगे ?

साईदास—(चिढ़कर) करना क्या है, पुलिस लेकर तुम्हारे मकान पर आ जाऊँगा ।

कौशल्यादास—हूँ !

साईदास—कैसी बहकी बहकी बातें करते हो आज तुम । तुमने शराब तो नहीं पी ली है ? क्या तुमने मुझे पहली बार देखा है ? फाँसी चढ़ जाऊँगा, पर मुँहसे एक शब्द न निकालूँगा ।

कौशल्यादास—कहना आसान है, पर करके दिखाना आसान नहीं ।

साईदास—तुम मेरा अपमान कर रहे हो । मैं बहुत बातें नहीं जानता, एक बात जानता हूँ । अगर तुम्हें मुझपर विश्वास है तो सिर मुझे दे दो, मैं अपने आप निपट लूँगा । अगर नहीं है, तो घरकी राह लो, और मुझे सोने दो ।

यह कहकर उन्होंने बाप-बेटेकी तरफ़ लाल लाल आँसोसे देखा, जैसे दोनोंको खा जायँगे । प्रभुदत्तको इस क्रोधपर प्यार आ गया । कहते हैं, प्यारका क्रोध हँसीसे भी मीठा होता है । यह क्रोध बनावटी क्रोध न था, घृणाका क्रोध न था, यह क्रोध प्यार का क्रोध था, जिसपर स्वयं प्यार भी निछावर होता है । प्रभुदत्तकी आँखोंमें पानी आ गया । यह पानी कलवाले पानीसे कितना दूर था ! झूठे मोतीमें सच्चे मोतीकी आब आ गई थी ।

कौशल्यादास खड़े हो गए और बोले—मुझे तुम्हारी बातोंसे धोखेकी बू आती है । मैं कुछ और प्रबन्ध करूँगा ।

प्यार सब कुछ सह सकता है, मगर विश्वासघातका कलङ्क नहीं सह सकता । साईदास पहलेसे ही क्रोधमें थे, इन शब्दोंने आगपर तेल

छिड़क दिया। उन्होंने छेड़े हुए नागकी तरह सिर उठाया और फुंकार मारते हुए कहा—मुझे तुमसे यह आशा न थी।

प्रभुदत्त सोचते थे, कितना सज्जन आदमी है, प्रेमके भावमें तन्मय। अपने प्राणोंकी परवा नहीं, मित्रका ध्यान है। यह आदमी नहीं देवता है। वे चाहते थे, अब पिता कुछ न कहें। प्रेमकी आँखोंमें क्रोध देखकर वे अपने आपको भूल गए, मगर कौशल्यादासने फिर भी कहा—मैं अन्धा नहीं हूँ, तुम्हारी आँखें तुम्हारे शब्दोंका समर्थन नहीं करती। तुम्हारे मुँहसे शहद टपकता है, परन्तु हृदयमें जहर भरा है। मैं अपनी और अपने बेटेकी गर्दन तुम्हारे हाथमें कैसे दे दूँ ?

साईदासकी आँखोंमें जल भर आया। पहले बादल गरजता था, अब वर्षा होने लगी। इन आँसुओंकी एक एक बूँद कौशल्यादासके दिलपर आगके अङ्गारे बरसाती थी। उन्हें अपने आपको सँभालना दूभर हो गया। वे चाहते थे, आगे बढ़कर उस प्रेमकी मूर्तिको हृदयमें बिठा लें। मगर अभी नाटक पूरा न हुआ था। उन्होंने एक भावमय दृष्टिसे बेटेकी तरफ देखा और उठकर बाहर निकल आए।

साईदासने चिल्लाकर कहा—जाते हो तो जाओ, मगर एक दिन तुम्हें इस दिनके लिए पछताना पड़ेगा।

कुछ दूर जाकर कौशल्यादासने प्रभुदत्तसे भरीए हुए स्वरमें कहा—तुमने देखा !

प्रभु०—बहुत अच्छी तरह।

कौशल्या०—अब क्या कहते हो ?

प्रभु०—यह आदमी नहीं देवता है। इसका हृदय प्रेमका स्रोत है। कल मुझे व्यावहारिक जीवनका पहला अनुभव हुआ था, आज दूसरा अनुभव हुआ है। मेरा तो जी चाहता है, जाकर उसके पाँवसे लिपट जाऊँ।

कौशल्यादास—अभी नहीं, ज़रा ठहर जाओ। मेरे कानमें कोई कह रहा है कि इस नाटकका कुछ भाग अभी बाकी है। पहले उसे भी देख लो, फिर अपनी राय देना।

कौशल्यादासने ये बातें ऐसे ढंगसे कहीं कि प्रभुदत्त सन्नाटेमें आ गए। उन्होंने श्रुतुभवी बापकी तरफ़ देखा, मगर यह रहस्य उनकी समझमें न आया।

६

दो दिन बीत गए। दोपहरका समय था। पण्डित प्रभुदत्त बार-बारमें बैठे अँगरेज़ीका एक मासिक-पत्र देख रहे थे, मगर उनके मनको शान्ति न थी। मित्रोंकी रुखाई उन्हें रह रहकर अखरती थी। वे अब पहले प्रभुदत्त न थे। कभी मित्र-मण्डलीकी चर्चासे उनका मुँह कमलके समान खिल जाता था, पर अब इस शब्दमें कोई प्रभाव, कोई आकर्षण कोई जादू न रह गया था। मित्रोंका नाम सुनते तो मुँह फेर लेते, मानो उन्हें अपने हृदयके घाव हरे हो जानेका भय था। एकाएक किसीने उनके कन्धेपर हाथ रखकर कहा—हैलो।

प्रभुदत्त चौंक पड़े, घूमकर देखा, तो सिकन्दरलाल थे। वही सिकन्दरलाल जिनके बिना उन्हें चैन न पड़ता था, जिनको देखकर वह उछल पड़ते थे। मगर इस समय उन्होंने उनको बेपरवाही की दृष्टिसे देखा, जिसमें दुःख क्रोध और निराशा मिले हुए थे, और धीरेसे कहा—आइए, बैठिए।

शब्द मामूली थे, मगर उनका मतलब मामूली न था। सिकन्दरलालका चेहरा उतर गया। उन्होंने बोलना चाहा, मगर उनके शब्द होठोंपर जम गए। समयपर हमारी जीभ भी काम नहीं आती। सोचने लगे, बड़ी भूल हो गई। सुलह-सफ़ाई करने आया था, पहली बात भी गँवाकर जाऊँगा। पर अब क्या हो सकता था? सिकन्दरलालने

रूमालसे मुँहका पसीना पोंछा, और छतके पंखेकी तरफ़ देखकर कहा—बड़ी गरमी है ।

प्रभुदत्त—इस समय आपको घरसे बाहर न निकलना चाहिए था ।

सिकन्दरलाल—तुम्हारा प्रेम खींच लाया । तुम दो दिनसे मकानपर क्यों नहीं आए ? गैरहाज़िरी लग गई ।

प्रभुदत्त—अब तो हर रोज़ गैरहाज़िरी ही लगेगी ।

सिकन्दरलाल—रूठ गए ?

प्रभुदत्त—रूठ जाऊँगा तो आपका क्या बिगड़ जाएगा ?

सिकन्दरलाल—राह देखते देखते आँखें पक गईं ।

प्रभुदत्तने तीखे होकर कहा—अब इस स्वाँगकी क्या ज़रूरत है ? अब तो मैंने तुम्हारा असली रूप देख लिया ।

सिकन्दरलाल इस समय तक नरमीसे बातचीत कर रहे थे । गरम ताना सुनकर वह भी गरम हो गए और बोले—तुम्हारे लिए जान गँवा देता ?

प्रभुदत्तने अँगरेज़ी मासिक-पत्र मेज़पर रखकर जवाब दिया—अभी वह मंज़िल बहुत दूर थी, तुम तो पहली ही मंज़िलपर हार गए ।

सिकन्दरलाल—यार-दोस्तोंसे बातें करते समय तुम्हें ज़रा सावधान रहना चाहिए ।

प्रभुदत्त—पर मैं आपको अपना दोस्त ही नहीं समझता, तो सावधान क्या रहूँ ?

सिकन्दरलालकी आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं । कुर्सीपर बैठे थे, खड़े हो गए और चिक्काकर बोले—अब मैं तुम्हारा शत्रु हो गया ?

प्रभुदत्त—मैं शत्रुको भी तुमसे अच्छा समझता हूँ । तुम भरे शत्रु भी नहीं हो ।

सिकन्दरलाल—समझते हो, क्या कह रहे हो तुम ?

प्रभुदत्त—अच्छी तरह समझता हूँ ।

सिकन्दरलाल—तुम्हारी जान मेरी मुट्ठीमें है । चाहूँ तो अभी मसलकर रख दूँ ।

प्रभुदत्तने घृणासे कहा—मसल डालो, यह पछतावा भी तुम्हारे मनमें न रह जाए । मगर फिर कभी मित्रताका शब्द मुँहपर न लाना ।

७

प्रभुदत्तकी आखिरी आशा भी जाती रही । उनका खयाल था कि मेरे मित्र पछता रहे होंगे । मूर्ख हैं पर मूर्खी नहीं । उन्हें जब अपनी भूलका ज्ञान होगा तब क्षमा माँगेंगे, गिड़गिड़ायेंगे, और शायद उनके पाँवोंपर आ गिरेंगे । आशा जा चुकी थी, आशाकी झलक बाकी थी, मगर सिकन्दरलालकी आँखें देखकर उनकी यह झलक भी जाती रही । शायद कुछ नुक़सान पहुँचानेपर तैयार हो जायँ, यह खटका अवश्य लग गया । विश्वास पर्वतका पत्थर है, जो अपनी जगहसे हटनेपर नीचे ही नीचे गिरता जाता है ।

मगर एक-दो घण्टे बीत गए, और कोई न आया, यहाँ तक कि चार बज गए और वह कचहरीसे धर चले आए । मगर फिर भी पुलिसका कोई अफ़सर प्रभुदत्तकी खोजमें न आया । प्रभुदत्तकी आशङ्का निर्मूल निकली । अब उन्हें अपनी ठिठाई दिखाई देने लगी । सोचते थे, मैंने उनसे बहुत अन्याय किया, जो उनपर ऐसा सन्देह किया । वे डरपोक हैं, मगर विश्वासघातक नहीं । मैंने कैसी कड़वी बातें कहीं, कैसा रूखा व्यवहार किया ! कोई सभ्य आदमी इससे अधिक क्या करेगा ? पर उन्होंने लहूका घूँट पिया, और मनको मसोस कर चले गए । विचार-धारा यहाँ तक ही पहुँच पाई थी कि कमरेका दरवाज़ा खुला और पुलिसके डिप्टी सुपरिंटेण्डेण्ट अन्दर आ गए । प्रभुदत्त चौंक पड़े, आशाकी आई हुई झलक फिर

अथाह अंधेरेमें लोप हो गई । मगर आज इस अंधेरेने उनके दिलमें जोत जला दी । प्रभुदत्तने खड़े होकर क्लार्क साहबसे हाथ मिलाया और मुस्कराकर कहा—आज इधर कैसे भूल पड़े ?

क्लार्क साहबने प्रभुदत्तके चेहरेकी तरफ़ देखा, मगर उन्हें वहाँ उस भयके कोई निशान दिखाई न दिए, जो हरएक अपराध अपराधीके चेहरेपर छोड़ जाता है । खिसियाये होकर बोले—आपका मिज़ाज तो अच्छा है ?

प्रभुदत्त खिलखिलाकर हँस पड़े और बोले—खूनीका मिज़ाज कभी अच्छा नहीं हो सकता ।

क्लार्क साहब हैरान हो गए । वे समझ न सकते थे कि असली बात क्या है ? जिसने खून किया हो, वह तो पुलिस-कर्मचारीको देखकर ही काँप जाता है । उसका मुँह पीला पड़ जाता है । मगर यहाँ यह हँस रहा है । क्या पापको भी हँसनेकी हिम्मत मिल गई । सोचकर बोले—मिस्टर प्रभुदत्त, बात क्या है ?

प्रभुदत्तने हँसते हँसते सारी कहानी सुना दी । कहा—यह केवल कहानी थी । इसमें सचाई ज़रा भी नहीं । अगर आपको विश्वास न हो, तो अपनी स्त्री बुलाकर आपको दिखा दूँ । मुझे अपने मित्रोंकी परख करनी थी और वह मैं कर चुका । आपको मुफ़्तमें तकलीफ़ हुई । मगर यह मेरा नहीं, लाला सिकन्दरलालका दोष है ।

क्लार्क साहब देर तक हँसते रहे, इसके बाद बोले—मगर क्या आप समझते हैं कि वह बुढ़ा साईंदास इस आगमें कूदनेको तैयार हो जाएगा ?

प्रभुदत्त—मुझे विश्वास है, हो जाएगा ।

क्लार्क साहब—यह भी आपकी सादगी है । कोई आदमी अपना जीवन इतना सस्ता नहीं समझता ।

प्रभुदत्त—मगर वह आदमी नहीं है ।

क्लार्क साहब—तो तुम उसे क्या समझता है ?

प्रभुदत्त—देवता ।

क्लार्क साहब—कैसा पगलोंकी-सी बातें करता है तुम ?

प्रभुदत्त—आजमा देखो । तुम भी पागल हो जाओगे ।

क्लार्क साहब बाहर निकले । वहाँ कुछ सिपाही खड़े थे । उन्होंने उनमेंसे एकको बुलाकर लाला साईंदासके मकानका पता बताया और कहा—जल्दी बुला लाओ । मगर यह समाचार वहाँ पुलिसके सिपाहियोंसे पहले पहुँच गया था, और साईंदास अपने आप ही इस तरफ़ आ रहे थे । वह जानते थे, कि मैं मौतके मुँहमें जा रहा हूँ, मगर न उनके मुँहपर उदासी थी, न आँखोंमें भय । बल्कि मुख-मण्डलपर अभिमानकी सुरखी थी । सोचते थे, मैं बुढ़ा हूँ, और कितने दिन जिऊँगा ? मगर प्रभुदत्त अभी नौजवान है, उसने संसारका देखा ही क्या है, और फिर मित्रका पुत्र है । उसे न बचाया, तो जीनेपर लानत है ।

यह सोचते सोचते वे चिक उठा कर कमरेके अन्दर चले आए, और क्लार्क साहबसे बोले—यह खून मैंने किया है ।

प्रभुदत्तका मुख-मण्डल विजयके हर्षसे चमकने लगा, मगर क्लार्क साहबने कड़क कर कहा—तुम इकबाल करता है ?

साईं०—हाँ साहब, इकबाल करता हूँ ।

साहब—जानता है, इसका सज़ा क्या है ?

साईं०—हाँ साहब, सब कुछ जानता हूँ ।

साहब—फाँसीका सज़ा होगा ।

साईं०—मामूली बात है ।

क्लार्क साहब अब उसे एक तरफ़ ले गए और धीरेसे बोले—हम जानता है, तुमने खून नहीं किया । तुम अपना लाइफ़ क्यों देता है ? सोचकर जवाब दो

साईं०—नहीं साब, मैंने खून किया है ।

साहब—अभी टाईम है, इनकार कर दो। फिर बात हमारा हाथसे निकल जाएगा।

साई०—साहब यह कभी न होगा। जब खून मैंने किया है, तो इनकार कैसे कर दूँ? मुझे भी अपने भगवान्‌को भुँह दिखाना है। आप मुझे गिरिफ्तार कर लें। मैं इकबाल करता हूँ।

क्लार्क साहबने टोपी उतार कर लाला साईदासको सलाम किया और प्रभुदत्तसे कहा—वेल, हमको हार हुआ। यह सचमुच आदमी नहीं एंजलके माफ़क है। हम इसे सलाग करता है।

यह कह कर साहब बहादुरने सबसे हाथ मिलाया और बाहर निकल गए, मगर लाला साईदास हैरान थे। वह कुछ समझते न थे।

पण्डित कौशल्यादासने आगे बढ़कर उनको गलेसे लगा लिया और कहा—तूने मेरी लाज रख ली! तू मेरा सच्चा दोस्त है।

प्रभुदत्तकी आँखोंसे खुशीके आँसू बह निकले।



आज न पण्डित कौशल्यादास जिन्दा हैं, न लाला साईदास। मगर प्रभुदत्त अभी तक जीते हैं। अब उनकी प्रैक्टिस बहुत चमक गई है। अब उनकी गिनती उच्च कोटिके बैरिस्टरोमें होने लगी है। अब वे शहरसे बाहर कोठीमें रहते हैं। उनके पास दो-तीन मोटरें हैं। मगर न मित्रोंको दावतें देते हैं, न उनकी दावतें स्वीकार करते हैं। रुपयापैसा, बाल-बच्चे सब कुछ है। उन्हें किसी चीज़ की कमी नहीं। पर हाँ, कभी कभी ठण्डी साँसें भरने लगते हैं। उन्हें लाला साईदास जैसा मित्र नहीं मिला आयु बहुत हो गई है, मगर खोज अभी तक जारी है।

बापका हृदय

१

लाला राजारामने दफ्तरसे आते ही क्रोध-भरे स्वरमें अपनी स्त्रीसे कहा—शादीने आज फिर चोरी की।

कौशल्या लड़कीके लिए कुर्ता सी रही थी, पतिकी आवाज़ सुनकर उसने सिर उठाया, और आश्चर्यसे बोली—बड़ा पाजी लड़का है ! हर रोज़ मार खाता है, मगर इसकी आँखें नहीं खुलतीं । आज क्या चुराया है ?

राजाराम—कल रात जेबमें सवा रुपया रक्खा था । आज दफ्तर जाकर देखा, तो रुपया था, चवन्नी न थी । बस इसीके हाथ लग गई होगी । कहाँ है, ज़रा बुलाओ तो उसे ।

कौशल्याका कलेजा धड़कने लगा । उसने समझ लिया कि आज फिर लड़केकी ख़ैर नहीं । झूठी हँसी हँस कर बोली—तुम कपड़े तो बदल लो । दफ्तरसे थक कर आए हो, आते ही क्रोध करोगे, तो स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा । पहले कुछ खा पी तो लो ।

राजाराम—तुम्हारी बातें मैं ख़ूब समझता हूँ । तुम्हारी इच्छा है, मैं उसे कुछ न कहूँ । पर यह कभी न होगा । मैं आज उसकी हाडियाँ तोड़े बिना न रहूँगा । बोलो, कहाँ है ?

कौशल्या—कहीं खेलने गया होगा, अभी आ जाता है । मगर जल्दी

क्या है, जब आए, तो हड्डियाँ भी तोड़ लेना मांस भी उतार लेना ।
कहीं भागा थोड़े जाता है ।

राजाराम—बस, मैंने बात की, और तुम्हें ज़हर चढ़ा ।

कौशल्याकी आँखोंमें आँसू आ गए, भरी हुई आवाज़में बोली—
मैंने तुम्हें क्या कहा है, जो आते ही गरजने लगे ? तुम्हारा बेटा है,
चाहे मारो, चाहे काटो । मेरी क्या मजाल है, जो बोल भी जाऊँ ।

राजाराम—इतना नहीं सोचती कि लौंडा हाथसे निकला जाता
है । उसे टेढ़ी आँखोंसे भी देखूँ तो रोने लगती हो । बादमें
पछताओगी । फिर मुझे न कहना कि लड़का हाथसे निकल गया है ।

कौशल्याने जवाब न दिया, मुँह फुलाकर धरतीकी ओर देखने लगी ।

राजाराम—तुम्हें तो वहम हो गया है कि मुझे अपनी औलादसे
प्यार नहीं । तुम मां हो, इसमें, शक नहीं, मगर मैं भी तो बाप हूँ ।

आखिरी बात सुनकर कौशल्याको फिर बोलनेका साहस हुआ,
ज़रा क्रोधसे बोली—बाप हो, मगर बापका प्यार तो तुममें कभी न
देखा । ग़रीब शादी तो तुम्हारी शक्ल देखकर सहम जाता है । मारना
जानते हो, प्यार करना नहीं जानते ।

राजारामको हँसी आ गई ।

कौशल्या और भी तेज़ होकर बोली—क्या मजाल, जो कभी
प्यारसे गोदमें ले लें, या हँसकर दो बातें ही कर लें । हाँ, मारनेको
हर समय तयार रहते हैं । बच्चा है, डरके मारे बोलता नहीं, मगर
मनमें क्या कहता होगा ?

राजाराम—यही कि यह मेरा बाप नहीं ।

कौशल्या—चलो, चुप रहो । (ज़रा देर बाद) अगर कलको
मुझे कुछ हो जाए, तो इन बच्चोंका क्या हो ? रो रोकर मर जाएं,
जब भी तुमसे आशा नहीं कि इन्हें ज़रा चुप भी करा जाओ ।

राजाराम—लो अब मरनेको भी तय्यार हो गई ।

कौशल्या—कैसे आदमी हैं, हर समय तने ही रहते हैं।

राजाराम—देवीजीका यह क्रोध अब उतरेगा भी या नहीं ?

कौशल्या—परमेश्वरने सन्तान दे दी, पर यह समझ न दी कि बच्चे शरारतें भी किया करते हैं। बचपनही में तुम्हारी समझ कहाँसे ले आएँ ?

राजाराम—अगर हुक्म हो, तो आजसे मारना छोड़ दूँ।

कौशल्या—मारना क्यों छोड़ दो ? मैं यह कभी न कहूँगी। अगर पाजीपन करे तो बापकी तरह मारो, मगर बापकी तरह प्यार भी तो करो।

राजाराम—और जिसे प्यार करना न आए, वह क्या करे ? मेरे खयालमें मार-पीट मैं कर देता हूँ, प्यार तुम कर लिया करो। अब सारे काम मैं ही कैसे कर सकता हूँ ?

कौशल्या—बस यही तो तुममें ऐब है। हर बातको हँसी मज़ाकमें उड़ा देते हो।

राजाराम—तो अब हँसना भी पाप हो गया ? बहुत अच्छा, अब रोनी सूरत बन जाएंगे।

कौशल्या—सारा दिन राह देखते देखते गुज़रता है, और यह आते ही कोई न कोई ऐसी बात कर देते हैं कि देहमें आग लग जाए।

राजाराम—(हँसकर) चलो, आज शादीसे कुछ न कहूँगा, अब तो देवी खुश हुई ?

कौशल्या भी हँस पड़ी। प्यार-भरी दृष्टिसे पतिकी तरफ़ देखकर बोली—अपने कमरेमें चलकर कपड़े बदलो। इतनेमें मैं दूध गर्म कर लाऊँ। थक गए होंगे।

शादीके सिरसे मुसीबत टल गई।

लाला राजाराम सीधे-साधे आदमी थे । घरका स्याह-सफेद सब कौशल्याके हाथमें था । वह जो चाहती थी, करती थी । राजाराम उसमें कभी दखल न देते थे । उनको यह भी पता न था कि घरमें क्या है, क्या नहीं है ? उनको दो रोटियाँ खानेसे मतलब था । वे कमाते थे, कौशल्या खर्च करती थी । इसी तरह उनके विवाहित जीवनके सात आठ साल बीत गए । कौशल्याको पतिसे कोई शिकायत न थी । सखी-सहेलियोंमें बैठती, तो उनकी प्रशंसाके पुल बाँध देती । कहती, ऐसा पति भगवान् सबको दे । उनमें कोई भी ऐब नहीं, यहाँ तक कि सिगरेट भी नहीं पीते । ज़रा ज़ोरसे बोलूँ, तो द्रव जाते हैं । मगर एक काँटा था, जो उसके दिलमें सदा खटकता रहता था; उनको बच्चोंसे प्यार न था । कभी उनको गोदमें बिठाकर प्यार न करते थे, कभी बाज़ार न ले जाते थे । ज़रा ज़रा-सी बातमें भी धमका देते थे, और ज़ोर ज़ोरसे बोलने लगते थे । कोई मिलने-जुलनेवाला अपने बच्चेको साथ ले आता, तो उनकी भी परवा न करते । कौशल्या कहती, तुम्हारी इतनी उम्र हो गई, पर तुम्हें यह समझ अब तक न आई कि कोई घरमें आए, तो उसके बच्चेके सिरपर प्यारसे हाथ फेर देना उसका बड़ा भारी सत्कार करनेके बराबर है । वह तुम्हारे पास बैठे रहते हैं, तुम उनकी बात भी नहीं पूछते । सोचते होंगे, कैसा अभिमानी है, सीधे मुँह बात ही नहीं करता । पता नहीं, दफ़तरका काम कैसे कर लेते हो तुम ? वहाँ भी भूलें करते होंगे ।

राजाराम मुहब्बतसे सुनी हुई यह बातें सुनते, तो हँस पड़ते । कौशल्याको भी हँसी आ जाती । मगर उसके मनकी चिन्ता दूर न होती थी ।

इतवारका दिन था, लाला राजाराम धूपमें लेटे एक अखबार देख रहे थे । इतनेमें कौशल्या बेटीको लिए हुए आकर उनके पास बैठ गई, और

अखबार छीनकर बोली—लो सुनो ! आज तुम्हारी बिटियाने एक नई बात सीखी है !

राजाराम—मालूम होता है, अब मुझे अखबार न देखने दोगी तुम । बड़ा अजीब लेख है ।

कौशल्या—मेरी बिटियाकी बात उससे भी अजीब है ।

राजाराम—भाईको बुलाना सीख लिया होगा ।

कौशल्या—वाह ! मेरी बेटी क्या ऐसी मामूली बातें सीखती है ? तुम्हारा जी खुश कर देगी आज ।

यह कहकर कौशल्याने शकुन्तलासे कहा—क्यों बेटी ! तू मरेगी या नहीं मरेगी ?

शन्नीने मांकी तरफ़ देखकर जोरसे सिर हिलाया और कहा—हाँ ? राजारामको हँसी आ गई ।

कौशल्या—तू मरना जानती है ?

शन्नीने फिर उसी तरह सिर हिलाया, और तोतली ज़बानसे कहा—हाँ दानती हूँ ।

कौशल्या—कैसे मरेगी ? ज़रा बाबूजीको मरकर दिखा दे ।

शन्नी अपना नाटक दिखानेको झट मांकी गोदसे उतर आई । इसके बाद उसने कौशल्याके सिरसे दुपट्टा उतार लिया और उसे ओढ़कर ज़मीनपार चुपचाप लेट गई ।

राजाराम हँस हँसकर लोटे जाते थे ।

कौशल्या—(धीरेसे) ज़रा देखते चलो । (ऊँची आवाज़से) शन्नी ! अरी ओ शन्नी !! बाप रे बाप ! कैसी लड़की है, पता नहीं कहाँ चली गई ? (सहसा चौंककर) अरे, यह तो यहाँ लेटी है ।

शन्नीने उसी तरह लेटे लेटे मगर सिर हिला हिलाकर जवाब दिया—छन्नी नहीं, छन्नी नहीं । मां ! छन्नी नहीं ई ई ।

कौशल्या—तो क्या शन्नी मर गई ?

शन्नी—(सिर हिलाकर) हाँ छन्नी मल दर्ई ।

राजारामने हँसकर शन्नीको ज़मीनसे उठा लिया, और उसका मुँह चूमकर कहा—क्यों बिटिया रानी ! मरनेकी क्या ज़रूरत है ? तेरी माँको बड़ा दुःख होगा, अब कभी न मरना ।

शन्नीने दोनों हाथोंसे बापका मुँह पकड़ लिया, और उनकी आँखोंमें अपनी शकृ देखते देखते कहा—वो ओ ओ छन्नी ! वो ओ ओ छन्नी !

कौशल्यापर ब्रह्मानन्दकी मस्ती छा गई । वह किसी दूसरी दुनियामें पहुँच गई । इतनी खुशी उसे अपने लिए दो हज़ारके गहने लेकर भी न होती । वह यही चाहती थी । उसकी सबसे बड़ी ख्वाहिश यही थी । वह अपने पतिका स्नेह मांगती थी, पर अपने लिए नहीं, अपनी सन्तानके लिए । एकाएक उसे शादीका ध्यान आया । घरमें मिठाई बँट रही हो, तो माँको अपने सारे बच्चोंका खयाल आता है । वह यह नहीं देख सकती, कि एक बच्चा सब कुछ ले जाए, दूसरे मुँह ताकते रहें । आज उसके यहाँ पिताका प्यार बँट रहा था । पता नहीं कितने दिनों बाद । भहन अपना भाग ले चुकी थी, अब भाईकी बारी थी । कौशल्याने दुपट्टा ओढ़कर शन्नीको गोदमें लिया, और जल्दीसे नीचे उतर गई । वहाँ शादी कागज़की नाव बना रहा था । कौशल्याने उसका मुँह धोया, सिरमें तेल डाला, कंधी की, नए कपड़े पहनाए, और धीरेसे कहा—जा जाकर बाबूजीको अपने कपड़े दिखा आ । भागकर जा ।

शादी नए कपड़े पहनकर दिलमें फूला न समाता था, मगर बापके पास जानेकी बात सुनकर उसका चेहरा उतर गया । वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगा, पर उसका दिल धक धक कर रहा था ।

वह बापके सामने जाकर खड़ा हो गया, मगर वे फिर अखबार देख रहे थे । उनको मालूम भी न हुआ कि शादी सामने खड़ा है । उन्होंने सिर उठाकर देखा भी नहीं । तब उसने कहा—पिताजी, नए कपड़े !

राजारामने चौककर सिर उठाया, और फिर अखबार पढ़ते हुए कहा—क्या है शादी, क्या है ?

शादी—नए कपड़े ।

राजारामने बिना सिर उठाए जवाब दिया—तुमने नए कपड़े पहने हैं ? बहुत अच्छा किया । खराब न करना । अब जाओ जाकर खेलो । मैं अखबार पढ़ रहा हूँ । अच्छा !

शादी खुश हुआ, परन्तु कौशल्या खुश न हुई । उसकी मुराद पूरी न हुई । वह सीढ़ियोंके पास खड़ी यह सब कुछ देख रही थी । शादी नीचे जाने लगा तो उसने उसे फिर पकड़ लिया और धीरेसे उसके कानमें कहा—पीछेसे जाकर अपने बाबूजीकी गरदनमें बाँहें डाल दे ।

शादी फिर उदास हो गया । वह सोचता था, नए कपड़े पहने हैं, चलकर अपने दोस्तोंको दिखाऊँगा । मगर माँने फिर उसी स्नेह-हीन कठोर-हृदय बापकी ओर ढकेल दिया जो अखबार पढ़ता था, प्यार न करता था । उसपर जैसे कोई घोर संकट आ पड़ा । कमजोर विद्यार्थी फिर परीक्षा देने चला । उसके पाँव काँप रहे थे, मुँहका रङ्ग उड़ा जाता था । दैवयोगसे एक बार पास हो गया था, क्या अब दूसरी बार भी पास हो जाएगा ? नहीं, उसे इसकी ज़रा भी आशा न थी । मगर वह फिर गया, और बापकी पीठकी तरफ़ जाकर खड़ा हो गया । मगर उसकी गरदनमें बाँहें डालनेकी हिम्मत उसमें न थी । कहीं नाराज़ न हो जाएँ, एक बार हँसकर टाल चुके हैं पर अबके तो जान न बचेगी । उसने सीढ़ियोंकी तरफ़ देखा, कि अगर माँ न हो, तो भाग जाए । लेकिन माँ वहीं खड़ी थी, और शादीको इशारोंसे कह रही थी, कि देखता क्या है ? लिपट जा, बाँहें बापके गलेमें डाल दे ।

अब शादीके लिए कोई और रास्ता न था । उसने जानपर खेल कर अपनी नन्हीं नन्हीं बाँहें खोलੀं और बड़े जोरके साथ बापके गलेसे

लिपट गया। राजाराम अखबार पढ़नेमें लीन थे। भटका जो लग्न तो उनके हाथसे अखबार गिर गया। चौंक कर बोले— अरे कौन शादी !

शादीने उनकी तरफ मुस्कराकर देखा। मगर यह मुस्कराहट स्वाधीनताकी सचेत, प्रकाशमय, प्रसन्नता-पूर्ण मुस्कराहट न थी, जिसके पीछे कहकहा छिपा रहता है। यह पराधीनताकी प्राणहीन, तेजहीन, सशंक मुस्कराहट थी, जो भयकी छाया तले चलती है, और पग पग पर काँपती है। उस समय यह मुस्कराहट कैसी फीकी कितनी उदास दिखाई देती है ! यही दशा शादीकी मुस्कराहटकी थी।

राजारामने शादीकी तरफ क्रोधसे देखा और कड़क कर कहा— जा, जाकर खेल ! नए कपड़े पहने हैं, तो क्या मुझे अखबार न पढ़ने देगा ? पाजी कहीं का। ऊपर आ गिरता है।

शादी डर कर चला आया, और चुपचाप नीचे उतर गया। कौशल्याकी आँखोंमें आँसू आ गए। विद्यार्थीके फ़ेल होनेपर उस्ताद भी उदास हो जाता है। उसने ठंडी आह भरी और अपनी कोठरीमें जाकर चारपाईपर लेट गई। इस समय उसकी आँखोंमें पानी था, हृदयमें आग। रह रह कर सोचती थी, कैसे कठोर-हृदय हैं, इन्हें बच्चेसे ज़रा भी स्नेह नहीं। अगर हँसकर दो बातें कर लेते, तो इनका क्या बिगड़ जाता ? ऐसे धमका दिया, जैसे कोई फ़कीरका लड़का भीख माँगने आया हो। इन्हें अखबारकी चाह है, बच्चेकी चाह नहीं। इतना भी न सोचा, कि ग़रीबका दिल छोटा हो जाएगा। कौशल्याकी आँखोंके आँसू उसके गालोंपर बहने लगे।

शकुंतलाने माँके मुँहपर अपने सुकोमल हाथ फेरते हुए कहा—मां !

कौशल्याने बेटीका मुँह चूम लिया और रोते रोते बोली—क्यों, शक्ती, क्या है ?

शक्तीने मनको मोह लेनेवाले ढँगसे झूम झूम कर कहा—छन्नी नहीं ई ई ई । छन्नी नहीं ई ई ई ।

कौशल्याकी आँखें अपने बेटेके दुर्भाग्यपर आँसू बहा रही थीं, मगर उसके होंठ बेटाकी तोतली बातोंपर हँस रहे थे, जैसे कभी कभी वर्षा में भी धूप निकल आती है ।

मगर राजाराम अपने अस्वबारके दिलचस्प लेखमें तन्मय थे, और कौशल्याके नारी-हृदयमें सुख और दुःखके कैसे वेदनापूर्ण भाव पैदा हो रहे हैं, इसका उन्हें ज़रा भी पता न था ।

३

इसके कुछ दिन बाद राजारामके मकानपर सङ्गीत-सभाका उत्सव हुआ । उनके दफ्तरके लोगोंने उन्हीं दिनोंमें एक सभा (Happy Club) कायम की थी । इस सभाके बहुतसे सदस्य गाने-बजाने के शौकीन थे । हर शनिवारकी रातको किसी न किसी मेम्बरके मकानपर जमा होते थे, और दो घड़ी दिल बहलाते थे । लाला राजाराम गाना-बजाना बिल्कुल न जानते थे, मगर सङ्गीतका शौक उन्हें बचपनसे था, Happy Club के मेम्बर बन गए । आज उनके यहाँ इसी सभाकी साप्ताहिक मीटिंग थी, । अन्दर-बाहर दौड़ते फिरते थे । ताराचन्द गाता था, हंसराज हारमोनियम बजाता था, और बाकी लोग तन्मय होकर सुनते थे । यह ताराचन्द रागी न था, न उसे राग-विद्याके नियमोंका बोध था, मगर उसका गला ऐसा सुरीला, और रसील । था कि सुनकर मज़ा आ जाता था । लोग कहते तेरी आवाज़में जादू है, तभी तो तू मन मोह लेता है । मगर इस समय राजारामका इधर ध्यान भी न था । वे मेम्बरोंके आदर-सत्कारमें लीन थे । सोचते थे, कोई यह न कहे, राजारामका प्रबन्ध ठीक न था । किसीको सिगरेट देते थे, किसीको दियासलाई, किसीको पान-सुपारी इतनेमें एक साहब बोले—बाबू ताराचन्दका गला बैठनेकी धमकी दे रहा है ।

जल्दीसे मिसरी और इलायची दो, नहीं तो गला बैठ जाएगा और सभा की शोभा लेट जाएगी ।

लाला राजाराम भागे गागे घरके अन्दर गए, और स्त्रीसे बोले—मिसरी और इलायची कहाँ है ?

कौशल्याने अलमारीसे एक प्लेट निकालकर पतिके हाथपर रखी और पूछा—यह कौन गा रहा है ?

राजाराम—तारचन्द्र है ।

कौशल्या—खूब गाता है । आवाज़में मिठास है ।

राजाराम—क्या कहने ! सभी मस्त हो रहे हैं ।

यह कहकर वे लौटनेको थे कि कौशल्याने धीरेसे कहा—ज़रा एक बात तो सुनते जाओ ।

राजाराम—(ठहर कर) क्या कहती हो । जो कुछ कहना हो, जल्द कहो । देर हो गई तो ताने मारेंगे कि मिसरी घरमें न होगी, बाज़ारसे लाए हो । जभी देर हो गई ।

कौशल्या—अरे तो क्या ये लोग इतने शोहदे हैं ? दूसरोंकी इज़्ज़त की परवाह ही नहीं करते ?

राजाराम—एक जगह काम करनेसे बे-तकल्लुफी हो जाती है , इसमें बुरा क्या है । कहो क्या कहती हो ?

कौशल्या—बच्चोंको भी ले जाओ । बार बार जाकर भाँकते हैं ।

राजाराम—भाँकने दो, अन्दर जाकर क्या करेंगे ? गानेकी आवाज़ यहांसे भी सुनाई देती है, और बिलकुल साफ़ ।

कौशल्या—एक तरफ़ बिठा देना, बैठे रहेंगे ।

राजाराम—और जो कोई शरारत की तो फिर ?

दोनों बच्चे सामने खड़े अपनी किस्मतका फैसला सुननेकी प्रतीक्षा कर रहे थे । कौशल्याने पूछा—कोई शरारत तो नहीं करोगे ?

शादी—चुप चाप बैठे रहेंगे ।

राजाराम—तुम चुप-चाप बैठना जानते ही नहीं, चुप-चाप कैसे बैठोगे ? कहने लगे, चुप-चाप बैठे रहेंगे ।

शादीका चेहरा निस्तेज हो गया । वह एक कोनेसे सट कर रोने लगा । मगर शन्नी इतनी आसानीसे पिंड छोड़नेवाली न थी । उसने पिताकी टाँगोंसे लिपट कर कहा—छन्नी नहीं ई ई ई । छन्नी नहीं ई ई ई, और फिर माँका दुपट्टा पकड़ कर उसे जोर जोरसे खींचने लगी और रोने लगी, जिसका भाव यह था कि इन्हें कहो, ले चलें ।

कौशल्याने कहा—नहीं शरारत करेंगे, ले जाओ !

राजारामका मन न मानता था कि ये बच्चे वहाँ आरामसे बैठेंगे, मगर स्त्रीके सामने बोलते हुए उन्हें डर लगता था । सोचते थे कि अगर इसे क्रोध आ गया, तो अभी गरजने लगेली । इसकी आवाज़ बाहर तक सुनाई देगी, सारा मज़ा किरकिरा हो जाएगा । एक जलसा बाहर हो रहा है दूसरा अन्दर होने लगेगा । बे-बसीसे बोले—खैर आ जाओ । मगर शोर न मचाना । नहीं ऐसा पिटोगे कि याद रहेगा ।

शादीके बहते हुए आँसू रुक गए । चेहरेपर हँसी आ गई । कुरतेसे आँखें साफ़ करते हुए बोला—हम शोर नहीं मचाएँगे ।

राजाराम—शन्नीको उठा लो और चले आओ ।

शादी बहनको उठाकर बाहर ले गया, और उस कमरेमें जाकर जहाँ गाना हो रहा था, एक तरफ़ बैठ गया, और शन्नीको भी पास बिठा लिया । शन्नीने अपनी बड़ी बड़ी आँखोंसे इतने आदमी देखे तो डर गई और उठकर भाईकी गोदमें जा बैठी ।

राजाराम मिसरी और इलायची बाँटने लगे । वे जब तक दूर थे, शन्नी चुप रही, मगर जब बिलकुल निकट आ गए, तब उसका धीरज जाता रहा । उसने एक हाथसे अपने सिरके लम्बे बालोंको पीछे हटाया और दूसरा हाथ फैला कर कहा—मैं !

जो पास बैठ थ, वे हँसने लगे । राजारामने मिसरीकी तीन-चार डलियाँ उसके हाथपर रख दीं और कहा—यह लो, यह “मैं ” की डलियाँ हैं । चुपचाप खा लो, मगर ख़बरदार आवाज़ न निकले ।

शादीके दिलमें कुछ कुछ होने लगा । उसकी आँख मिसरीपर थी । वह अपनी जीभ होठोंपर फेरता था । उसे आशा थी, अभी उसे भी मिलती है । मगर राजाराम आगे बढ़ गए, और उसे मिसरी न मिली । शादीकी आँखें सजल हो गईं । उसका चेहरा उतर गया । वह सोचने लगा, सबको मिली है मुझीको क्यों नहीं मिली ? अगर मां हीती, तो यह अन्याय कभी न करती । जब बड़ा हूँगा और रुपया कमाऊँगा, तो पन्द्रह बीस रुपयेकी मिसरी ले आऊँगा, और पेट भर कर खाऊँगा । सबको दूँगा, पर बाबूजीको एक डली भी न दूँगा । माँगेंगे, तो कहूँगा तुमने भी तो मुझे न दी थी, अब शन्नीसे माँगो ! शन्नीको भी न दूँगा कहूँगा बाबूजीसे माँगो, मुझसे क्यों मांगती हो ।

मगर वह बड़ा होनेका, रुपया कमानेका, पेट भरकर मिसरी खानेका और बापको चिढ़ानेका शुभ-अवसर अभी बहुत दूर था, और शन्नीकी मिसरी जल्दी जल्दी समाप्त हो रही थी । शादीने एक डली उठाकर अपने मुँहमें डाल ली, और मुँह दूसरी तरफ़ फेर लिया । अगर शन्नी न देखती, तो किसीको पता भी न लगता, मगर उसने देख लिया और मचल गई । शादी उसे मनाता था, और वह गुस्सेसे उसका मुँह नोचती थी, कि मेरी मिसरी तूने खाई क्यों ? इसके बाद वह फ़र्शपर लेट गई और चीख़ चीख़कर रोने लगी । गानेमें एक आवाज़ भी सुनाई दे तो गाना बंद-मज़ा हो जाता है । ताराचन्दने गाना बन्द कर दिया, और पूछा—यह रोती क्यों है ?

कई आदमियोंने शन्नीको मनानेका यत्न किया, मगर वह चुप न हुई और भी जोर जोरसे रोने लगी । जहाँ सङ्गीत—ध्वनी गूँजती थी, वहाँ चीखें गूँजने लगीं । राजाराम किसी कामसे घरके अन्दर गए थे, बाहर

आए तो यह दृश्य देखा, लपककर शन्नीके पास पहुँचे और लाल लाल आँखें निकालकर बोले—क्या हुआ है, जो यों चिल्ला रही है तू ?

एक आदमीने कहा—नादान है । धीरेसे बोलिए, नहीं डर जायगी । बच्चे आखिर बच्चे हैं ।

शन्नीके देवता कूच कर गए । उसकी आँखोंके आँसू आँखोंमें रुक गए । डरते डरते बोली—छादी । अर्थात् शादीने मेरी मिसरीकी ढली छीन ली है ।

राजारामकी देहमें आग-सी लग गई । मगर इतने आदमियोंके सामने क्या कहते ? लहूका घूँट पीकर रह गए, और धीरेसे मगर क्रोध-भरे स्वरमें बोले—दोनों बाहर निकल जाओ । तुम यहाँ बैठने लायक नहीं ।

बच्चे हमारी भाषा समझें, या न समझें, पर वह हमारी आँखोंका भाव समझनेमें कभी भूल नहीं करते । शन्नीने समझ लिया कि इस समय चूँ भी की तो पिटूंगी । चुप-चाप भाईकी गोदमें चली गई । शादी उसे लेकर बाहर निकल गया । मगर राजारामकी क्रोधाग्नि अभी तक शांत न हुई थी । उन्होंने आँगनमें जाकर शादीको पकड़ लिया और क्रोधसे काँपती हुई आवाजमें कहा --क्यों पाजी ! तूने इससे मिसरी क्यों छीनी ? लोग क्या कहते होंगे ? यही न कि इसने कभी मिसरीका मुँह नहीं देखा ? यही न की इसके घरमें गरीबी बरसती है ?

शादीने बहनको गोदसे उतारकर ज़मीनपर खड़ा कर दिया और आप सिर झुकाकर नीचे देखने लगा । राजाराम बिफरे हुए शेरके समान उसके सामने खड़े थे, और क्रोधसे दाँत पीसते थे ।

शन्नीने मार-पीटके ये पूर्व-चिह्न देखे, तो रोती हुई भाग गई और रसोई-घरमें जाकर माँसे बोली--माँ, बाबू, छादी--माँ, बाबू छादी । अर्थात् बाबूजी शादीको पीट रहे हैं ।

कौशल्याने जल्दीसे बाहर निकलकर देखा, तो राजाराम लड़केको बुरी तरह पीट रहे थे । ऐसी निर्दयतासे कोई धोबी कपड़ेको भी पत्थरपर न पटकता होगा । मांका हृदय अधीर हो गया । उधरे मांको देखकर शादीकी भी चीखें निकल गईं । कौशल्याने शादीका हाथ पकड़कर उसे अपनी तरफ़ खींच लिया और कहा—बस भी करो क्या अब मार ही डालोगे ? गुस्सेकी भी हद होती है ।

राजाराम—(क्रोधसे काँपते हुए) मैंने कहा न था कि इन्हें अन्दर ही रहने दो । उस समय तो सुनती ही न थीं ।

कौशल्या—तो अंदर जाकर किसका खून कर आया है यह, जो इसको मारनेपर तुल गए हो ?

यह कहकर उसने अपने दुपट्टेके आँचलसे शादीका मुँह पोछा, और पतिके मुँह की तरफ़ देखने लगा ।

राजाराम—किसका खून किया ? सारी सभाका खून किया ।

कौशल्या—बहुत अच्छा किया, बहुत ठीक किया । यह घर है, रंगशाला नहीं है । ऐसी सभाएँ सजानी हों, तो बाहर जाकर सजाया करो । घर में बच्चे रहेंगे ।

राजाराम—जरा और जोरसे बोलो, तुम्हारी आवाज़ बाहर तो अभी जाती ही नहीं ।

कौशल्या—जाती है तो जाए । मुझे किसीका डर नहीं ।

राजाराम—लोगोंको तमाशा दिखा लो, शरम तो न आती होगी ।

कौशल्या—संसारकी सारी शरम क्या मेरे ही लिए रह गई है ? जब तुम्हें अजान बच्चेको मारते हुए शरम नहीं आती, तो मुझे उसे बचाते हुए क्यों शरम आए ?

राजाराम—देखो, मैं बे-शरम हूँ मगर इतना गया-गुजरा नहीं हूँ कि तुम्हारी बकवास सामने खड़ा सुनूँ ।

कौशल्या—और मैं भी इतनी गई गुजरी नहीं हूँ कि अजान बच्चे को अपनी आँखोंके सामने पिटते हुए देखूँ, और चुप रहूँ। यह असम्भव है। अगर कोई हड्डी बड़ी टूट गई, तो सङ्कट मुझीपर टूटेगा, तुम्हारा क्या है ? तुम तो दफ़्तर चले जाओगे।

राजारामने स्त्रीकी तरफ़ देखा, तो डर गए। इस समय उसके चेहरेपर क्रोध था, आँखोंमें आगकी चिनगारियाँ। राजाराम समझ गए कि अब अगर एक भी शब्द और बोले, तो वह बारूदके ढेरपर दिया सलाईका काम दे जाएगा। चुप-चाप बाहर चले गए। मगर बाहर सन्नाटा छाया हुआ था। राजाराम मुस्करानेकी चेष्टा करते हुए बोले—गाना क्यों बन्द कर दिया आप लोगों ने ? गाइए ना।

हैपी क्लबके सदस्योंने एक दूसरेकी तरफ़ देखा, मानो आँखों ही आँखोंमें एक दूसरेसे पूछा कि यहाँ तो पति-पत्नीमें संग्राम छिड़ गया, अब ठहरे या चलनेकी तैयारियाँ करें।

राजाराम सीधे-साधे आदमी ज़रूर थे, पर मूर्ख न थे। दोस्तों की इन निगाहोंके अर्थ समझनेमें उन्हें ज़रा भी देर न लगी। लज्जाने चेहरा कानों तक लाल कर दिया। मगर साहससे बोले—गाओ ना ! गाते क्यों नहीं ? जल्सा जारी रहे।

ताराचन्द फिर गाने लगा, हंसराजकी उंगलियाँ फिर बाजेके सुरोंपर दौड़ने लगीं। इधर यह राग-रङ्गका उत्सव हो रहा था, उधर घरके अन्दर शादी सिसकियाँ भर भरकर रो रहा था, और कौशल्या उसे गलेसे लगाकर चुप करानेका यत्न कर रही थी।

४

दूसरे दिन शादी बुखारमें बेसुध पड़ा था। राजाराम डर गए। सोचने लगे, कैसी मूर्खता की, अब कौशल्या शेर हो जाएगी। कहेगी

उस समय मारते थे, अब घरमें बैठकर इलाजि भी करो । कौशल्याके सामने उनकी आँखें न उठती थीं । न उनमें उससे बात-चीत करनेका साहस था । वे समझते थे, मैंने मुहँ खोला, और कौशल्याने कैंड़कना शुरू किया । कौशल्याकी कड़क उनके लिए बिजलीकी कड़कसे भी डरावनी थी । चुपचाप जाकर एक डाक्टरको बुला लाए, और राहमें सारी घटना उसे सुना दी ।

डाक्टरने शादीको देखा, और नुसखा लिखने लगा । कौशल्याने घूँघटकी आड़में पतिसे कहा—पूछो कोई हड्डी बड़ी तो नहीं टूटी ?

राजारामका कलेजा धड़कने लगा ।

डाक्टरने कहा—हड्डी नहीं टूटी, सिर्फ डर गया है । इसीसे बुखार चढ़ गया है । और कोई बात नहीं ।

राजारामकी जानमें जान आई । कौशल्याने फिर पूछा—कब तक उतर जाएगा यह बुखार ?

डाक्टरने कहा—एक दो दिनमें । घबरानेकी बात नहीं । (नुसखा देकर) दिनमें तीन बार । सिर्फ दूध पिए ।

मगर तीन दिन बीत गए, और बुखार न उतरा । कौशल्या चिन्ताके मारे मरी जाती थी । सारी सारी रात जागती रहती । चौथी रात राजारामने कहा—आज तुम सो रहो, आज इसके पास मैं बैठूँगा ।

कौशल्या—तुमको जागनेकी आदत नहीं, बीमार हो जाओगे ।

राजाराम—नहीं होता । तुम जाकर आराम करो ।

कौशल्या—तुम्हें कष्ट होगा ।

राजाराम—भूल भी तो मेरी ही है ।

कौशल्या—अगर जागे, तो कल दफ्तर कैसे जाओगे ?

राजाराम—छुट्टी ले लूँगा ।

कौशल्या—न भई ! मैं तुम्हें न जागने दूँगी । जाओ, जाकर आराम करो, नहीं कल सारा दिन तबीयत खराब रहेगी ।

राजाराम—मालूम होता है, तुमने बीमार होनेका निश्चय कर लिया है ।

यह कहकर राजाराम सोनेको चले गए । कौशल्याने शादीकी देह देखी, और ठंडी आह भरी—बुखार अभी तक न उतरा था । उसकी आँखोंने पानी आ गया, और दिलमें बुरी बुरी बातें उठने लगीं ।

इतनेमें घड़ीने दस बजाए । शादीने एकाएक चिल्ला कर कहा—
मां ! पानी ।

कौशल्याने प्यारसे शादीको बाँहका सहारा देकर उठाया और कहा—पहले दवा पी लो, फिर पानी मिलेगा ।

शादी—न ! पहले पानी दो । बड़ी प्यास लगी है ।

यह कहते कहते वह रोने लगा ।

कौशल्या अधीर हो गई । हम बीमार बच्चे पर सख्ती नहीं कर सकते । उसने शादीको पानी पिला दिया, और कहा—दवा ठहर कर पिलाऊँगी । अब जरा लेट जा ।

शादीने मांकी तरफ़ प्यार-भरी दृष्टिसे देखा और कहा—मेरे साथ तू भी लेट जा ।

कौशल्या लेट गई । शादीने अपना सिर उसकी छातीमें छिपा लिया, और अपना हाथ उसके मुँहपर फेरने लगा ।

मांकी ममता जागना चाहती थी, मगर प्रकृतिके नियम अटल हैं । थोड़ी देर बाद कौशल्याको नींद आ गई ! अब उसे तन-बदनकी सुध न

थी । उधर राजाराम अपनी शय्यापर तड़पते थे, मगर उन्हें नींद न आती थी । वही प्रकृति जिसने माँको सुला दिया था, बापको जगा रही थी । वह सोना चाहते थे, सोनेका यत्न करते थे, मगर नींद उनसे कोसों दूर थी । आखिर उठ बैठे, मगर अपनी इच्छासे नहीं, किसी दैवी-शक्तिके इशारे पर । उनको मालूम न था कि वे क्या कर रहे हैं, किधर जा रहे हैं ? पर वह चल रहे थे । वह नङ्गे पाँव, नङ्गे सिर घरसे निकले, और घरके पासवाले मन्दिरकी तरफ़ रवाना हुए ।

रातका समय था, एक बज चुका था । चारों तरफ़ सन्नाटा था, लोग अपने अपने घरमें आरामकी नींद सो रहे थे । माँकी आँखें भी बन्द हो गई थीं । मगर बापका स्नेह बेटेकी जीवन-भित्ति माँगनेके लिए नङ्गे-पाँव नङ्गे-सिर मन्दिरकी तरफ़ भागा चला जाता था । उस समय मन्दिरके द्वार बन्द थे, और मन्दिरका पुजारी अपनी कोठरीमें पड़ा सो रहा था ।

राजाराम मन्दिरकी सीढ़ियोंपर औंधे मुँह गिर पड़े और बेटेकी सलामतीके लिए ऊँचे घरवाले, नीली छतवाले परमात्मासे प्रार्थना करने लगे । और उनके आँसुओंसे सङ्गमरमरकी सीढ़ियाँ तर हो गईं ।

यह वही बे-परवा, वही कठोर-हृदय बाप है, जिसे बच्चोंसे ज़रा प्यार न था, जिसने उनको कभी गोदमें लेकर उनका मुँह न चूमा था । आज वही बाप रातके औंधेरेमें बेटेके लिए प्रार्थना करने आया है ।

प्रातःकाल जब कौशल्याकी आँख खुली, तो साढ़े सात बज चुके थे । उसको अपने आपपर क्रोध आया कि वह सो क्यों गई ? तब उसने अपना हाथ शादीकी देहपर फेरा, और उसकी आँखें आनन्दसे चमकने लगीं— शादीका बुखार उतर चुका था, और वह इस समय मजेसे सो रहा था । कौशल्या जल्दीसे उठकर पतिको यह शुभसमाचार सुनानेके लिए उनके कमरेकी तरफ़ दौड़ी । मगर उनकी चारपाई खाली थी । कम्बल, कपड़े, जूता, सब कुछ वहीं था, केवल वे न थे । कौशल्याने कोना कोना ढूँढा,

परन्तु उनका कहीं पता न था । सहसा उसकी दृष्टि सीढ़ियोंकी तरफ गई, द्वार किसी भक्तकी आँखके समान खुला था । कौशल्या डर गई ।

इतनेमें कहारीने ऊपर आकर कहा—बहू ! बाबूजी साथवाले मन्दिरमें सीढ़ियों पर पड़े रो रहे हैं, और किसीके उठाए नहीं उठते ।

कौशल्याने यह बात अचरजके साथ सुनी, और सब कुछ समझ गई । वह दंग रह गई । उसे आज मालूम हुआ कि वह जिसे खुशक नाला समझे बैठी थी, वह गहरा सागर था । ऊपर रेत थी, नीचे पानी लहरें मारता था । उसने रेत देखी, पानी न देखा, मगर आज यह पानी रेतके पदोंको फाड़कर बाहर छलक रहा था । जैसे फव्वारेसे जलकी धारा उछलती है । कौशल्याकी आँखें सजल हो गई । आज उसको ऐसा मालूम हुआ, जैसे मुद्दतकी कमी एक क्षणमें पूरी हो गई हो । आज उसकी खुशीका ठिकाना न था । आज वह फूली न समाती थी । आज उसे अपना पति देवता दिखाई देता था ।

थोड़ी देर बाद पति-पत्नी शार्दके पास बैठे हँस हँसकर बातें कर रहे थे ।

कौशल्या—बुरा न मानना । मैं आजतक यही समझती रही, कि तुम्हें बच्चोंसे ज़रा भी प्यार नहीं ।

राजाराम—और आज ?

कौशल्या—आज तुम्हारा असली रूप देख लिया ।

राजाराम—(मुस्कराकर) यह भी हमारी चाल थी, खा गई ना धोखा ? हमने नाटक किया था ।

कौशल्या—चलो हटो, अब तुम्हारी बातोंमें न आऊंगी । कहते हैं, हमने नाटक किया था । कोई उस समय देखता, तो हैरान रह जाता । कैसे भागे भागे गए थे ? तन-बदनकी सुध न थी । दरवाज़ा भी खुला छोड़ गए । कोई चोर उचका आ जाता, तो सब जमा-जत्था उठाकर ले जाता । क्यों ?

राजाराम—मगर जो चीज़ पा ली, वह घरके सारे सामानसे भी कीमती है। बल्कि मेरा खयाल है, उसके सामने सारे संसारका सामान भी तुच्छ है।

कौशल्या किसी दूसरी दुनियामें पहुँच गई; बोली—यह प्यार आजतक कहाँ छुपा हुआ था ?

राजारामने मुस्कराकर स्त्रीकी तरफ़ देखा, और कहा—तुम्हारे दिलमें।

मास्टर आत्माराम

१

स्वयंसेवक ने कहा—वह हमारे मास्टर साहब हैं।

मैं चौंक पड़ा। मुझे कभी सन्देह भी न हुआ था कि वह मास्टर हो सकता है। मैं समझता था, कोई मामूली घरेलू नौकर होगा। या शायद किसी वकीलका चपरासी हो। इससे ज़्यादा मैंने उसे कभी कुछ नहीं समझा। कितने आश्चर्यकी बात है कि जो आदमी रातके बारह-बारह बजे तक मेरी और दूसरे उपदेशकोंकी सेवा करता रहता था, जिसे हमारे जूते साफ़ करने, बिस्तर भाड़ने, और मैले कपड़े धोनेमें भी संकोच न था, वह स्कूलका मास्टर निकला। मुझे बड़ा अभिमान है कि मैं आदमीका चेहरा देखकर उसे पहचान सकता हूँ। मगर मुलतान के उस उदास, निराश, चुपचाप रहनेवाले अद्भुत आदमीके सामने मेरी यह शक्ति बिलकुल बेकार सिद्ध हुई। मगर मुझे अब भी सन्देह था कि शायद स्वयंसेवक भूलसे किसी दूसरे आदमीका जिक्र कर रहा हो। मैंने पूछा—तुम किस आदमीके विषयमें कह रहे हो ? मेरा इशारा उस आदमीकी तरफ़ है, जो रातको हमें दूध देने आया था, और सुबह सैर कराने आया था।

स्वयंसेवक—जी हाँ, मैं भी उन्हींकी बात कह रहा हूँ।

मैं—तुम मेरे रातके व्याख्यानमें थे ?

स्वयंसेवक—जी हाँ, था ।

मैं—व्याख्यानके शुरू होनेपर जिस आदमीने मेज़पर लेम्प रक्खा था, म उसका जिक्र कर रहा हूँ ।

स्वयंसेवक—वही मास्टर साहब हैं ।

मैं—तुम ज़रूर भूल कर रहे हो । मैं ऐसा मूर्ख नहीं कि एक साधारण नौकर और स्कूल-मास्टरमें भी फ़र्क़ न समझ सकूँ । (थोड़ी देरके बाद) अच्छा, यह बताओ उसका नाम क्या है ।

स्वयंसेवक—लाला आत्माराम, बी० ए०, बी० टी० । हमारे ही स्कूलमें सेकण्ड मास्टर हैं ।

मैं—मगर शक़-सूरतसे तो मालूम नहीं होता कि वह ग्रेजुएट होंगे । अगर वह मुझसे आप कहते कि मैं ग्रेजुएट हूँ, मैं तब भी न मानता । समझता, झूठ बोल रहे हैं । और मुझे तो अभी तक विश्वास नहीं होता कि वह ग्रेजुएट होंगे ।

स्वयंसेवक—किसीको भी विश्वास नहीं होता कि यह महात्मा ग्रेजुएट होंगे ।

मैं—कपड़े बिल्कुल कुलियोंके-से पहनते हैं । बल्कि मेरा तो ख़याल है, कुलियोंके कपड़े भी इनसे अच्छे होते हैं ।

स्वयंसेवक—घरमें इससे भी बुरे पहनते हैं । हाँ, जब इन्स्पेक्टर आनेवाला हो, उस दिन कपड़े बदल आते हैं ।

मैं—और बहुत उदास रहते हैं । मैंने उनकी आँखोंमें कभी खुशी की जोत नहीं देखी । यों कामको हर समय तैयार रहते हैं । मेरा ख़याल है सदा दिल ही दिलमें कुदते रहते हैं ।

स्वयंसेवक—मगर किसीको कुछ बताते नहीं हैं। हेडमास्टर साहबने कई बार अनुरोध किया; लेकिन कुछ न बताया। केवल इतना ही कहा—मैंने पाप किया है, यह उसका प्रायश्चित्त है।

मैं—अजीब आदमी हैं।

स्वयंसेवक—मगर आदमी शरीफ़ है। आपको कोई काम हो, रातके दो बजे बुला भोजिए—दौड़ते हुए चले आएंगे। एक बार भी 'नहीं' न कहेंगे। और फिर जनाब पुरुषार्थी ऐसे हैं कि सारी सारी रात काम कराते रहिए, आँखें भी न भपकेंगी, न थकेंगे, न ढीले पड़ेंगे।

२

मुझे और भी आश्चर्य हुआ। स्वयंसेवकके चले जाने पर बार-बार सोचता था, इसकी तहमें जरूर कोई खास राज़ है, कोई छिपी हुई घटना। मगर वह घटना क्या है? इस आदमीने ऐसा कौन-सा पाप किया है, जिसका प्रायश्चित्त करनेके लिए अपने आपको इस तरह लोगोंकी दृष्टिमें गिरा रहा है? इसने कौनसा आग जलाई है, जिसमें अब यह इस तरह जल रहा है?

सन्ध्याका समय था, मेरा व्याख्यान शुरू होनेमें केवल एक घण्टा बाकी था। पंडालमें लोग अभी से जमा हो रहे थे। उनके चिल्लानेकी आवाजें मेरे कानों तक पहुँच रही थीं। मगर मुझे व्याख्यानकी ज़रा भी चिन्ता न थी, मैं ज़रा भी न सोचता था कि आज क्या कहूँगा? मेरे सामने इस समय एक ही सवाल था—यह मास्टर साहब कौन हैं? इनका गुप्त इतिहास क्या है? इन्होंने क्या पाप किया है? यह क्यों अपने आपको ज़लील करते हैं? मैं यह जाननेके लिए अधीर हो रहा था।

इतनेमें दरवाज़ा खुला और एक आदमी अन्दर आया। यह मास्टर आत्माराम थे। इससे पहली रातको भी मेरा व्याख्यान था। भीड़के

अधिक होनेके कारण मेरा गला बैठ गया था । डॉक्टर भल्लाने मेरे लिए गलेकी टिकियाँ भेजी थीं, ताकि व्याख्यान देते समय आवाज़ साफ़ रहे । मास्टर आत्माराम वही टिकियाँ लेकर आए थे । उन्होंने शीशी मेज़पर रख दी, और धीरेसे पूछा—आप भोजन कब करेंगे ? इस समय या व्याख्यानके बाद ? अगर इस समय खाना चाहें तो ले आऊँ ? अगर बादमें खाना हो, तो कह आऊँ ।

मैंने इस प्रश्नका उत्तर न दिया, और उठकर उनका हाथ थाम लिया । वह कुछ घबरा गए । शायद उनको मुझसे ऐसे सुलूककी आशा न थी । मगर मैंने इसका ज़रा भी ख्याल न किया और कहा—मास्टर साहब ! मुझ आपसे शिकायत है कि आपने मुझे धोखा दिया, वरना मुझसे ऐसी गुस्ताखी कभी न होती ।

मास्टर साहबने मेरी ओर आश्चर्यसे देखा और कहा—आप क्या कह रहे हैं ? मैं आपका मतलब नहीं समझता ।

मैं उनको घसीटकर अपनी चारपाईके पास ले गया, और उन्हें अपने साथ बिठा कर बोला—मैं अभी समझाए देता हूँ । बैठिए ।

मगर वह उठनेके लिए छटपटाने लगे—मुझे छोड़ दीजिए । मैं फर्शपर बैठूँगा ।

म—(हँसकर) चुपचाप बैठे रहिए, नहीं तो मैं ज़बरदस्ती करूँगा ।

मास्टर साहब—(मिन्नतें करते हुए) पण्डितजी, परमात्माके लिए मुझे छोड़ दीजिए । मैं यहाँ बैठने योग्य नहीं, आपके चरणोंमें बैठूँगा ।

मैं—चरणोंमें बहुत बैठ चुके, अब सिरपर बैठना होगा ।

मास्टर साहबने मेरी तरफ़ दीन दृष्टिसे देखा, और बोले—मुझे मजबूर न करें, मैं आपके साथ कभी न बैठूँगा ।

मैं—मगर क्यों ? साथ बैठनेमें आखिर हर्ज क्या है ? आप शरीफ़ हैं, शिक्षित हैं, एक हाईस्कूलके सेकेण्ड मास्टर हैं । फिर भी.....

आत्माराम—मैं इस सम्मानका अधिकारी नहीं हूँ ।—मैं नराधम हूँ । मैंने पाप किया है ।

मैंने उनका हाथ छोड़ दिया । वह जल्दीसे फ़र्शपर बैठ गए । अब उनका चेहरा फिर शान्त था । थोड़ा-सा हँसकर बोले—मेरा स्थान यही है । मैं यहीं खुश हूँ ।

मैंने उनके कन्धेपर प्यारसे हाथ रक्खा, और अपनी आँखें उनकी आँखोंमें डालकर कहा—अपनी कहानी सुनाओ । मेरी प्रतिज्ञा है, मैं उसे सुने बिना यहाँसे न उठूँगा ।

मास्टर आत्मारामने एक ठण्डी साँस भरी, और दो गर्म आँसू टपकाकर कहा—मुझसे एक पाप हो गया है, अब प्रायश्चित्त कर रहा हूँ । बस यही मेरी कहानी है ।

मैं—नहीं; मैं सारी घटना सुनना चाहता हूँ । और (एक एक शब्द पर जोर देकर) मैं यह पूरी कहानी सुने बिना अन्न जल ग्रहण नहीं करूँगा । बोलो, क्या कहते हो ?

आत्माराम—(विवशतासे) इससे कुछ लाभ न होगा, उल्टा आप भी दुखी हो जाएंगे ।

मैं—आपका दिल तो हलका हो जाएगा ।

आत्माराम—मैंने यह घटना आज तक किसीसे भी नहीं कही ।

मैं—शायद आपसे ऐसी सहानुभूति, और ऐसे आग्रहसे किसीने पूछा भी न होगा ।

आत्माराम—आप माफ़ नहीं कर सकते मुझे ?

मैं—मैं प्रतिज्ञा कर चुका ।

आत्माराम—(सिर झुकाकर) तो फिर किसी समय कह सुनाऊँगा । अब तो आपके व्याख्यानका समय है । आप सुनते हैं, कितना शोर मच रहा है ? पाँच हजारसे कम आदमी न होंगे । मेरी दुख भरी कहानी सुनकर आपका दिल भर आया, तो व्याख्यान खराब हो जायगा ।

मैं—मास्टरजी, मुझे इस समय व्याख्यानकी ज़रा भी चिन्ता नहीं । आप इनकार करते हैं, मेरा शौक़ और भी बढ़ता जाता है । जब तक सुन न लूँगा, चैन न आएगा ।

आत्माराम मेरे मुँहकी तरफ़ देखने लगे ।

मैंने झुककर उनके कन्धोंपर दोनों हाथ रख दिए, और कहा—अब तो आपको कहना ही पड़ेगा । देर करना फ़ज़ूल है ।

आत्मारामने आकाशकी तरफ़ देखकर ठण्ठी साँस भरी, और इसके बाद धीरे-धीरे यों कहना शुरू किया—

३

पण्डितजी, मैं जालन्धरका रहनेवाला हूँ । मेरे पिताजी वहाँ कपड़ेकी दूकान करते थे । वे बहुत अमीर न थे, पर ग़रीब भी न थे । उनकी गिनती शहरके सुप्रसिद्ध लोगोंमें होती थी । उनकी बात टालनेका किसीमें सहास न था । शहरके गुण्डे भी उनके सामने सिर न उठाते थे । उनकी सच्चाई और निर्भयताके दृष्टान्त जालन्धरमें आज भी आपको सुनाई देंगे । मगर मेरे भाग्यमें उनकी स्नेह-छाया न लिखी थी । मैं अभी दो ही वर्षका था कि उनका देहान्त हो गया । मुझे उनकी शक्ति सूरत भी याद नहीं । भगवान् जाने, कैसे थे, कैसे नहीं थे । लोग उनकी आज भी तारीफ़ करते हैं ।

मेरा पालन-पोषण मेरी विधवा मांने किया। उसकी एक सहेली शिवाँ होशियारपुरकी रहनेवाली थी। वह भी विधवा थी। उन दोनोंमें असीम प्रेम था। उनका प्रेम देखकर सन्देह होता था कि वह सगी बहनें हैं, सखियाँ नहीं हैं। जब कभी मिलनेका अवसर आता, तो सारी सारी रात बातें करती रहतीं। रात समाप्त हो जाती, उनकी बातें समाप्त न होतीं। वह प्यार, वह स्नेह, वह विशुद्ध भाव आज भी याद आते हैं, तो दिलसे धुआँ-सा उठने लगता है। उनकी एक लड़की थी कमला। मुझे तीन-चार वर्ष छोटी होगी। दोनों सखियोंने हमारी सगाई कर दी और निश्चित हो गई।

उस ज़मानेमें मैं कॉलेजमें दाखिल हुआ ही था। सगाई होनेपर मुझे हार्दिक आनन्द हुआ। मैंने कमलाको केवल एकाध बार देखा था; वह भी बचपनेमें। मुझे उसकी शक्ल-सूरत, रङ्ग रूप कुछ भी याद न था। मगर इसपर भी मुझे प्रसन्नता हुई। जब एकान्तमें बैठता, कमलाकी ख्याली मूर्ति आँखोंके सामने आकर खड़ी हो जाती, और मेरी दुनिया में जोत जगमगा उठती। मुझे ऐसा मालूम होता था, जैसे एक हँसमुख, भोली-भाली सुन्दरी बाला लज्जासे सिर झुकाकर मेरी तरफ़ प्रेम-पूर्ण दृष्टिसे देख रही है। कभी-कभी ऐसा मालूम होता था, जैसे वह मुझसे बातें कर रही है। धीरे-धीरे कल्पना-जगत्की इस कल्पित मोहनी मूर्तिसे मेरा प्रेम बढ़ने लगा। मैंने इसे मायाकी जीती-जागती रूपवती लड़की समझ लिया, जिसे विधाताने मेरे ही लिए पैदा किया है। मगर भाग्यने मेरे लिए कुछ और ही सोच रक्खा था। जब मैं ट्रेनिंग कॉलेजमें भर्ती हुआ, तो एक दिन पता नहीं, किस तरह मेरे दिलमें विचार उठा, कि अगर वह मेरे आदर्शपर पूरी न उतरी, तो क्या होगा? जीवन नष्ट हो जाएगा, सारी आशाएँ मिट्टीमें मिल जाएँगी। सारे सुपनोंपर पानी फिर जाएगा। यह आशंका न थी, मेरी तबाहीका श्रीगणेश था। काश वह घड़ी मेरे जीवनसे निकल जाती; काश मैं उस समय सो जाता, किसी दुर्घटनासे

ज़रूमी हो जाता, तो आज मेरा जीवन ऐसा भयानक ऐसा निराशापूर्ण ऐसा शोकमय न होता। उस अशुभ दिनके बाद मेरे मनको सच्चा आनन्द कभी प्राप्त नहीं हुआ। मैंने इस सन्देहको, इस वहमको दिलसे दूर करनेका बहुत यत्न किया, मगर यह सन्देह दूर न हुआ। कुछ ही दिनोंके बाद मैंने स्थिर कर लिया कि कमलासे ब्याह न करूँगा, किसी और लड़कीसे देखकर करूँगा। पर आज सोचता हूँ उस समय मुझे क्या हो गया था ? शायद मैं पागल हो गया था। शायद मेरा दिमाग चल निकला था। न कुछ देखा, न सुना; और निश्चय कर लिया। आदमी समझते सोचते हुए भी कैसा अन्धा हो जाता है, यह आज समझता हूँ, उस समय ज़रा भी ख़याल न था।

गर्मीकी छुट्टियोंमें घर गया, तो एक दिन मांने कहा—क्यों बेटा, अब ब्याह कब करेगा ? शिवाँ आई थी तो कहती थी, लड़की जवान हो गई है। कब तक बिठा रखे ?

मैं खाना खा रहा था, चुपचाप खाता रहा।

मांने थोड़ी देर मेरे उत्तरकी प्रतीक्षा की और फिर बोली—समय बड़ा विकट है ! लड़कियाँको कुँवारा बिठा रखना आसान नहीं।

मैं अबके भी चुप रहा

मां—मैं भी उस दिनके लिए तड़प रही हूँ, जब तू दुल्हा बनकर और सेहरा बाँधकर घोड़ीपर सवार होगा।

मैंने फिर भी जवाब न दिया।

मां—(मेरे थालमें भाजी डालते हुए) अगर तू कहे तो इस बिसाखमें ब्याह कर दूँ ?

अब चुप रहना कठिन था। मैंने धीरसे कहा—मैं अभी ब्याह न करूँगा मां।

मांने स्नेहपूर्ण दृष्टिसे मेरी तरफ़ देखा, और कहा—तो क्या तू बुढ़ा होकर ब्याह करेगा ? ज़रा इस लड़क़ेकी बातें सुनो । कहता है, अभी ब्याह न करूँगा । पंण्डित गोकुलचंदका लड़का मायाधारी तुझसे तीन महीने छोटा है, उसका ब्याह हुए दो वर्ष बीत गए । लाला कर्ताकिशनका लड़का चुनीलाल...

मैं—(बात काटकर) मुझे औरोंसे क्या मतलब ? मैं अभी ब्याह न करूँगा ।

मां—अच्छा यह भी न सही । जानता है, तेरे बापका ब्याह कब हुआ था । १३ वर्षकी उमरमें । उस समय मैं आठ वर्षकी थी ।

यह कहते-कहते उसकी आँखें सजल हो गईं । उसकी आवाज़ गलेमें फँस गई । उससे और न बोला गया । वह चुपचाप दीवारकी तरफ़ देखने लगी । मेरा भी दिल भर आया, हाथका ग्रास हाथमें ही रह गया ।

थोड़ी देर बाद उसने फिर ठंडी साँस ली और कहा—आज अगर तेरा बाप होता, तो क्या तू फिर भी अभी तक कुँवाड़ा ही बैठा रहता ? न बाबा ! मैं अब तेरा एक न सुनूँगी । तू तो पागल है । पढ़-लिख गया तो इससे क्या ? मगर है वही पागल । ज़रा भी फ़र्क़ नहीं पड़ा ।

मैंने हँसकर जवाब दिया—पागल हूँ, तो पागलखाने भेजो, ब्याह क्यों करती हो । इससे तो यह मालूम होता है कि तुम भी पागल हो गई हो ।

अब मांको भी हँसी आ गई; ठोड़ीपर उँगली रखकर बोली—बाबा ! पता नहीं, तूने इतनी बातें कहाँसे सीख लीं ? पर एक बात कहे देती हूँ, तुझे ब्याह करना पड़ेगा ।

मैंने खानेका थाल परे हटा दिया, और गम्भीरतासे कहा—मां, मैंने एक बार कह दिया है, अभी ब्याह न करूँगा । यह मेरा अन्तिम निश्चय है । मैं इसे नहीं बदल सकता ।

शादय मांको अबतक यही ख्याल था कि यह इन्कार जीभका है, दिलका नहीं। लड़के माँ-बापके सामने ऐसा ही कहा करते हैं। मगर मेरी दृढ़ता देखकर माँका चित्त उदास हो गया, बोली—तो क्या जवाब दूँ ? लड़की तो जवान हो गई है।

मैं—कहो, कहीं और ब्याह दँ। हिन्दुस्थानमें मेरे सिवाय और भी बहुत लड़के हैं ? और वह जवान भी हैं।

मेरी इस बातसे मांके कलेजेमें तीर-सा लगा। स्नेहकी मूर्तिने क्रोधका रूप धारण कर लिया। उसकी आँखोंसे आगकी चिनगरियाँ निकलने लगीं, जैसे चन्दनको भी रगड़ा जाए तो उससे आग निकलती है। क्रोधसे बोली—अपनी स्त्रीका ब्याह दूसरे पुरुषसे हाँते देखेगा, और फिर भी सिर उठाकर चलेगा ? तू आदमी है, या जानवर है ?

मांका यह रूप देखकर मेरे देवता कूच कर गए। मेरे मुँहसे एक भी शब्द न निकला। मुँहमें ज़वान थी, ज़वानमें बोलनेकी शक्ति न थी। मैं चाहता था, मां एक बार फिर उसी तरह प्यारसे अपना अधिकार जता कर कह दे, तुझे ब्याह करना होगा, तो मैं सिर झुकाकर स्वीकार कर लूँ, चूँ भी न करूँ। मगर माँने यह शब्द न कहे, और उठकर चारपाईपर जा लेटी। मैं भी बाहर चला आया। अब मैं फिर वही जिद्दी, वही महामूर्ख, वही वहमी आत्माराम था, जिसने न कुछ देखा, न सुना, और समझ बैठा कि कमलासे ब्याह करके उसका जीवन अन्धकारमय हो जाएगा। पहले पहल यह सन्देह कोमल पौदा था, जिसे उखाड़ना ज़रा भी कठिन नहीं होता, आदमी चाहे तो पैरसे भी उखाड़ दे। मगर अब वही पौदा वृक्षका रूप धारण कर चुका था, जिसे हाथी हिलाना चाहे, तो वह भी न हिला सके। परमात्मा ही जानता है, संसारमें मुझ जैसे अभागे कितने हैं, जो अपने ही निर्मूल सन्देहके जगतमें भटक-भटककर तबाह हो जाते हैं।

कुछ दिन बाद होशियारपुरसे पत्र आया कि जल्दी मंजूरी भेजो, तो तैयारियाँ शुरू करूँ। मुझे तो शहरमें मुँह दिखाना भी मुश्किल हो गया है। पत्र पढ़कर मैं सोचने लगा, मांको दिखाऊँ या न दिखाऊँ। फिर सिरपर सवार हो जाएगी, फिर वही गालियाँ मिलेंगी, और क्या पता, जबरदस्ती ब्याह कर दे ? मैं घबरा गया। एक दिन सोचता रहा, दो दिन सोचता रहा, तीसरे दिन मार्ग मिल गया। मैंने मांकी तरफसे पत्र लिख दिया। उस पत्रका आशय यह था:—

बहन। क्या कहूँ ? कहते हुए भी शरम आती है। जी चाहता है, कहीं डूब मरूँ। तुम्हें कभी मुँह न दिखाऊँ। मगर मेरा इसमें ज़रा भी दोष नहीं। आत्मारामकी बुद्धिपर पत्थर पड़ गए हैं। कहता है, मैं ब्याह न करूँगा। क्या-क्या आशाएँ थीं—सबपर पानी फिर गया। कमलाको अपनी बहू बनाकर मुझे कैसा स्वर्गीय आनन्द प्राप्त होता। अफ़सोस ??

मुझे आत्मारामसे अब ज़रा भी आशा नहीं। मैं समझा-समझा कर थक गई, मगर उसपर असर नहीं होता। कैसे लिखवाऊँ कि कमलाको कहीं और ब्याह दो। पर विवश हूँ।

तुम्हारी दुखी बहन,
रामदेवी

पण्डितजी ! यह पत्र लिखकर मैंने समझा, कि सिरसे कोई भार उतर गया, कोई भयानक रोग टल गया। मगर यह रोग न टला था, मैंने अपने जीवनका सबसे बड़ा रोग ख़रीद लिया था। मैं कितना पतित, कितना पापी, कितना हृदयहीन हूँ ! उस समय मुझे ख़याल भी न आया कि मैं क्या कर रहा हूँ। मांको मालूम भी न हुआ, और यह पत्र होशियारपुर जा पहुँचा। मेरा पत्र पाकर शिवाँको कितना दुख हुआ होगा, यह मुझसे छिपा न था। इसीसे उसने पत्र लिखना भी बन्द कर दिया। प्रेम जब क्रोधमें आता है, तो चुप हो जाता है,

बोलता नहीं है। मगर यह बात ज़्यादा दिन छिपनेवाली न थी, एक दिन खुल गई।

वैसाखकी एक सन्ध्या थी। मैं सैर करके घर लौटा तो मां चुपचाप बैठी थी। उसकी आँखें रो-रोकर सूज गई थीं। मुझे देखते ही उसकी आँखोंसे फिर आँसू बहने लगे। रोते-रोते बोली—बेटा ! तूने बुरा किया। यह तुझे चाहिए न था। गरीब लड़कीका दिल टूट गया है। जबसे तेरा पत्र गया है, दिन-रात रोती रहती है। उसके मामाने एक वर ठीक किया है, मगर वह कहती है, मेरा ब्याह हो चुका। हिन्दूकी लड़की हूँ, दूसरा ब्याह न करूँगी। मगर उसका मामा ब्याह करनेपर तुला हुआ है। भगवान् जाने ! क्या हो, क्या न हो ! मगर तूने बुरा किया। अब भी कुछ हो सके, तो कर ले, वरना मैं कुछ खा मरूँगी। हाय बेटा, तूने इतना भी न सोचा कि यह मेरी मां है।

वह फूट-फूटकर रोने लगी। वह रात जिस तरह मैंने गुज़ारी है, यह मैं ही जानता हूँ। दूसरे दिन मैं होशियारपुरकी गाड़ीमें बैठ गया। मैंने फैसला कर लिया कि जाते ही शिवाँके पाँव पकड़ लूँगा। कहूँगा तू मेरी मां है, मुझे माफ़ कर या सज़ा दे। परन्तु वहाँ पहुँचा, तो द्वारपर ब्याहके चिह्न दिखाई दिए। मेरा कलेजा काँप गया। पर मैंने फिर भी हिम्मत न हारी, और भागता हुआ अन्दर चला गया। उस समय मुझे जो कोई देखता, वह यही समझता कि यह पागल है। और मैं सच-मुच पागल ही था। मेरी विचार-शक्ति नष्ट हो चुकी थी। मुझे इतना भी मालूम न था कि मैं क्या कर रहा हूँ ? आँगनमें पहुँचा तो शिवाँ सामने आती दिखाई दी। मगर इस दशामें कि उसके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ रही थीं। मुझे देखा, तो उसकी आँखोंसे आगकी ज्वाला निकलने लगी। दाँत पीसती हुई बोली—अब तू यहाँ क्यों आया है ? क्या मेरी बेटाकी हत्या करके भी तुझे सन्तोष नहीं हुआ ?

यह कहकर वह वापस चली गई; मुझे जैसे किसीने काट मार

दिया। जैसे, किसी दैवी शापसे मेरे पाँव ज़मीनमें गड़ गए। घरमें मुहल्ले भरकी स्त्रियाँ जमा थीं, शिवाँकी आवाज़ सुनकर उनमेंसे कुछ बाहर चली आईं। एक-दो मुझे पहचानती थीं। एक बोली—अरे बेटा ! तूने तो अनर्थ किया। यह लड़की न थी, हीरा थी। इसे ठुकरा कर तेरा भी भला न होगा। ग़रीबने ज़हर खा लिया।

मैंने कलेजा थाम लिया। इतनेमें दूसरी स्त्री बोली—वह तो सती थी, सती। रातको न्याह था, पहले ही ज़हर खा लिया।

तीसरी—शायद बच जाए।

मुझे कुछ आशा हो गई।

दूसरी (सिर हिलाकर)—अब क्या बचेगी बहन। अब तो डॉक्टर भी जवाब दे गया।

मेरा दिल फिर बैठ गया।

तीसरी—डॉक्टर कोई परमेश्वर थोड़ा ही है। परमेश्वर चाहे तो अब भी बचा ले। वह चाहे तो मुर्दा जी उठे।

चौथी—इसमें क्या शक है। वह सब कुछ कर सकता है। परमात्मा करे, बच ही जाए। ग़रीबने दुनियाका देखा ही क्या है ?

पाँचवीं—(रोकर) कल मैं सारा दिन पास बैठी रही, मुझसे ज़िक्र भी नहीं किया। हाँ चुप थी। अब मालूम हुआ, उसके मनमें मौत बस चुकी थी। क्या बोलती और क्या बताती।

दूसरी—उदास तो उसी दिनसे थी, जिस दिनसे (मेरी तरफ़ धृष्टतासे इशारा करके) इसका ख़त आया था। उस दिनके बाद उसके मुँहपर किसीने रौनक़ नहीं देखी। सदा चुप चुप रही। सदा मनको घुन लगा रहा।

तीसरी—क्यों बेटा, इसमें क्या कीड़े पड़े थे, जो तूने मँगनी तुड़ा ली ? ऐसी लड़की तो हमारे सारे शहरमें न होगी । उसे पाकर तेरी किसमत जाग उठती ।

चौथी—(घृणासे मुँह फेर कर) बहन ! तुम भी किससे बातें करती हो । ऐसे आदमीको तो मुँह न लगाना चाहिए । आदमी काहेको है, राजस है । बल्कि उस से भी बुरा ।

पहली—(ठण्डी साँस भर कर) वाह कमला ! तू भी गई । अभी तेरी उमर ही क्या थी ? दुनियामें आई थी, कुछ दिन तो दुनिया की बहार भी देखती ।

म आवाक् खड़ा था । क्या कहता, क्या न कहता ? अपने आपको धिक्कार रहा था । इतनेमें एक लड़की अन्दरसे दौड़ती हुई आई, और मुझसे बोली—जल्दी चलो, तुम्हें बुला रहे हैं ।

मैं भागता हुआ अन्दर चला गया । वह ज़मीनपर पड़ी तड़प रही थी । इस समय भी वह कैसी सुन्दरी, कैसी मोहिनी थी । ऐसा मालूम होता था, जैसे किसी निर्दयाने किसी फूलको तोड़कर भूमिपर पटक दिया है । उसने मेरी तरफ़ एक बार देखा, और फिर आँखें बन्द कर लीं । उस अन्तिम दृष्टिमें जो प्यार, जो अभिमान, जो दुख जो उलहना भरा था, उसे मैं आजतक नहीं भूल सका ।

उसकी माने रोकर कहा—बेटी कमला ! (घबराकर जल्दीसे) श्री बेटी कमला ! देख कौन आया है ?

मगर कमला ने जवाब न दिया ।

स्त्रियोंने जन्दीसे उसके हाथपर आटेका दीपक रख दिया ।

तो क्या सचमुच उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई ? इतनी जल्दी !

इतनी छोटी उम्रमें ! उसकी मांका हृदय-वेधक विलाप वायुमण्डलमें गूँजने लगा, स्त्रियाँ फूट-फूटकर रोने लगीं ।

जब मैं बाहर निकला तो आसमान चक्कर खा रहा था, ज़मीन घूम रही थी । मेरे पाँवतले भूमि न थी । हृदयके अन्दर आग लगी हुई थी । इस घटनाको पाँच साल बीत चुके हैं, वह आग उसी तरह सुलग रही है । न दिनको चैन आता है, न रातको आराम मिलता है । रातको ऐसा मालूम होता है, मानो कोई कन्धा पकड़कर हिला रहा है । जागता हूँ, तो कोई कमरेमें सिसकियाँ भरता हुआ मालूम होता है । सोता हूँ, तो सुपनेमें भयानक शक्रेँ देखकर चौंक उठता हूँ । उस समय मैं अपने आपमें नहीं रहता । मेरी गगन-भेदी चीखोंसे सारे मुहल्लेके लोगोंकी नींद हराम हो जाती है । अब मुझे कोई किराएपर मकान भी नहीं देता । कहते हैं, कौन मुहल्ले-भरसे लड़ाई मोल ले । तुम पर तो रातको भूत सवार हो जाता है । बड़ी मुश्किलसे शहर के बाहर एक मकान मिला है । उसीमें अपनी मांके साथ अपने दुःखमय जीवनके दिन काट रहा हूँ । मगर आह ! वह उसकी अन्तिम प्रेमपूर्ण दृष्टि, वह उसकी जवानी और सुन्दरताकी मौत एक पलके लिए भी नहीं भूलती । कैसी आनवाली थी । उसने मुझे देखा नहीं था, मुझसे बातचीत नहीं की थी, न उसका मुझसे पत्र-व्यवहार था । केवल नामका सम्बन्ध था; उसीपर निछावर हो गई । वह इस स्वार्थमय संसारकी लड़की न थी, कोई सनातन समयकी सती थी । आज भी उसके जीवनके अन्तिम क्षण मेरी आँखोंके सामने फिर रहे हैं; वही घर, वही आँगन, वही स्त्रियोंसे भरा हुआ कमरा, वही उसमें लेटी हुई स्वर्गकी देवी, जो मुझे देखे बिना मरना भी न चाहती थी । हाय शोक ! मैंने क्या कर दिया । आज पूरे पाँच सालसे उसे याद कर-करके रो रहा हूँ । मगर न वह भूलती है, न मौत आती है, जो इस जीवनका अन्त हो । इसी लिए मैले कपड़े पहनता हूँ, गन्दा खाना खाता हूँ, अपने

आपको अपनी और दूसरोंकी आँखोंमे गिराता हूँ कि शायद इसी तरह मेरे पापका प्रायश्चित्त हो जाए ।

यह कहते-कहते उनकी आँखोंसे आँसू बहने लगे । मेरी ज़बानसे एक भी शब्द न निकला; हाँ हृदयमें आग-सी लग गई । थोड़ी देर बाद वह उठ कर मेरा जूता ले आए, और मेरे सामने रखकर बोले—चलिए, व्याख्यानका समय हो गया है ।

मगर मुझे जूता पहननेका होश न था ।

साइकिलकी सवारी

१

भगवान ही जानता है, जब मैं किसीको साइकिलकी सवारी करते या हारमोनियम बजाते देखता हूँ तो मुझे अपने ऊपर कैसी दया आती है। सोचता हूँ, भगवानने ये दोनों विद्यायें भी खूब बनाई हैं। एकसे समय बचता है, दूसरीसे समय कटता है। मगर तमाशा देखिए, हमारे प्रारब्धमें बसिबी सदीकी ये दोनों विद्याएँ नहीं हैं। न साइकिल चला सकते हैं, न बाजा बजा सकते हैं। पता नहीं कबसे यह धारणा हमारे मनमें बैठ गई है कि हम सब कुछ कर सकते हैं, मगर ये दोनों काम नहीं कर सकते। भगवानने यह दोनों चीजें दुनिया के लिए बनाई हैं, हमारे लिए नहीं बनाई।

शायद १९३२ की बात है। कि बैठे बैठे खयाल आया, चलो साइकिल चलाना सीख लें। और इसकी शुरूआत यों हुई कि हमारे लड़केने चुप-चुपातेमें यह विद्या सीख ली, और हमारे सामनेसे सवार होकर निकलने लगा। अब आपसे क्या कहें कि लज्जा और घृणाके कैसे कैसे खयाल हमारे मनमें उठे हैं। सोचा, भई, क्या हमी ज़माने भरमें फिसड्डी रह गए हैं? सारी दुनिया चलाती है, ज़रा ज़रासे छोकरे

चलाते हैं, मूर्ख और गँवार चलाते हैं। हम तो परमात्मा की कृपासे फिर भी पढ़े-लिखे हैं। क्या हमीं नहीं चला सकेंगे? आखिर इसमें मुश्किल क्या है? क्रुद्धकर चढ़ गए और ताबड़-तोड़ पाँव मारने लगे। और जब देखा कि कोई राहमें खड़ा है, तो टन-टन करके घंटी बजा दी। न हटा तो क्रोध-पूर्ण आँखोंसे उसकी तरफ़ देखते हुए पाससे निकल गए। बस, यही तो सारा गुर है इस लोहेके घोड़ेकी सवारीका। अब ऐसा मालूम हुआ कि हम 'बे फ़ज़ूल' मरे जाते थे, और तिलको ताड़ समझे बैठे थे। अब सोचा, हम भी कुछ ही दिनोंमें सीख लेंगे। बस जनाब ! हमने निश्चय कर लिया कि चाहे जो हो जाए; परवा नहीं। सीखेंगे और यार दोस्तों को हैरान कर देंगे।

दूसरे दिन हमने अपने फटे-पुराने कपड़े तलाश किए, और उन्हें ले जाकर श्रीमतीजीके सामने पटक दिया कि ज़रा मरम्मत तो कर दो।

श्रीमतीजीने हमारी तरफ़ अचरज-भरी दृष्टिसे देखा और कहा,—इन कपड़ोंमें अब जान ही कहाँ है, जो मरम्मत करूँ। ये तो फेंक दिए थे। आप कहाँसे उठे लाए ? वहीं जाकर डाल आइए।

हमने मुस्कराकर श्रीमतीजीकी तरफ़ देखा। इसका मतलब यह था कि तुम्हें क्या मालूम, हमारे क्या क्या इरादे हैं। मुँहसे कहा,—तुम हर समय बहस न किया करो। आखिर मैं इन्हें ढूँढ़-ढाँढ़ कर लाया हूँ तो ऐसे ही तो नहीं उठा लाया। कृपा करके इनकी मरम्मत कर डालो जल्दीसे !

मगर श्रीमती बोली—पहले बताओ इनका क्या बनेगा ?

हम चाहते थे, घरमें किसीको कानोंकान खबर न हो, और हम साइकिल-सवार बन जाएं। और इसके बाद जब इस विद्याके पंडित हो जाएं तो एक दिन जहाँगीरके मक़बरेको जानेका निश्चय करें। धरवालोंको ताँगेमें बिठा दें, और कहें, तुम चलो, हम दूसरे ताँगेमें आते हैं। और जब वे चले जाएं तो साइकिल पर सवार होकर उनको

रास्तेमें जा लें। हमें साइकिलपर सवार देखकर उन लोगोंकी क्या हालत होगी ! हैरान हो जाएंगे; दंग रह जाएंगे; आँखें मल-मल कर देखेंगे कि कहीं कोई और तो नहीं है ! मगर हम ऐसा ज़ाहिर करेंगे जैसे कुछ मालूम ही नहीं है, जैसे यह सवारी हमारे लिए मामूली बात है।

मगर श्रीमतीजीने कहा—पहले बताओ, इनका क्या बनेगा ?

भूक मारकर बताना पड़ा कि रोज़-रोज़का ताँगेका खर्च मोरे डालता है। साइकिल चलाना सीखेंगे, और पैसे बचाएंगे।

श्रीमतीजीने बच्चेको सुलाते हुए हमारी तरफ़ देखा और मुस्करा कर बोलीं—मुझे तो आशा नहीं कि आपसे यह बेल मँटे चढ़ सके। खैर कोशिश कर देखिए। मगर इन कपड़ोंका क्या करोगे ?

हमने ज़रा रोबसे कहा—आखिर बाइसिकिलसे एक-दो बार गिरेंगे या नहीं ? और गिरनेसे कपड़े फटेंगे या नहीं ? जो जाहिल हैं वे नए कपड़ोंका नुकसान कर बैठते हैं। जो बुद्धिमान हैं वे पुराने कपड़ोंसे काम चलाते हैं। और हमारा खयाल है, हम समझदार हैं।

मालूम होता है, हमारी इस युक्तिका जवाब हमारी स्त्रीके पास कोई न था, क्योंकि उन्होंने हमारी बातका जवाब न दिया, और उसी समय मशीन मँगवाकर उन कपड़ोंकी मरम्मत शुरू कर दी।

इधर हमने बाज़ार जाकर जैम्बकके दो डिब्बे ख़रीद लिए कि चोट लगने पर उसका उसी समय इलाज किया जा सके। इसके बाद बाहर जाकर एक खुला भैदाने तलाश किया, ताकि दूसरे दिनसे साइकिल सवारिका सबक़ शुरू किया जा सके।

२

अब हमारे सामने यह सवाल आया कि अपना उस्ताद किसे बनाएँ ? पहले तो यह सोचा कि बिना उस्तादके सीखो। हमोर लड़केने क्या

किसीकी शागिर्दी की थी ? कहता था, मैंने तो ऐसे ही सीख लिया । एक बार गिरा, दो बार गिरा, तीसरी बार गिरनेकी नौबत ही नहीं आई । मगर फिर सोचा कि वह लौंडा है हम तो लौंडे नहीं हैं । आदमी जो काम सीखना चाहे, कायदेसे सीखे, नहीं तो नुक़सान उठाता है और दुनिया उसपर हँसती है । इसलिए यह तो निश्चय कर लिया कि किसीको उस्ताद बनाएँ । मगर यह निश्चय न कर सके कि किसे बनाएँ ? आखिर हमारा उस्ताद हर ऐरा गैरा नत्थू खैरा तो नहीं बन सकता । इसी उधेड़बुनमें बैठे थे कि तिवारी लक्ष्मीनारायणा आ गए और बोले—क्यों भाई ! हो जाए एक बाज़ी शतरंजकी । ज़रा आवाज़ दो लड़केको । शतरंज और मुहरे उठा लाए । आज हम तुम्हें हराएंगे ।

हमने सिर हिलाकर जवाब दिया—नहीं साहब ! आज तो जी नहीं चाहता । आज नहीं खेलेंगे हम ।

तिवारीने अपने घुटे हुए सिरसे टोपी उतारकर हाथमें ले ली और चोटीपर हाथ फेरकर बोले—हम तो इतनी दूरसे चलकर आए हैं, कि एक दो बाज़ियाँ खेलेंगे, तुमने कह दिया जी नहीं चाहता ।

हमने कहा—अगर जी न चाहे तो कोई क्या करे ?

यह कहते कहते हमारा गला भर आया । तिवारीजीका दिल पसीज गया । हमारे पास बैठकर बोले—अरे भाई ! मामला क्या है ? घरवालीसे झगड़ा तो नहीं हो गया ?

हमने कहा—तिवारी भैया ! क्या कहें ? सोचा था, लाओ, साइकिलकी सवारी ही सीख लें । मगर अब कोई ऐसा आदमी नहीं दिखाई देता, जो हमारी मदद करे । बताओ, है कोई ऐसा आदमी तुम्हारे ख़यालमें, जो हमारा उस्ताद बनने के योग्य हो ?

तिवारीजीने हमारी तरफ़ बेबसीकी आँखोंसे ऐसे देखा, मानो हमको कोई ख़ज़ाना मिल रहा है, और वे ख़ाली हाथ रहे जाते हैं । बोले—

मेरी मानो तो यह रोग न पालो । अब इस उम्रमें साइकिल पर चढ़ोगे ? और फिर यह भी कोई सवारियोंमें सवारी है कि डंडेपर उकड़ूँ बैठे हैं, और पाँव चला रहे हैं । जो देखे उसे हँसी आए । अजी लानत भेजो इस ख़याल पर, और आओ एक बाज़ी खेलो । कहने लगे, साइकिल चलाना सीखेंगे ! क्या ताँगे टूट गए हैं ?

मगर हमने भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेली थीं । साफ़ समझ गए कि तिवारी ईश्याकी आगमें फुँका जाता है । हमने मुँह फुलाकर कहा—भई तिवारी ! हम तो ज़रूर सीखेंगे, कोई आदमी बताओ । तिवारी सोचमें पड़ गया । हमने फिर आग्रह किया—भई बताओ भी ।

तिवारी—आदमी तो ऐसा है एक । मगर वह मुफ्त नहीं सिखाएगा । फीस लेगा । दे सकोगे ?

हम—कितने दिनमें सिखा देगा ?

तिवारी—यही दस-बारह दिनमें । और क्या ?

हम—और फीस क्या लेगा हमसे ?

तिवारी—औरोंसे पचीस लेता है । तुमसे बीस ले लेगा हमारी खातिर । इससे कमपर राज़ी न होगा ।

हमने सोचा—दस दिनमें सिखाएगा, और बीस रुपये फीस लेगा । दस दिन—बीस रुपये । बीस रुपये—दस दिन । अर्थात् दो रुपये रोज़ाना, अर्थात् साठ रुपये महीना, और वह भी एक-दो धंटके लिए । ऐसी तीन-चार ड्यूटियाँ मिल जायँ तो ढाई-तीन सौ रुपया महीना हो गया । हमने तिवारीजीसे तो इतना ही कहा कि जाकर मामला तय कर आओ । मगर जीमें खुश हो रहे थे कि साइकिल चलाना आ जाए तो एक ट्रेनिंग स्कूल खोल दें, और तीन चार सौ रुपया महीना कमाने लगे । मौज हो जाए; आमदनी की एक और मद खुल जाए ।

इधर तिवारीजी मामला तय करने गए, उधर हमने यह शुभ समाचार जाकर श्रीमतीजीको सुना दिया कि कुछ दिनोंके बाद हम एक ऐसा स्कूल खोलनेवाले हैं जिसमें तीन-चार सौ रुपया महीनेकी आमदनी होगी। और हम उस स्कूलमें लड़कों को साइकिल चलाना सिखाएंगे ?

श्रीमतीजी बोलीं—तुम्हारी इतनी उमर हो गई, मगर यह मुआओछापन न गया। पहले आप तो सीख लो, फिर स्कूल भी खोल लेना। मैं तो समझती हूँ कि तुम सीख ही न सकोगे; दूसरोंको सिखाना तो दूरकी बात है। फिर स्कूल कब खुलेगा, और आमदनी कब होगी ?

हमने बिगड़कर कहा—यह तुममें बड़ी बुरी आदत है कि हर काममें टोक देती हो। हमसे बड़े बड़े सीख रह हैं तो हम क्यों न सीख सकेंगे ? और पहले तो शायद सीखते, शायद न सीखते, मगर अब जब तुमने टोका है तो जरूर सीखेंगे। तुम भी क्या कहोगी !

श्रीमतीजी बोलीं—मैं तो कहती हूँ तुम हवाई जहाज चलाओ; यह बाइसिकल क्या चीज़ है ? पर तुम्हारे स्वभावसे डर लगता है। एक बार गिरोगे तो देख लेना, बाइसिकल वहीं फेंक-फाँककर चले आओगे। फिर धीरेसे यह भी कह दिया—भगवान् किसीको स्त्री न बनाए। बात करना भी पाप हो गया—अब हम हर काममें टोकनेवाले हो गए ! हमें क्या पड़ी है ? सीखोगे, अपने लिए; न सीखोगे, अपने लिए। हमें क्या मतलब ? आमदनी किसे अखरती है ? और पतिकी इज्जत कौन नहीं चाहता ?

इतनेमें तिवारीजीने बाहरसे आवाज़ दी। हमने जाकर देखा, उस्ताद साहब खड़े हैं। काला रंग, नाटा कद, भड़ी-सी शक्ल-सूरत, मोटी गर्दन, गलेमें काला तागा, मैली लुंगी, पाँवमें कसूरी जूता, जो पहलवान लोग पहनते हैं, छोटी छोटी आँखें। पहले तो मनमें आया, कह दें हमें यह उस्ताद पसन्द नहीं। पर फिर सोचा, हमें साइकिल चलाना सीखना है।

हम इनको किसी फ़िल्ममें हीरो थोड़ा बनाना है। यह सोचकर हमने शरीफ़ विद्यार्थियोंके समान श्रद्धा भावसे हाथ बाँधकर प्रणाम किया, और चुपचाप खड़े हो गए। उस्तादने हमें घूरकर देखा।

तिवारीजी—यह तो बीसपर मानते ही न थे। बड़ी मुश्किलसे मनाया है। पर पेशगी लेंगे। कहते हैं, पीछे कोई नहीं देता।

हम—अरे भई। हम देंगे। दुनिया लाख बुरी है, मगर फिर भी भले आदमियोंसे ख़ाली तो नहीं है। यह बीस रुपया तो चीज़ ही क्या है? हम अपना धर्म लाखोंके लिए भी न गँवाएँ। बस, एक बार हमें साइकिल चलाना सिखा दें, फिर देखें हम इनकी क्या क्या सेवा करते हैं। जो उस्ताद की सेवा न करे, उसका भला कैसे होगा?

मगर उस्ताद साहब नहीं माने, बोले—फ़ीस पहले लेंगे।

हम—और अगर आपने नहीं सिखाया, तो क्या होगा?

उस्ताद—नहीं सिखाया तो फ़ीस लौटा देंगे। झगड़ा ख़त्म।

हम—और अगर फ़ीस भी नहीं लौटाई तो?

उस्ताद—अब इस 'तो' का जवाब तो मेरे पास है नहीं, मगर इतना कह सकता हूँ कि ऐसी बेईमानियाँ मुझे बदनाम न कर देंगी?

इसपर तिवारीजीने कहा—अजी साहब! क्या यह तिवारी मर गया है? शहरमें रहना हराम कर दूँ, बाज़ारमें निकलना बन्द कर दूँ। फ़ीस लेकर काम न करना कोई हँसी-खेल है?

जब हमें विश्वास हो गया कि इसमें कोई धोखा नहीं है, तो हमने फ़ीसके रुपये लाकर उस्तादकी भेंट कर दिए और कहा—उस्ताद! कल सवेरे सवेरे ही आ जाना। हम तैयार रहेंगे। हमने इस कामके लिए कपड़े भी बनवा लिए हैं, और अगर गिर पड़े तो घावपर

लगानेके लिए जैम्ब्रक भी खरीद लिया है । और हाँ, हमारे पड़ोसमें जो मिस्त्री रहता है, उससे साइकिल भी माँग लिया है । आप सवेरे ही चले आएँ तो हरिका नाम लेकर शुरू कर दें । क्योंकि जो काम हरिका नाम लेकर शुरू किया जाता है, उसमें भगवान बरकत देता है ।

तिवारीजी और उस्तादने हमें हर तरहसे तसल्ली दी, और चले गए । इतनेमें हमें याद आया कि एक बात कहनी भूल गए । नंगे पाँव भागे, और उन्हें बाज़ारमें जा लिया । वे हैरान थे । हमने हाँफते हाँफते कहा—उस्ताद ! हम शहरके निकट नहीं सीखेंगे । शहरके उधर जो बाग़ है, वहाँ एक तो ज़मीन नरम है, चोट कम लगती है । दूसरे वहाँ कोई देखता नहीं है । हम इन देखनेवालोंसे डरते हैं ।

३

अब रातको आरामकी नींद कहाँ ? बार बार चौंकते थे और देखते थे कि कहीं सूरज तो नहीं निकल आया । ज़रा भी ऊँघ जाते, तो साइकिलके सुपने आते थे । एक बार देखा कि हम साइकिलसे गिरकर ज़ख्मी हो गए हैं, अस्पतालमें एक अँगरेज़ हमारा आपरेशन कर रहा है और हमारी स्त्री रो रोकर कह रही है कि मैं विधवा हो गई । दूसरी बार देखा कि हम ज़मीनपर खड़े हैं, और हमारा साइकिल आसमानपर चल रहा है । फिर ऐसा मालूम हुआ कि हमारे उस्तादने हमें गोदमें उठाकर उछाल दिया । दूसरे क्षणमें देखा, तो हम साइकिलपर सवार हैं, साइकिल आपसे आप हवामें उड़ा जा रहा है और लोग हमारी तरफ़ आँखें फाड़ फाड़कर देख रहे हैं । एकाएका एक शैतानने आकर हमारे कंधेपर हाथ रख दिया, और हम ज़मीनपर गिर पड़े । इतनेमें हमारी आँख खुल गई—देखा, यह सब सुपना था । हम चारपाईपर हैं, और हमारी स्त्री हमारा कंधा हिला हिलाकर जगा रही है ।

उठकर देखा, तो दिन निकल आया था। जल्दीसे जाकर वे पुराने कपड़े पहन लिए, जैम्बकका डिब्बा हाथमें ले लिया और नौकरको भेजकर मिस्री साहबसे साइकिल मँगवा लिया। इसी समय उस्ताद भी आ गए, और हम हरि का नाम लेकर बाग़की तरफ़ चल दिए। लेकिन अभी घरसे निकले ही थे कि बिल्ली रस्ता काट गई, और एक लड़केने छींक दिया। क्या कहें, हमें कैसा क्रोध आया है उस नामुराद बिल्लीपर और उस शैतान लड़केपर। मगर क्या करते ? दाँत पीसकर रह गए। एक बार फिर भगवान्‌का पावन नाम लिया, और आगे बढ़े। पर बाज़ारमें पहुँचकर देखा कि हर आदमी जो हमारी तरफ़ देखता है, मुस्कराता है। अब हम हैरान थे कि बात क्या है ? और यह लोग मुस्कराते क्यों है ? एकाएक हमने देखा कि हमने जल्दी और घबराहटमें पाजामा और अचकन दोनों उलटे पहन लिए हैं, और लोग इसीपर हँस रहे हैं। सिर मंडाते ही आले पड़े। पहला कदम ही ग़लत।

हमने उस्तादसे माफ़ी माँगी, और घर लौट आए। अर्थात् पहला दिन व्यर्थ गया। दो रुपये जाया हुए।

दूसरे दिन निकले तो हमारे घरके पास जो लाला साहब रहते हैं, वे सामने आ गए और मुस्कराकर बोले — कहिए, कहाँ जा रहे हैं ?

यह लाला साहब यों तो बहुत भले आदमी हैं, लेकिन इनकी एक आदत बहुत बुरी है। जिससे मिलते हैं उसीसे पूछते हैं, कहाँ चले ? कई बार समझाया है कि लालाजी जब कोई काम पर निकले और उससे 'कहाँ' पूछा जाए तो वह काम कभी नहीं होता, और जिसका काम बिगड़ जाता है वह 'कहाँ' पूछनेवालेको गालियाँ देता है। मगर लाला साहबपर ज़रा असर नहीं होता। इस समय हमने उनसे बचनेकी कितनी कोशिश की है, किस किस तरफ़ मुँह मोड़ा है, किस किस तरह बचे हैं, मगर उनकी 'कहाँ' की तोपसे कौन बच सकता है ? महात्माजीने सामने आकर गोला दाग़ ही तो दिया।

हमने जल-भुन कर जवाब दिया—नरकको जा रहे हैं ! आप भी चलेंगे क्या ? बड़ी अच्छी जगह है ।

लाला साहब—अरे ! मैंने तो केवल यह पूछा था कि आप कहाँ जा रहे हैं ?

हम—और हमने प्रार्थना की है कि नरकको जा रहे हैं । दो आदमियोंकी जगह खाली है । अगर आप न पूछते तो आपका क्या बिगड़ जाता ? दुनियामें कौन-सी कमी रह जाती ?

लाला—भगवान् जानता है, मुझे यह मालूम न था कि आप किसी ज़रूरी कामके लिए जा रहे हैं !

हम—गोया हम बेकार घूमा करते हैं । गोया हमारा दिमाग़ खराब है । गोया हम गधे हैं ।

लाला—अजी जनाब ! आप भी क्या बातें करते हैं ? मैं आपकी शानमें ऐसी गुस्ताखी कर सकता हूँ ? मेरा मतलब यह था—

हम—कि हमसे ' कहाँ ' न पूछा तो प्रलय हो जाएगा । ज़रा सोचिए, आपसे कितनी बार हमने हाथ बांध बांध कर नम्र निवेदन किया है कि हमें इस ' कहाँ ' से डर लगता है । मगर आपको यह ऐसा रोग लगा है कि पीछा ही नहीं छोड़ता । आज ही साइकिल चलाना सीखने जा रहे थे । यह देखिए, पुराने कपड़े और यह देखिए जैम्बकका डिब्बा और ये उस्ताद साहब और यह साइकिल । लेकिन इस ' कहाँ ' ने आजका दिन भी खराब कर दिया । आपने तो मुस्कराकर पूछ लिया— कहाँ ? हमारा दो रुपयेका खून हो गया । आपको क्या मालूम, हमने उस्ताद साहबको दस दिन के बीस रुपये दिए हैं ।

उधर उस्ताद साहबने साइकिलकी घंटी बजाकर हमें अपने पास बुलाया और बोले—मैं एक गिलास लस्सी पी लूँ । आप ज़रा साइकिलको थामिए दो मिनट के लिए ।

लाला साहबने यह अवसर पाया, तो प्राण लेकर भाग निकले। वरना हम उनसे उस दिन कागज़ लिखा लेते कि अब फिर किसीसे 'कहाँ' नहीं पूछेंगे।

४

उस्ताद साहब जब लस्सी पीने लगे तो हमने साइकिलके पुरजोंकी ऊपर-नीचेसे परीक्षा शुरू कर दी, और लालाजीसे जो बद-मज़गी हो गई थी उसे मिटानेके लिए मुँहमें गुनगुनाने लगे !

भगवान्ने साइकिल भी अजब चीज़ बनाई।

फिर कुछ ज़ीमें जो आया तो उसका हैंडल पकड़कर ज़रा चलने लगे। मगर दो ही क़दम गए होंगे कि ऐसा मालूम हुआ, जैसे साइकिल हमारे सीनेपर चढ़ा आता है। अब तो हमें पूरा विश्वास हो गया कि यह सब ज़ालिम लालाजीके 'कहाँ' की तासीर है, वरना बेजान साइकिलमें यह हिम्मत कहाँ कि हम ज़से शेरमर्दपर धावा बोल दे। इस समय हमारे सामने यह गम्भीर प्रश्न था कि क्या करना चाहिए ? युद्ध-क्षेत्रमें दौट रहे या हट जाएं ? सोच-विचारके बाद यही निश्चय हुआ कि यह लोहेका घोड़ा और फिर लालाजीका 'कहाँ' इसके साथ ! इसके सामने हम क्या चीज़ हैं, बड़े बड़े वीर योद्धा भी नहीं ठहर सकते। बल्कि हमारा तो ख़याल है अगर अर्जुन और भीम होते तो वह भी भाग निकलते। इसलिए हमने साइकिल छोड़ दिया, और भगौड़े सिपाही बनकर मुड़ गए। पर दूसरे क्षणमें साइकिल अपने पूरे ज़ोरसे हमारे पाँवपर गिर गया और हमारी राम-दुहाई बाज़ारके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक गूँजने लगी। उस्तादजी लस्सी छोड़कर दौड़े आए और दयावान् लोग भी जमा हो गए। सबने मिल-मिलाकर हमारा पाँव साइकिलसे निकाला। भगवान्के एक भक्तने जैम्बकका डिब्बा भी उठाकर हमारे

हाथमें दे दिया । दूसरेने हमारी बगलोंमें हाथ डालकर हमें सँभाला और सहानुभूतिसे पूछा—चोट तो नहीं आई ? ज़रा दो-चार क़दम चलिए । नहीं लहू जम जाएगा तो बड़ी दिक्कत होगी ।

हम बेशर्मोंके समान खड़े हो गए, और हमने अपने शरीरका सारा भार पाँवपर डालकर देखा कि पाँव जोर खाता हैं या नहीं । उस्तादने साइकिलको अच्छी तरह देखकर कहा-- यह तो टूट गया, बनवाना पड़ेगा ।

और आजका दिन भी गया ।

और यह हम पहलेसे ही जानते थे । यह लालार्जिके ख़ूनी 'कहाँ' की तासीर थी । इस तरह दूसरे दिन हम और हमारा साइकिल अपने घरसे थोड़ी दूरीपर ज़ख़मी हो गए । हम लँगड़ाते हुए घर लौट आए, साइकिलको ठोंक पीटकर ठीक करनेके लिए मिस्त्रीकी दुकानपर भेज दिया, और तीसरे दिनका इंतज़ार करने लगे ।

मगर हमारे वीर हृदयका साहस और धीरज देखिए—अब भी मैदानमें डटे रहे । कई बार गिरे, कई बार शहीद हुए, घुटने तुड़वाए, हाथपाँव छिलवाए, कपड़े फड़वाए । पर जनाब, क्या मजाल, जो जी छूट जाए । आठ-नौ दिनमें साइकिल चलाना सीख गए । लेकिन अभी तक उसपर चढ़ना नहीं आता था । कोई परोपकारी जीव सहारा देकर चढ़ा देता तो फिर लिए चले जाते थे । हमारे आनन्दकी कोई सीमा न थी । सोचते थे, मार लिया मैदान हमने ! दो-चार दिनमें पूरे मास्टर बन जायँगे, इसके बाद पहले स्कूल के मास्टर, फिर कालिज के प्रोफ़ेसर और इसके बाद प्रिंसिपल मोटर ट्रेनिंग कॉलेज, और तीन-चार सौ रुपया महीना । तिवारीजी देखेंगे, और ईर्ष्यासे जलेंगे, और हम मुस्कराएँगे । शहरमें इज्ज़त भी बढ़ जाएगी ।

उस दिन उस्तादने हमें साइकिलपर चढ़ा दिया और सड़कपर छोड़ दिया कि लिए जाओ, अब तुम सीख गए ।

अब हम साइकिल चला रहे थे, और दिल ही दिलमें फूले न समाते थे। कि आखिर हमने सिंहगढ़को जीत ही लिया। मगर हाल यह था कि कोई आदमी दो सौ गजके फ़ासिलेपर भी होता तो हम गला फाड़ फाड़कर चिल्लाना शुरू कर देते—साहब ! ज़रा बाईं तरफ़ हट जाइएगा। हम नए सवार हैं, और साइकिल हमारे बसमें नहीं है। दूर फ़ासिलेपर कोई गाड़ी दिखाई देती, और हमारे प्राण सूख जाते। कभी कभी ऐसा खयाल आता कि यह गाड़ी सिर्फ़ हमें अपनी लपेटमें लेनेके लिए आ रही है। उस समय हमारे मनकी जो दशा होती, उसे हमारा परमेश्वर ही जानता है। जब गाड़ी निकल जाती, तब कहीं जाकर हमारी जानमें जान आती।

सहसा सामनेसे तिवारीजी आते दिखाई दिए। हमने उन्हें भी दूरसे ही अल्टीमेटम दे दिया कि ओ तिवारी ! बाईं तरफ़ हो जाओ, वरना साइकिल तुम्हारे ऊपर चढ़ा देंगे। तुमसे बड़ा मजी और कौन मिलेगा ?

तिवारीजीने अपनी छोटी छोटी आँखोंसे हमारी तरफ़ देखा और मुस्कराकर कहा—ज़रा एक बात तो सुनते जाओ।

हमने एक बार हैडलकी तरफ़ दूसरी बार तिवारीकी तरफ़ देखकर जवाब दिया—इस समय कैसे बात सुन सकते हैं ? देखते नहीं हो, साइकिलपर सवार हैं। कहने लगे, एक बात सुनते जाओ। अरे भाई ! साइकिल चला रहे हैं, साइकिल। बात कैसे सुनें ?

तिवारी—तो क्या जो साइकिल चलाते हैं, वे किसीकी बात नहीं सुनते ? बड़ी ज़रूरी बात है। ज़रा उतर आओ। फिर चढ़ जाना।

हमने लड़खड़ाते हुए साइकिलको सँभालते हुए जवाब दिया—उतर आएँ, तो फिर चढ़ाएगा कौन ? अभी चलाना सीखा है, चढ़ना नहीं सीखा। चढ़ना कल सीखेंगे।

तिवारीजी चिल्लाते ही रह गए, हम आगे निकल गए। इस समय हमें

उनकी बेवसी पर जो मज़ा आया है, उसे क्या बयान करें ? जी चाहता था, एक बार लौटकर उनका मुँह फिर देख आएँ ।

इतनेमें सामनेसे एक ताँगा आता नज़र आया । हमने उसे भी दूरसे ही डाँट दिया—बाईं तरफ़ रहना भाई ! अभी नया चलाना सीखा है । नौ सिखिए हैं हम ।

ताँगा बाईं तरफ़ हो गया । हम अपने रास्ते चले जा रहे थे । एकाएक पता नहीं, घोड़ा भड़क उठा, या ताँगेवालेको शरारत सूझी । जो भी हो, ताँगा हमारे सामने आ गया । हमारे हाथ-पाँव फूल गए । ज़रा-सा हैंडल घुमा देते, तो हम दूसरी तरफ़ निकल जाते । मगर बुरा समय आता है, तो बुद्धि पहले भ्रष्ट हो जाती है । उस समय हमें ख़याल ही न आया कि हैंडल घुमाया भी जा सकता है । उस समय तो ऐसा मालूम हुआ कि विधाताने हमारे साइकिलके लिए वही रास्ता नियत कर दिया है, जिसपर ताँगा आ रहा है ।

क्षण-भरमें हमारे जीवनकी सारी घटनाएँ हमारी आँखोंमें फिर गईं, और दूसरे क्षणमें हम और हमारा साइकिल दोनों ताँगेके नीचे थे ।

५

जब होशमें आए तो हम अपने घरमें थे, और हमारी देहपर कितनी ही पट्टियाँ बँधी थीं । हमें होशमें देखकर श्रीमतीजीने कहा—

क्यों ? अब क्या हाल है ? मैं कहती न थी साइकिल चलाना न सीखो । उस समय तो किसीकी सुनते ही न थे । ले लिया न मज़ा ?

हमने सोचा, लाओ सारा इलज़ाम तिवारीजीपर लगा दें, और आप साफ़ बच जाएँ । बोले—यह सब तिवारीजीकी शरारत है ।

श्रीमतीने मुस्कराकर जवाब दिया—यह तो तुम उसको चकमा दो जो कुछ जानता न हो। उस ताँगेपर मैं ही तो बाल-बच्चोंको लेकर घूमने निकली थी, कि चलो सैर भी कर आएँगे और तुम्हें साइकिल चलाते भी देख आएँगे।

मैंने लाजवाब होकर आँखें बन्द कर लीं।

उस दिनके बाद फिर कभी हमने साइकिलको हाथ नहीं लगाया।

दो परमेश्वर

१

संध्याका समय था। एक जोगी बाज़ारसे गुज़र रहा था। दूकानोंके दीपक जल चुके थे और उनके बुझ जानेवाले प्रकाशमें लोगोंके नश्वर चेहरे इस तरह चमक रहे थे, जिस तरह यौवन के चमनेमें रूप जगमगाता है।

सहसा किसी विलास-प्रिय और अमीर आदमीकी रखैल वेश्याने अपना सिर मकानकी खिड़कीसे बाहर निकाला, जोगीके पवित्र वस्त्रपर पानकी पीक थूकी, और मुस्कराने लगी।

जोगीने ऊपर देखा और यह देखकर कि वह स्त्री अपनी मूर्खतापर लज्जित होनेके बदले अभी तक मुस्करा रही है, उसे आश्चर्य हुआ। उसने जोरसे चिल्लाकर कहा—ऐ नादान ! परमेश्वरके पुत्रोंका यों अपमान न कर। उसकी दृष्टिमें तेरा यौवन, और तेरा रूप दोनों निर्मूल हैं और वह शराफ़त की ज़्यादा परवाह करता है।

उस सुन्दरीका लाल चेहरा और भी लाल हो गया। उसने क्रोधसे पीछे मुड़कर अपने यौवनके लोभी, अपने रूप के उपासककी तरफ़

देखा और कहा — तूने सुना ! एक तुच्छ भिखमंगा भरे बाज़ारमें खड़ा मेरे यौवनका तिरस्कार करता है, और मुझे गालियाँ देता है ।

विलासी अमीर जो रमणीके मर जाने, मिट जाने, बरबाद हो जानेवाले रंग-रूपकी मदिराके नशेमें दोनों लोकोंकी तरफ़से अन्धा हो रहा था, लकड़ी लेकर जल्दीसे नीचे उतरा, और ईश्वर-भक्त जोगीपर पिल पड़ा । और उसने अपने हाथों पाँव, और लकड़ीकी पूरी शक्तिसे उसे उसकी ' गुस्ताखी ' के लिए सज़ा दी ।

जोगीका चीत्कार आकाशमें गूँज रहा था; मगर पृथ्वीवालोंके कान इस तरफ़से बिलकुल बन्द थे । जोगी की किसीने मदद न की ।

रातको प्रकृतिका न दिखाई देनेवाला हाथ हिला आर दूसरे दिन सौन्दर्यका अन्धा अपने पाप-के विस्तरेपर मरा पड़ा था ।

२

स्त्रीने हृदयकी हायका यह जीता-जागता चमत्कार देखा, तो उसका खून उसके शरीरमें ठंडा हो गया । वह नंगे सिर नंगे पाँव शहरके बाहर गई, और जोगीके खुरदरे पैरोंपर अपना सुन्दर सिर रखकर रोने लगी ।

जोगीने उसे देखा, और कहा—माई ! उठ । मेरा परमेश्वर अपने किसी प्राणीकी ऐसी बेबसी नहीं देखना चाहता ।

मगर स्त्रीने चरण न छोड़े । वह अब अपने किए पर शरमिन्दा हो रही थी, और रो रही थी, और उसके पश्चात्तापके आँसू जोगीके पाँवपर गिर रहे थे । उसने रुक-रुककर कहा—महाराज ! मैं अन्धी थी, मैंने भूल की, मुझसे पाप हुआ । मुझे गालियाँ दीजिए । मुझे मारिए , मेरी पीठकी खाल उधेड़ दीजिए । मगर मुझे अपने क्रोधकी आगसे बचा लीजिए ।

जोगीने उसके मेरे हुए प्रेमीका सारा समाचार सुना, और फूट-फूटकर रोते हुए कहा—माई ! यह मेरा और तेरा भगड़ा नहीं था, मेरे और तेरे परमेश्वरका भगड़ा था । तेरे परमेश्वरको गुस्सा आया, उसने मुझे मारा । मेरे परमेश्वरको गुस्सा आया, उसने तेरे परमेश्वरको मारा । मेरे परमेश्वरके शस्त्र भारी थे, वह जीत गया; तेरा परमेश्वर निर्बल, और कमजोर था वह हार गया ।

जोगी एकाएक एक तीसरे आदमीकी तरफ मुड़ा और अपने हाथ उसके कन्धोंपर रखकर बोला—तेरा परमेश्वर कौन है ?

वह स्त्री और वह पुरुष दोनों इस सवालपर हैरान थे । वह समझ न सकते थे, कि जोगीका मतलब क्या है ?

जोगी उठा, और उनको इसी हालमें छोड़कर बोले बिना कुटियासे बाहर निकल गया ।

मज़दूर

१

सारा दिन काटन-मिलमें मज़दूरी करनेके बाद, जब कल्लू शामको सात बजे घर पहुँचा, तो सुखिया बुखारमें उसी तरह बेसुध पड़ी थी, जिस तरह वह उसे सवेरे छोड़ गया था । कल्लू थका-माँदा उन्हास आया था, घर आकर और भी उदास हो गया । आज पन्द्रह दिनसे यही हो रहा था । सुखियाका जी कुल्लू भी अच्छा देखता, तो उसका मुरझाया हुआ चेहरा खिल उठता, उसकी थकान उतर जाती । लेकिन सुखिया आज भी अपने फटे पुराने कम्बलोंमें उसी तरह बेहोश पड़ी थी । कल्लूने उसके माथे पर हाथ रखकर देखा और ठंडी आह भरकर ज़मीन पर बैठ गया

थोड़ी देर बाद उसकी विधवा बहन रधिया अपने लड़केको लेकर आई और उसे पुआलपर लिटाकर बोली—भय्या, आज भी उसी तरह पड़ी रही । परमेसर जाने भाग्यमें क्या बदा है ?

कल्लू—तुमने औसध तो पिला दी थी ?

रधिया—औसध कहाँ है ? वह तो रात ही चुक गई थी ।

कल्लू—तो बच्चनलालकी दूकानसे क्यों न ले आई ? क्या इतनी दूर जाते हुए पाँव दुखते थे ?

रधिया रुखाईसे बोली— वह देता नहीं, कहता है पहले पिछले दाम चुका दो, तब और दूँगा ।

कल्लू—तूने कुछ कहा ही न होगा, नहीं वह जरूर दे देता । जबानका बुरा है, मनका बुरा नहीं । उस दिन जाकर मैंने उससे अपने दुःख-दर्दकी दो बातें की थीं, तो रोने लगा था । कहता था—कोई चिन्ता न करो, जब औसधकी जरूरत पड़े, मेरे पास आ जाया करो; मुदा तुम्हें क्या ? तुम समझती हो, तुमने ज़रा खुसामद कर दी, तो तुम्हारी हेटी हो जाएगी, तुम्हारा सिर झुक जाएगा, तुम्हारी इज्जत चली जाएगी । तुममें यह औगुण बुरा ।

रधियाने आँखें नचाकर जवाब दिया—हमसे तो खुसामद नहीं होती उस आदमीकी ! तुम्हारी महरिया बीमार है, तुम जाकर उसके पैरोंपर गिरो । मुदा मुझसे यह न होगा ।

कल्लू यह जवाब सुनकर बोला—रामाके लिए गुड़ लेना हो, तो लालताप्रसादकी दूकापर जाकर घंटों बैठी रहो; मगर सुखियाके लिए औसध लानी हो, तो तुम्हारी इज्जत चली जाती है । इतना भी खयाल नहीं कि भाई सारे सारे दिन करखन्नेमें काम करता है, लाओ उसकी कुछ मदत ही कर दूँ । भाई मजूरी करता है, बहन रानी बनी फिरती है, पर ठीक है, जो तन लागे सो तन जाने । बीमार सुखिया ह, तुम्हें क्या ? तुम ऐस करो, तुम मौज-बहार मनाओ । तुम्हारा रामा राजी रहे । तुम्हें मेरी क्या परवाह और भाभी की क्या चिन्ता ?

कल्लूके हाथमें टीनका एक डिब्बा था, जिसमें वह सुबहको सत्तू रख कर अपने साथ ले जाता था । उसपर एक मैला कपड़ा बँधा था । कल्लू उसे खोलने लगा ।

रधिया बोली—परारथना करो कि रामा भी बीमार हो जाए, तुम्हारी खुसी हो जाएगी !

कल्लू डिब्बेको रखने जा रहा था, बहनकी बात सुनकर वहींसे लौट आया और बोला—देख रधिया, सामके बेला ऐसी बात न कर, नहीं; तो मेरे मुँहसे भी कुछ निकल जाएगा । तू सुखियाको गैर समझती है, मैं रामाको गैर नहीं समझता ।

रधिया—तानोंसे तो कलेजा छेद डालते हो मेरा ।

कल्लू —और तू कौन सरबतकी-सी बातें करती है, कि सुनकर जी खुस हो जाए । जब देखो, लड़नेको तय्यार रहती हो । भाभी बीमार पड़ी है, तुम्हे लड़ाई सूझती है । सारा दिन मजूरी करके आया हूँ, इसपर भी यह गरम-मिजाजी, कि कुछ खाने-पीनेको तो पूछा नहीं, लड़नेको तय्यार हो गई । तू औरत है, या राखस है ?

रधियाने शरमिंदा होकर सिर झुका लिया और सुखियाके सिरपर हाथ फेरने लगी । थोड़ी देर बाद सकुचाती हुई बोली—मुझे उसकी दूकान-पर जाते सरम लगती है । जब दीदे फाड़-फाड़ कर देखता है तो यही जी चाहता है, कि उसका खून पी जाऊँ । मुझे और जहाँ कहो चली जाऊँ; पर उसकी दूकानपर न भेजो । मैं वहाँ न जाऊंगी ।

कल्लू रधियाका मुँह तकने लगा ।

रधिया बोली—भाई, तू मान चाहे न मान, मगर यह बच्चनलाल आदमी नहीं है, इसके मनमें खोट है ।

कल्लू सन्नाटेमें आ गया । बच्चन इतना कमीना है, यह सुनकर उसे ऐसा क्रोध आया कि उसी वक्त जाकर बच्चनलालकी मरम्मत कर दे । उसे मालूम हो जाए—ये गरीब हैं, बेहया नहीं है । लेकिन अपनी दशा देख कर ज़ब्त कर गया । हांडी उबलेगी भी, तो अपना आप जलाएगी

मगर गाँवमें बच्चनलालके सिवा और किसीसे दवा न मिल सकती थी। कल्लू हृदयपर पत्थर की सिल रखे आध घंटे बाद उसी बच्चन-लालकी दूकानपर गया और उसकी सुशामेदें करने लगा। आत्मा-भिमान क्रोधमें आकर लड़नेको तैयार हो गया था, पर ज़रूरतने गला घोट दिया।

२

सुखियाको दवा मिली, पर उससे कुछ लाभ न हुआ, उलटे बीमारी और बढ़ गई। पहले चुपचाप पड़ी रहती थी, आज रह-रह कर कराहने भी लगी। कल्लू और रधिया दोनों देखते थे, और ठंडी आँहें भरते थे। जब सुखिया चुप हो जाती, दोनों लेट जाते; जब कराहने लगती, तो दोनों उठकर बैठ जाते। भोंपड़ेमें रोगकी उदासी छाई हुई थी, जिसे रातके सन्नाटेने और भी भयानक बना दिया था।

रातके दो ढाई बजेका समय था, सुखिया कराह-कराह कर ज़रा चुप हो गई थी। कल्लूने कुप्पीकी मध्यम धुँएँदार रोशनीमें सुखियाके पीले चहरेकी तरफ़ निराश नेत्रोंसे देखा और रधियासे कहा—परमेसर जाने, इसे कितनी तकलीफ़ होती होगी। पन्द्रह दिन तो हो गए होंगे औसध पिलाते।

रधिया—आज सोलहवाँ दिन है भय्या !

कल्लू—बड़ा जालिम बुखार है, अभी उतरता ही नहीं।

रधिया—परमेसरकी किरपा हो तो कल ही उतर जाय।

कल्लू—देखो मूँ कैसा सूख गया है।

रधिया—बुखार उतर जाए, तो फिर ताकत आते देर न लगेगी ! चार दिनमें दौड़ती फिरेगी।

कल्लू—भुके तो अन्देसा है, कि अब यह न बेचगी । जरा सोच, अब तो करवट भी नहीं बदल सकती ।

रधियाने प्रेमसे डाँट कर कहा—जी मत छोटा करो भय्या, औसध देते चलो । राम भला करेगा ।

कल्लू—बच्चनलाल कहता है । दूध पिलाते जाओ । यह नहीं सोचता कि इन गरीबोंके इहाँ दूध कहाँसे आएगा ? सत्ते तक तो मिलता नहीं ।

रधिया—किसीसे करजा ले लो भय्या ।

कल्लू—अब और कौन करजा देगा हमें ? बाल-बाल तो बँधा हुआ ह । जीना होगा, जी जाएगी; मरना होगा, मर जाएगी । पर अब किसीसे करजा तो न माँगा जाएगा । और माँगें भी तो देता कौन है ? कोई एक दिन दे, दो दिन दे । हमारा तो रोज-रोज का यही हाल है । अब तो करजा न माँगूँगा रधिया !

रधिया—करजा न माँगोगे, तो काम कैसे चलेगा ? तलब कब तक मिलेगी तुम्हें ?

कल्लू—तलब तो कल मिल जाएगी; पर उससे क्या होगा ? इधर आएगी, उधर उठ जाएगी । इग्यारा रूपये मिलेंगे, बीससे ज्यादा करजा है । आते ही आते खतम हो जाएँगे । बल्कि आते बादमें हैं, खतम पहले हो जाते हैं । इस पर भी लोग कहते हैं दूध पिलाओ । गंगाका मारग सभी बताते हैं, गंगा जानेका खरचा कोई भी नहीं देता ।

रधिया—खरचा तो भगवान ही दे सकता है, दूसरा कौन दे ?

कल्लू—गरीबोंको भगवान भी नहीं देता रधिया ! वह भी अमीरोंको ही देता है । जिनकी बड़ी बड़ी तनखाहें हैं, उनको हर साल तरक्की मिल जाती है, जो भूखे मरते हैं, उन्हें कोई पूछता भी नहीं । बड़ोंसे अपसर भी डरते हैं, परमेसर भी डराता है । मजूरोंसे कोई भी नहीं डरता । उन्हें हर कोई डरता है ।

सुखिया जोरसे कराहने लगी। दोनों भाई-बहन उठकर उसके सिरहाने जा बैठे।

रधिया (स्नेहके स्वरमें)—क्यों भाभी ! दर्द होता है ?

सुखिया—(कराहकर) उठा ले भगवान ! अब नहीं सहा जाता !

३

प्रभातका समय था। सरदीके मारे हाथ-पाँव ऐंठे जाते थे। जी चाहता था, बिस्तरेसे बाहर न निकलें, मगर मजदूरोंकी किसमतमें आराम कहाँ ? कल्लू मुँह अँधेरे उठ बैठा। पहले उसने एक पुराना कपड़ा जलाकर चिलम सुलगाई, और कुछ देर तम्बाकू पिया। इसके बाद मोटा कुरता पहना, और कई सालका पुराना कम्बल ओढ़ लिया। इसके बाद उसने धीरेसे ताकि कहीं सुखियाकी आँख न खुल जाए, रधियाको जगाया, और कहा—ले मैं चलता हूँ, कुछ सतुआ है, या नहीं ? ले आ, रात भी कुछ नहीं खाया। जरा गुड़ भी देना, सूखा सतुआ गलेसे नीचे नहीं उतरता।

रधियाने ज़मीनकी तरफ़ देखते हुए जवाब दिया—तुम गुड़को रोते हो, यहाँ सतुआ भी खतम है। कच्ची दाल है, कहो, वह ले आऊँ भिगोकर खा लेना।

कल्लूका उदास चेहरा और भी उदास हो गया, मरी हुई आवाज़में बोला—चलो वहीं बाँध दो।

रधियाने दाल एक कपड़ेमें बाँधकर भाईको देते हुए कहा—अब घरमें अनाजका एक दाना भी नहीं है। तलब लाओगे, तो सामको कुछ बन जाएगा, वहीं बाँट आए, तो आज भी चूल्हा गर्म न होगा।

कल्लूने कच्ची दालकी पोटली लौटाते हुए कहा—रधिया ! मैं

आदमी हूँ, राखस नहीं हूँ। तू और रामा भूखे रहो, और मैं खालूँ, ऐसा बेसरम अभी नहीं हुआ। लो, रामाको खिला देना। मेरा भगवान है, और क्या ? जवान आदमी हूँ। एक दो दिन न खाऊँगा, तो मर न जाऊँगा। मगर तू औरत है—रामा बच्चा है।

रधियाकी आंखें आंसुओंसे भर गईं। बोली—ऐसी बातें न कहो भय्या। मरी बहन और भी मर जाएगी। तुम रात भी भूखे रहे हो, आज भी न खाओगे, तो काम कैसे होगा ? सारा दिन चकर आते रहेंगे भैया ! हमारा गुजारा हो जाएगा, तुम यह दाल ले जाओ !

लेकिन कल्लूने दाल न ली और घरसे बाहर निकल गया। रास्तेमें कई मजदूर मिल गए, वे आपसमें दिल्लगी करते, हँसते-खेलते गाते चले जाते थे। कल्लूकी ज़बान बन्द थी; न बोलता था, न हँसता था। उसके साथी चाहते थे कि वह भी हँसे-बोले। आज तलबका दिन है, शामको सबकी मुठियाँ गम होंगी; लेकिन कल्लूको रुपये मिलनेकी ज़रा भी खुशी न थी। रुपये उसके हाथमें आएंगे और वहीं खड़े-खड़े बैठ जाएंगे। सुबहको जिस तरह खाली हाथ जा रहा है, शामको उसी तरह खाली हाथ लौट आएगा। ऐसी तलब मिली, न मिली। दोनों बराबर।

महावीरने आकर कल्लूके कंधेपर हाथ रख दिया और कहा—उदास क्यों हो भैया ! बोलते-चालते नहीं हो, क्या बात है ?

धीसूने सहानुभूतिके स्वरमें कहा—क्या बोले भाई ! बेचारेकी महेरिया बीमार है, कई दिनसे बुखार चढ़ा हुआ है। अब क्या हाल है कल्लू ! अभी उतरा या नहीं ?

कल्लूने ठंडी साँस खींचकर कहा—अभी तो नहीं उतरा भाई। भगवानकी किरपा होगी, तो उतर जाएगा।

धीसू—इलाज किसका है ? उसी बच्चनलालका या किसी औरका ?

कल्लू—इलाज क्या है, मनकी दौड़ है! हम मजूर लोग क्या इलाज करेंगे? इलाजके लिए रुपये चाहिएँ, वह हमारे पास हैं नहीं।

धीसू—आज तो तलब मिलेगी!

कल्लू—तलबसे ज्यादा करजा देना है। सबके सब उसी दम आकर घेर लेंगे?

महावीर—एक पैसा न देना किसीको। कहना—मेरी महेरिया बीमार है, अगले महीने दूँगा।

कल्लू—लड़नेको तैयार हो जाएंगे वह लोग।

धीसू—हो जाएँ, तुम्हारी बलासे। पहले बीमारीका इलाज, पीछे लेना-देना। अगर जोर मर गई तो रोते फिरोगे, पर यह समय हाथ न आएगा, रुपये तो फिर भी मिल जाएंगे।

कल्लू—बहुत करजा है भय्या। तुम गीत गाते थे, मेरा जी रोनेको चाहता था। मगर रोनेसे भी क्या होता है?

महावीरने कहा—एक बात करो। वाकर साहबके पास एक दरखास भेज दो, सायद उसे दया आ जाए।

धीसू—हाँ, यह तुमने खूब सोचा। छुट्टी पर जा रहा है, जरूर कुछ न कुछ दे मरेगा। साफ साफ लिख देना, कि पन्द्रह बरस इहाँ काम करते हो गए, अब नहीं निभती। सिर पर बहुत करजा चढ़ गया है। सरकार माँ-बाप हैं, कुछ मदद करें। क्यों अब्दुल! तुम्हारा क्या खयाल है? बोलो। कुछ फैदा होगा या नहीं?

अब्दुल अब तक चुप-चाप चला जा रहा था। धीसूकी बात सुनकर बोला—दरखास किससे लिखवाओगे?

कल्लूको कुछ कुछ आशा हो चली थी, बोला—कादिर बाबूसे न लिखवा लें। अँगरेजी, फारसी सब कुछ जानते हैं।

महावीर—बस, बस, बस, ठीक है। उन्हींसे लिखवाओ ! हमारे दफ्तरमें ऐसा जोग आदमी और कोई नहीं है।

घीसू—महेरियाकी बीमारीका जरूर जिकर करना। अपसर लोगों पर इसका बहुत असर होता है।

अब्दुल—यह बात तो तुमने मेरे मुंहसे छीन ली। मैं भी यही कहने जा रहा था। कादिर बाबूको समझा देना, कि ऐसी दरखास लिखें कि साहबके मनमें बैठ जाए।

महावीर—लो, अब फिकर-फाका छोड़कर एक गीत सुना दो। अभी तो आधा फासिला भी खतम नहीं हुआ।

कल्लू—भैया ! आज माफ कर दो, आज जरा जी नहीं चाहता।

घीसू—वाह ! जी कैसे नहीं चाहता ? अगर रोनेसे तुम्हारी महेरियाका बुखार उतरता हो, तो हम सब रोनेको तैयार हैं। मुदा इससे होता क्या है ? तुम रंज होकर आप भी बीमार हो जाओगे। चलो सुरू करो कोई सुन्दर-सा गीत। जरा जी बहले, जरा मन लगे।

कल्लूने अब्दुल और महावीरकी तरफ दीन नेत्रोंसे देखा, मानो आँखोंकी जबानसे कहा—क्या यह बखत गीत गानेका है ? लेकिन अब्दुल और महावीर दोनों घीसूके पक्षपाती निकले और कल्लूको विवश होकर गाना पढ़ा। गाते-गाते उसे अपना सारा दुख-दर्द भूल गया। ऐसा मालूम होता था, जैसे उसे कोई चिन्ता नहीं, जैसे उसे जीवनकी सारी विभूतियाँ प्राप्त हैं, जैसे वह स्वाधीन पंछीके समान प्रसन्न है।

४

दो पहरका समय था। मजदूर दो-दो, चार-चारकी टोलियाँ बनाकर धूपमें बैठे, अपना अपना सत्तू खा रहे थे। जिनके पास सत्तू न

था, वह कच्ची दाल और हरी मिर्च उड़ा रहे थे। कल्लूके पास कुछ भी न था, न उसे इसकी परवाह थी। वह कादिर बाबूसे अरजी लिखवा रहा था। उसे आशा थी, कि वाकर साहब उसकी जरूर सुन लेंगे। जब एक बजे वह अपनी मशीनपर आया, तो उसके चेहरेपर आशा झलक रही थी। आज उसका दिल काममें न लगता था। बार-बार दरवाज़ेकी तरफ़ देखता था, कि कोई चपरासी बुलाने आ रहा है या नहीं? आखिर तीन बजे वाकर साहबने उसे बुला भेजा। कल्लूका कलेजा धड़कने लगा। आशा उसे इतनी समीप कभी दिखाई न दी थी। उसने जाते-जाते महावीरको मर्म-भरी आँखोंसे देखा और मुस्कराया, मानो कहा—लो देखो, काम बन गया।

साहबके कमरेके पास पहुँचकर, कल्लूने अपने पाँव साफ़ किए, काँपते हुए हाथोंसे परदा हटाया और अन्दर चला गया।

साहब बहादुर कुरसी पर बैठे, बिजलीकी रोशनीमें, कागज़ोंपर हस्ताक्षर कर रहे थे और उनके सिगारका धुआँ कमरेमें भरा हुआ था। कल्लूने झुककर दोनों हाथोंसे सलाम किया और चुपचाप खड़ा हो गया।

साहबने सलामका कोई जवाब न दिया और कागज़ोंपर हस्ताक्षर करते रहे। इतनेमें एकाउण्टेण्टने आकर एक कागज़ साहबके सामने रख दिया। यह वाकर साहबके छः महीनेके वेतन और सफ़र खर्चका हिसाब था। साहबने कागज़ पर निगाह डाली और कहा—९५१३) नौ हजार पाँच सौ तेरह रुपया ?

एकाउण्टेण्टने कहा—जी हुजूर।

साहबने कहा—हमारी सीट बुक हुई ?

एकाउण्टेण्ट—जी हुजूर, हो गई। आज टामस कुकका तार भी आ गया है।

साहबने सिगारका कश लगाया और रसीदपर हस्ताक्षर कर दिए । बाबू चला गया । तब साहब कल्लूसे बोले—वेल कल्लू ! क्या बोलने माँगटा है तूम ? बोलो ।

कल्लू—हुजूर मैंने दरखास दी थी ।

साहब—मुँहसे बोलो, क्या माँगटा है ?

कल्लू—हुजूर मैंने इस कम्पनीमें पन्द्रह साल चाकरी की है । आजकल बड़ी मुसीबतमें हूँ—सरकार ! मुझपर बड़ा करजा हो गया है, कुछ मदत मिल जाए, तो जी जाऊँ । माई-बाप, आपकी जानको दुआएँ देता रहूँगा । बड़ी आफत है सरकार ।

यह कह कर कल्लूने दोनों हाथोंसे फिर सलाम किया ।

साहब—(प्रार्थना-पत्रको पढ़ते हुए) तुम्हारा नौकरी पन्द्रह सालका है । रुपये कहाँ खर्च कर डालता है ? ताड़ी पीटा है ? जुआ खेलटा है ? बोलो क्या करता है इतना पैसा ?

कल्लू—सरकार ! मैंने कभी जुआ नहीं खेला, कभी ताड़ी नहीं पी । आजकल मेरी जोरू बहुत बीमार है हुजूर !

साहब—ओ ! हमें अफ़सोस है ! डाक्टरका दवाई दो, नहीं वह मर जाएगा । देसी हकीम गधाका माफ़िक है । वह कुछ नहीं जानता ।

कल्लू—डाक्टरका इलाज कहाँसे करूँ हुजूर ? बड़ा गरीब हूँ । कुछ मदत मिल जाए, तो कर सकता हूँ । पन्द्रह सालसे हुजूरकी चाकरी की है ! आपका गुलाम हूँ, आपके पास आया हूँ ।

साहब—हमको अफ़सोस है, कम्पनी कुछ नहीं करने सकटा । कम्पनीको कई लाखका लास हुआ है । मैंनेजर साहब कहटा है, हम कुछ नहीं कर सकटा ! जाओ, अपना काम देखो ।

यह कहकर वाकर साहबने एक मोटा-सा फ़ाइल उठाया और उस देखने लगे। कल्लू बाहर निकल आया। इस प्रार्थना-पत्रपर जो-जो आशाएँ थीं, सब पर पानी फिर गया। अब उसके सामने फिर वही निराशा और अंधकार और फ़िक्र था। क्या करेगा वह अब ?

बाहर निकला, तो, बहुतसे मजदूरोंको घबराए हुए इधर-उधर दौड़ते देखा। चारों तरफ़ सनसनी-सी फैली हुई थी। मालूम हुआ कि कम्पनीने डेढ़ सौ मजदूरोंको नोटिस दे दिया है। हर एकके प्राण सूखे हुए थे, कि कहीं उसे भी जवाब न मिल गया हो। सभी परमात्मासे प्रार्थना कर रहे थे कि इस सूचीमें उनका नाम न हो। ऐसा भय छाया हुआ था कि कोई आगे बढ़कर इतना भी न पूछता था, कि किस किसको जवाब मिला है। हरएकको अपनी अपनी पड़ी थी।

इतनेमें एक चपरासी कमरेमें दाखिल हुआ। सबकी आँखें उसकी तरफ़ उठ गईं। उसके हाथमें लिफ़ाफ़ोंका एक पुलिन्दा था; पर यह लिफ़ाफ़े न थे, ग़रीबोंकी मौतके वारंट थे। यह चपरासी बड़ा हँसमुख था। आप हँसता था, मजदूरोंको हँसाता रहता था। आज उसकी सूरत यमदूतसे भी भयानक थी। जिसके पास रुककर लिफ़ाफ़ा निकालता, वही काँप उठता। जिसके सामनेसे निकल जाता, उसकी जानमें जान आ जाती। कल्लू और महावीर दोनों साथ-साथ काम करते थे। चपरासी आकर महावीरके पास रुक गया और उसके नामका लिफ़ाफ़ा खोजने लगा। महावीरके हाथ-पाँव फूल गए। सिटपिटाकर बोला—अच्छा ! मेरे नामका भी लिफ़ाफ़ा है ?

चपरासीने हार्दिक समवेदनासे कहा—भैया ? छुरी फिर गई है। डेढ़ सौ आदमी काटकर रख दिए, डेढ़ सौ ! भगवान जाने अब ये बेचारे क्या करेंगे और कहाँ जाएंगे ?

महावीरने लिफ़ाफ़ा लिया और सिर पर हाथ रखकर वहीं गिर पड़ा। चहकता हुआ पंछी एकाएक गोलीका निशाना बन गया।

इधर कल्लूफा दम घुट रहा था, कि देखें उसकी क्या गति होती है ? ऐसा भाग्यशाली नहीं है, कि कतल आम हो और वह बचा रहे; लेकिन शायद ।

उसी समय चपरासीने उसके नामका लिफाफा भी सामने रख दिया । कल्लूपर बिजली-सी गिर पड़ी । जैसे खड़ा था, वैसे ही खड़ा रह गया । उसके होठोंपर हाय न थी, न आँखमें आँसू थे । जैसे किसीने कलेजेमें दूर तक छुरी उतार दी हो । साधारण पीड़ा हो तो रोगी रोता-चिल्लाता है, असाधारण दर्द हो, तो बेहोश हो जाता है । उस समय चिल्लानेकी शक्ति ही नहीं रहती ।

इसके बाद तंख्वाह बैठने लगी; लेकिन आज इस समय वह चहल पहल और खुशी न थी । सभीके दिल बुझे हुए थे । जिनको जवाब मिल गया था, वह तो उदास थे ही, जो बच गए थे, उनके चेहरे भी उदास थे । कौन जाने कलको क्या हो जाए ?

५

कल्लूको तंख्वाह मिली ही थी, कि एक मज़दूरने उसके पास आकर कहा—क्यों भैया ? वह रुपया देते हो, जो तुमने पिछले महीने लिया था ? हमें तो जवाब मिल गया !

कल्लूने चुपचाप एक रुपया उसके हवाले किया । किसी दूसरे अवसरपर वह टाल देता; लेकिन अब कैसे इनकार करे ?

बाकी रुपये उसने धोतीकी अंटीमें रख लिए और विमन-भावसे मशीनपर काम करने लगा । सहसा एक दूसरा मज़दूर सामने आकर खड़ा हो गया । कल्लूने उसे देखते ही अंटीसे सवा रुपया निकालकर चुपचाप उसको दे दिया और बाकी रुपये मशीनपर ही रख दिए कि

शायद कोई और आ जाए। बीमार निराश होकर दवा छोड़ देता है। कल्लूने निराश होकर सोचना छोड़ दिया।

छुट्टीकी घंटी बजी। कल्लूने रुपये फिर अंटीमें रख लिए और सिर नीचा किए मंद-गतिसे बाहर निकला। और दिन छुट्टी होती थी तो मजदूर उछलते-कूदते हंसते-मुस्कराते बाहर निकलते थे। आज सबके सब मौन थे, जैसे किसी शवकी दाह-क्रिया करके लौटे हों। उसी तरह धीरे-धीरे चलते थे, उसी तरह एक दूसरेकी ओर दीन भावसे देखते थे, उसी तरह एक दूसरेको सब करनेकी सलाह देते थे।

एकाएक किसीने कल्लूके कंधेपर हाथ रख दिया। कल्लूने सिर उठाकर देखा, तो उसकी जान ही निकल गई। सामने मौतसे भी भयानक पठान हाथमें लाठी लिए खड़ा था।

पठानने कल्लूको गरदनसे पकड़कर कहा—बिरादर ! पाँच रुपये लाओ। हम आज कुछ न सुनेगा।

कल्लू हतबुद्धि-सा खड़ा रहा। सोचा—दे ही दूँ। जब नौकरी ही न रही, तो पाँच रुपये कै दिन चलेंगे ? क्यों गाली-मार खाऊँ ? जो होगा देखा जाएगा। फिर खयाल आया—सुखियाके लिए दवा भी तो लानी है ! बहन और भानजेके लिए भोजन भी तो लाना है ! खाली हाथ पहुंचूँगा, तो बेचारे निराश हो जाएँगे और फिर वहाँ भी तो बनियेको, हकीमको, साहूकारको देना है। सब राह देख रहे होंगे। एक एक रुपया भी दे दूँ, तो उनको तसल्ली हो जाए। किसी तरह दस-पाँच दिन तो कट जाएँगे। नहीं तो...

कल्लूकी आँखोंके आगे अँधेरा आ गया। पठानने जवाब न पाकर कल्लूको जोरसे भंभोड़ा और कहा—खर बच्चा ! पाँच रुपए लाओ, पाँच रुपए ! पिछले महीना हम इंदर खड़ा रहा, तुम धोखा देकर दूसरा दरवाजासे निकल गया। अब बोल ! देता है कि नहीं ?

कल्लू क्या बोलता ? उसके मुंहमें ज़बान ही न थी । उसने हृदय-विदारक नेत्रोंसे पठानकी तरफ़ देखा, लेकिन पठान बेदिलका आदमी था । उसे ज़रा भी दया न आई । उसने उसे एक बार फिर भंभोड़ा और कहा—ख़र बच्चा ! सुनता नहीं । हम अपना सूदका रुपया माँगता है । अभी निकाल, नहीं खुदाका कसम, तुझे क़तल कर देगा और खुद फांसी चढ़ जाएगा ।

कई आदमी जमा हो गए । उनमेंसे एकने आगे बढ़कर कहा—आगा ! क्या बात है ? तू क़तल क्यों करेगा इसे ? इसकी गरदन छोड़ दे, और मुँहसे बात कर ।

आगा—नहीं बाबू साब ! यह भाग जाएगा !

बाबू—नहीं भागेगा । मेरा ज़िम्मा है । ले अब छोड़ दे इसे ।

यह कहकर बाबू साहबने आगाके हाथसे कल्लूकी गरदन छुड़ा दी और बोले—अब कहो क्या बात है ? तुम्हारे कितने रुपये इसपर आते हैं ?

आगा—दस रुपया बाबू साब ! दो साल हुआ इसने लिया था । पहले सूद देता था, अब सूद भी नहीं देता । दो महीना हो गया । पिछले महीने भी इसने कुछ नहीं दिया । और अब इस महीने भी कुछ नहीं देना चाहता । हम क्या करे हम ग़रीब है ।

बाबू—तुम दस रुपयेपर हर महीने कितना सूद लेते रहे हो ?

आगा—सिर्फ़ अढ़ाई रुपया, बाबू साब ! हम बेसी नहीं लेता ।

बाबू—यह बेसी नहीं तो और क्या है ? दस रुपये देकर तुम दो सालमें साठ रुपया सूद ले चुके हो । अब और क्या इसकी जान भी ले लोगे ? छोड़ दो इसे । अब यह और कुछ नहीं देगा ।

आगा—नहीं बाबू साब । ऐसा बेइंसाफी न करो । हम मर जाएगा

हमारा दो महीनोंका सूद है। वह दे दे। हम अपना रक़म नहीं माँगता, सूद माँगता है। हम सूद लेकर चला जाएगा।

समूहमेंसे एक आदमीने कहा—यह आगा लोग महाजनोंके भी चचा हैं। पच्चीस सैकड़ा सूद ! तोबा-तोबा !

दूसरा बोला—मगर इनसे लोग लेते क्यों हैं ? यह ज़बरदस्ती तो नहीं देते ? सौ बार माँगते हैं, तब जाकर यह देते हैं।

तीसरा—अजी यह मजूर लोग हिसाब-किताब करना क्या जानें ?

चौथा—तो फिर दें। आगा कभी न छोड़ेगा। सूद तो पहले तै हो गया था, क्यों आगा ?

आगा—(शह पाकर)—हाँ साब ! पहले बता दिया था। इससे पूछ लो। ओ भय्या ! कहा था या नहीं ? हमारे पास इसका दस्तावेज है ! उसपर इसका अंगूठा लगा है।

एक आदमीने कहा—अँगूठेसे क्या होता है ? अदालतमें मुकदमा जाए, तो साफ़ डिसमिस हो जाए। अदालत कभी इतना सूद नहीं दिला सकती। यह सूद नहीं है। खुदाका क़हर है।

आगा—(झल्ला कर) खुदाका क़हर किस लिए है ? हम किसीके घर जाकर नहीं देता। सौ बार आकर कोई माँगता है, तब देता है। जिसे ग़रज़ होता है, वह आप दौड़ा आता है।

बाबू—लेकिन आगा ! यह सूद बहुत ज़्यादा है ! तुमने इसे दस दिए और साठ ले लिए। और क्या माँगते हो ? छोड़ दो ग़रीबको।

आगा—(आखें निकालकर) क्यों छोड़े ? नहीं छोड़ेगा। अपने रुपये लेगा। बड़ा रहम है, तो अपने पाससे दे दो। यह ग़रीब है, तो हम भी ग़रीब है। हम अमीर नहीं है।

बाबू—(कल्लूसे) क्यों भय्या ! तुम्हारे पास हैं पाँच रुपये ?
दे दो इस वक्त । कल मेरे पास आना । मैं चन्दा करा दूँगा

कल्लूने चुपचाप पाँच रुपये निकालकर दे दिए । आगा खुश होकर बोला—अब यह अच्छा आदमी है । हम अपना रकम कभी न माँगेगा । सूद देता चले । फिर हम खुश, हमारा खुदा खुश ।

कल्लूको ऐसा मालूम हुआ, मानो उसने रुपये नहीं दिए, अपने प्राण निकालकर दे दिए हैं । उसकी जेबमें अब सिर्फ़ तीन रुपये और कुछ आने बच रहे थे । वह सोचने लगा—घरमें जाकर क्या दूँगा ? रधिया जब अपनी भूखी आँखोंसे मेरी और देखेगी, तो क्या कहूँगा ? उसकी चाल धीमी पड़ गई । उसके साथी मज़दूर आगे निकल गए । वह सबसे पीछे रह गया; लेकिन उसे इसकी चिन्ता न थी । वह एक खंडहरके पास एक पेड़के नीचे बैठ गया और अँधेरे संसारके अँधेरे विचारोंमें निमग्न हो गया । आज घरसे चला, तो उसके पास कुछ न था; पर आशा तो थी । इस समय वह भी न थी । वह उस अँधेरे एकान्तमें फूट-फूट कर रोने लगा, जो निराश आदमियोंका आखरी सहारा है ।

रात हो गई । ठंडी हवा हड्डियोंमें चुभी जाती थी । आकाशपर काले बादल मँडला रहे थे; पर कल्लूको इसकी चिन्ता न थी । उसे केवल एक चिन्ता थी—अब क्या होगा ? घर जाए या न जाए ? और अगर जाए तो किस मुँहसे जाए ? तलब उड़ गई, नौकरी छूट गई । पास कुछ भी नहीं सिरपर कर्ज़ । कोढ़में खुजली और भी बुरी ।

सहसा एक परछाईं-सी उसके सामने आकर खड़ी हो गई । यह घीसू था । उसने कल्लूको इस वृक्षके नीचे बैठे देखा था । जब इतनी रात हो गई और वह घर न पहुँचा, तो उसे खोजने निकला ।

कल्लूने पूछा—कौन है ?

धीसू—अरे भाई ! तुम यहाँ बैठे क्या कर रहे हो ? चलो घर चलो । नौकरी छूट गई है, तो क्या हुआ, हमारा परमेश्वर तो नहीं मर गया । जो पसु-पंछियोंको देता है , वह हमें भी देगा । चिन्ता बे फजूल है । चलो । भगवान् एक दरवाजा बन्द करता है, सौ दरवाजे खोल देता है । किसी न किसी दरवाजेमें घुस जाएँगे ।

कल्लू चुपचाप उसके पीछे हो लिया । कुछ दूर जाने के बाद बोला—सुखियाका क्या हाल है ? बुखार उतरा या नहीं उतरा ? धीसू कुछ देर असमंजसमें पड़ा रहा, फिर बोला—वह तो चार बजे मर गई । लास रखी है । सब लोग तुम्हारी बाट जोड़ रहे हैं ।

कल्लूने कोई जवाब न दिया, अँधेरे और सरदीमें जल्दी जल्दी चलने लगा । इस वक्त उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे उसके सिरसे बोझ उतर गया है, जैसे उसकी देह हल्की हो गई है ।

अब उसे नौकरी छूट जानेका ज़रा भी दुख न था ।

कीर्तिका मार्ग

१

धन और कीर्तिमें चोली-दामनका साथ है। लाहौरके दीवान अमृतलालकी कीर्तिका मूल-कारण उनकी दौलत थी। उनमें और कोई सद्गुण न था। उर्दू-हिन्दी दोनों अच्छी तरह न पढ़ सकते थे। पढ़ते तो ऐसा मालूम होता, जैसे कोई छकड़ा दलदलमें फँसकर बाहर निकलनेकी चेष्टा कर रहा हो। ज़रा कोई कठिन शब्द आया, और महात्माजीपर फ़ाज़िल गिरा। कई मिनट रुके रहते, मगर पहिया दलदलसे बाहर न निकलता। बात-चीत करनेका भी शऊर न था। शौकीन इतने थे कि बाज़ारसे दो दो आनेकी तसवीरें मोल ले आते, और फिर उन्हें आटेसे दीवारोंपर चिपका चिपकाकर झूमते थे कि दीवारोंकी शोभाका कैसी सफ़ाईसे गला घोट दिया है! सुजनता ऐसी थी कि कोई मिलने आता तो सीधे मुँह बात भी न करते थे। और नौकरों-चाकरोंकी तो अपने श्रीहाथोंसे मरम्मत करनेमें भी सङ्कोच न था। कोई काम न करते थे। न इसकी कोई ज़रूरत थी। उनके पिताने धोखे धड़ीसे लाखों रुपये पैदा किए थे। चार हज़ारके लगभग केवल ब्याज और किरायेमें आ जाते थे। बैठे चैनकी बाँसुरी बजाते थे।

पिताने कमाया था, पुत्र खाता था। मगर उनका नाम दूर दूर तक मशहूर था। अखबार लिखते, दीवान साहब ऐसे हँसमुख मिलनसार और सभ्य आदमी हैं कि मिलकर हृदय खिल उठता है। यों देखनेमें बड़े सीधे-साधे नज़र आते हैं, मगर बोलते हैं, तो बड़े बड़े पण्डितोंका मुँह बन्द कर देते हैं। इतना ही नहीं, उनकी दान-वीरताकी कल्पित कहानियाँ इस सज-धजसे प्रकाशित करते कि दीवान साहब खुद भी उनकी कल्पना-शक्तिके कायल हो जाते, और देर तक हँसते रहते। यह यशोगान—यह कीर्ति-वृत्तान्त अकारण न था। दीवान साहब हर सभा-सोसाइटीको आर्थिक सहायता दिया करते थे। और उनका दान मामूली दान न होता था। जब देते थे, दिल खोलकर देते थे। पैसे पैसेको ढ़ाँतोसे पकड़नेवाले कंजूसमें चन्दा देते समय इतनी उदारता कहाँसे आ जाती थी, इसे मानव-चरित्रका बड़ेसे बड़ा पण्डित भी न समझ सकता था। यार-दोस्तों में बैठते तो कहते—देखो, मैंने सारी उमरमें एक ही बात सीखी है। और वह दान है। यह सौ गुणोंका एक गुण है। तुम जो जी चाहे करो, जो खेल पसन्द हो खेलो, बदमाशियाँ करो, जुल्म कमाओ, जुआ खेलो, शराब पियो। पर दान दे दो, तो समाज चूँ तक न करेगा। दान इस नागका वशीकरण मन्त्र है। दान इस समाजकी जीभ पकड़नेका एकमात्र साधन है। दान सब पापों को ढ़क देने वाला परदा है।

२

दोपहरका समय था। दीवान साहब अपनी कोठीके हातमें आराम कुरसीपर बैठे ऊँघ रहे थे। इतनेमें एक नव-युवक उनके सामने आकर खड़ा हो गया। दीवान साहबने उसको देखा, तो चौंक पड़े। इसके बाद उन्होंने पीठ कुरसीके साथ लगा ली और पाँव सामने रखे स्टूलपर फैला दिए। बोले—अरे कौन ? क्या तू पन्नालाल तो नहीं है ?

नवयुवकने श्रद्धा-भावसे दीवान साहबके पैर छूकर कहा—जी हाँ, आपने खूब पहचाना ।

दीवान०—ऐमनाबादसे कब आए तुम ?

पन्ना०—अभी गाड़ीसे उतरा हूँ । सीधा इधर ही आ रहा हूँ ।

दीवान—मजेमें तो हो ना ?

पन्ना०—जी हाँ, सब आपकी मेहरबानी है ।

दीवान—अच्छा, अभी खाना तो न खाया होगा ?

पन्ना०—जी नहीं ।

दीवान—मैं तो कभीका खा चुका । जाओ, अन्दर जाकर नौकरसे कहो, तुम्हारे लिए तैयार कर दे । दाल रखी है, आलूकी भाजी बनवा लो ।

पन्नालालके दिलमें बड़ी बड़ी आशाएँ थीं, सब पर पानी फिरता हुआ मालूम हुआ । सोचता था, दीवान साहब अमीर आदमी हैं । मैं उनका भतीजा हूँ । पहली बार उनके घर जा रहा हूँ, सिर आँखोंपर बिठाएंगे । मगर उनकी खातिर-तवाज्जोका पहला ही प्रकरण कितना निराशा-जनक और अपमान-सूचक था । पन्नालालका जी खट्टा हो गया । सोचने लगा, जिस ग्रन्थका पहला परिच्छेद ऐसा निस्सार है उसका बाकी भाग कितना शोक-मय होगा । ख्याल आया, यहींसे लौट जाए । कैसा असम्भव है ! पाँव फैलाए बैठा है, और बातें करता है । इतना भी न हुआ कि उठकर कुरसी ही पेश कर दे । चार पैसे क्या हाथ आए, अदब-आदाबसे भी पाक हो गए । पन्नालालकी आँखें ज़मीनकी तरफ़ लगी थीं, मगर दीवान साहबको इसकी ज़रा भी परवा न थी । थोड़ी देर बाद बोले—घरमें तो सब तरहसे कुशल है न ?

पन्ना०—जी हाँ ! सब खुश हैं ।

दीवान—भाभीका क्या हाल है ?

पन्ना—वे भी मजेमें हैं, और आपको दुआएँ देती हैं ।

दीवान—मिले हुए कई साल बीत गए । कभी आती ही नहीं । खैर उनकी इच्छा । कभी मिलूँगा तो पूछूँगा । तुमने एन्ट्रेंसकी परीक्षा कब पास की ?

पन्ना—पिछले साल ।

दीवानसाहबने हैरानीसे पूछा—कहीं नौकर हो क्या ? सारी तख्वाह खर्च तो नहीं कर देते ? कुछ न कुछ बचाकर रक्खा करो, नहीं आखिरी उमरमें तकलीफ होगी ।

पन्नालालने ठंडी साँस भरकर जवाब दिया —अभी तो कहीं नौकर नहीं हुआ । जबसे इम्तिहान पास किया है, धके खा रहा हूँ ।

दीवान०—अरे ! यह क्या ? तुमने मुझे क्यों न लिखा ? लिखते तो कबेक नौकर हो चुके होते । तुम लाख परे भागो, पर नाखूनोंसे मांस कब जुदा हुआ है ! आखिर मेरे चचेरे भाईके बेटे ही हो । तुम्हारा जैसा खयाल मुझे है, किसी दूसरेका न होगा । कोई न समझे तो और बात है, पर समझनेवाले तो बेटे और भतीजेको बराबर जानते हैं ।

पन्नालालको आश्चर्य हुआ, जैसे पत्थरोंसे जलकी धारा बहते देख ली हो । विचार आया, लोकाचार नहीं तो क्या हुआ ? मगर आदमी खरा है । और दिल तो सहानुभूतिका सोता है । मैंने इन्हें समझनेमें भूल की थी । यह मेरे लिए जरूर कुछ न कुछ करेगा ।

पन्नालालने शरमसे सिर झुकाकर कहा—क्या कहूँ, अपनी मूर्खतापर पछता रहा हूँ । अब तो आपका ही भरोसा है । चाहे मारें, चाहे जिला दें । मुझे कोई दूसरा रास्ता दिखाई नहीं देता ।

यह कहते कहते पन्नालाल अन्दर चला गया । दीवान साहब फिर ऊँघने लगे । पर वे सोते न थे, जागते थे और दिलमें सोचते

थे, पन्नालाल ऐसे ही नहीं आया । कुछ माँगने आया होगा । मैंने इसी डरसे कभी चिठी नहीं लिखी । कभी मिलने नहीं गया । आदमीको अपने गरीब सम्बन्धियोंसे परे परे ही रहना चाहिए । कुछ न कुछ माँग बैठते हैं । उस समय बड़ा सङ्कोच होता है । दें तो मुश्किल न दें तो मुश्किल । दें, तो उनकी आदत बिगड़ती है । न दें तो अपनी बदनामी होती है । इसलिए मुँह नहीं लगाते । मगर इतनी सावधानी करने पर भी दनदनाते हुए आ जाते हैं । इन्हें कुछ भी शरम नहीं आती । समझते हैं, अमीर आदमी है, कुछ न कुछ दे ही देंगे । उन्हें जो मिल जाए, वही बहुत ।

रातको स्त्रीसे बोले—कुछ मालूम हुआ, पन्नालाल कैसे आया है ?

स्त्री—तुम्हारे दर्शन करने आया होगा ।

दीवान साहब—दर्शन तो क्या करने आया है, मालूम होता है, मुझसे कुछ माँगने आया है ।

स्त्री—चरणामृत दे देना ।

दीवान साहब—बड़ी दिक्कतमें फँसा हूँ ।

स्त्री—तुम्हारा प्यारा भतीजा है, देखकर तबीयत तो हरी हो ही गई होगी तुम्हारी ।

दीवान साहब—तुम तो ताने मारती हो ।

स्त्री—तो और क्या करूँ, बैठे बैठे मुफ्तकी मुसीबत सिरपर सवार हो गई है ।

दीवान साहब—कुछ माँगोगा तो क्या कहूँगा ? हमें जवाब देनेमें शरम आती है । इन्हें माँगनेमें सङ्कोच नहीं होता ।

स्त्री—लाज-शर्म तो इन लोगोंने घोल कर पी ली है। मैं इसे एक पैसा न देने दूँगी। अमीर हैं तो अपने घर, गरीब हैं तो अपने घर। किसीसे माँगने तो नहीं जाते।

दीवान साहब—और मैं कौन-सी थैलियाँ लेकर बैठा हूँ, कि आएँ तो ले जाएँ। साफ़ टाल दूँगा। कह दूँगा, आजकल हाथ तंग है, भगड़ा ख़त्म। छीनकर तो ले ही नहीं जाएंगे।

स्त्री—मीठी मीठी बातें कर देना। इसमें अपना क्या बिगड़ता है ?

दीवान साहब—देखो तो सही, कैसे टालता हूँ। मेरा नाम भी अमृतलाल है। मैंने बड़े बड़ोंके छुके छुड़ाए हैं, यह छोकरा किस खेतकी मूली है ? दो बातोंमें चित हो जाएगा।

स्त्री—इस तरह टालो कि फिर दूसरी बार हिम्मत न करे।

दीवान साहब—तुम देखती जाओ, कैसे टालता हूँ।

३

पन्द्रह दिन बीत गए। पन्नालाल घर चलनेको तैयार हुआ। इस समय उसके दिलमें सैकड़ों विचार उठ रहे थे। रह रह कर सोचता था, खाह मखाह आकर इज्जत गँवाई। उसे दीवान साहबसे बहुत कुछ आशा थी। वह समझता था अमीर हैं, दिन-रात दान करते रहते हैं। मैं उनका भतीजा हूँ, क्या मेरी मदद न करेंगे ? जो ग़ैरोंको देता है वह अपनेको क्यों न देगा ? मानव-चरित्रका यह एक ऐसा रोमाञ्चकारी दृश्य था जो उसने इससे पहले कभी न देखा था। दीवान साहबने उसे साफ़ जवाब दे दिया। उसने रो रोकर कहा—हम मर रहे हैं। कई कई दिन भूखे रहना पड़ता है। आपके ऊपर परमात्माकी कृपा है। ज़रा-सी भी कृपा-दृष्टि हो जाए तो हमारी नैया पार लग जाए। ये बातें न थीं,

खूनके आँसू थे । मगर दीवान साहब चिकने घड़े थे, उनपर ज़रा भी असर न हुआ । ठण्डी साँस भरकर बोले—बरखुरदार, तुम्हारी सहायता करना मेरा धर्म है । पर क्या करूँ ? इस साल बहुतसे मकान खाली पड़े रहे । आधा किराया भी नहीं आया । इस समय हाथ बड़ा तङ्ग है । अब तुमसे क्या कहूँ ? लोग समझते हैं, यहाँ हजारों आते हैं, पर किसीको क्या पता, यह सब भरम ही भरम है । शायद तुम विश्वास न करो, पर हमें कभी कभी ख़रचा पूरा करना भी मुश्किल हो जाता है । हाँ भरम है, वह चला जाता है ।

पन्नालालका कलेजा धड़कने लगा । वह गङ्गाके किनारे आकर प्यासा वापस जा रहा था । वह राजाके महलसे खाली हाथ लौट रहा था । यह देखकर उसकी आँखों तले अँधेरा छा गया । नम्रतासे बोला—अगर आप थोड़ी-सी भी सहायता कर दें तो बड़ी बात है । हम आज-कल पैसे पैसेको मोहताज हैं ।

दीवान साहबने जवाब दिया—इस वक्त आर्थिक सहायता तो मुश्किल है । हाँ, तुम्हारी नौकरीका प्रबंध मैं जल्दी कर दूँगा ।

पन्ना०—आज-कल नौकरीका भी बड़ा बुरा हाल है । एक जगह खाली होती है, सौ उम्मीदवार पहुँच जाते हैं ।

दीवान—यही तो ख़राबी है ।

पन्ना०—आप कोशिश करेंगे तो मिल जाएगी ।

दीवान—अरे ! तो क्या अब तुम्हारे लिए कोशिश भी न करूँगा ? तुम्हारे लिए तो मैं अपनी जान भी लड़ा दूँगा ।

पन्नालालने ज़मीनकी तरफ़ देखते हुए जवाब दिया—आपको बहुत बहुत काम रहते हैं, इस लिए प्रार्थना करता हूँ, कि कहीं भूल न जाइएगा । नहीं तो हम भूखों मर जाएंगे ।

दीवान०—मरना जीना तो अपने भाग्यकी बात है । पर मैं तुम्हें भूलूँगा नहीं । तो क्या अब चले ही जाओगे ?

पन्ना०—जी हाँ, यही ख्याल है । कई दिन गुज़र गए । घरके लोग घबरा रहे होंगे ।

दीवान०—कुछ दिन और न रह जाओ ?

पन्ना०—अब तो आज्ञा ही दीजिए । फिर कभी आ जाऊँगा ।

दीवान०—मेरा जी न चाहता था कि तुम इतनी जल्दी चले जाओ पर खैर । अपनी चाचीसे मिल आए ?

पन्ना०—जी हाँ आज्ञा ले आया उसने भी ।

दीवान साहब कुर्सीपर टाँगें फैलाए लेटे थे । उठकर बैठ गए और बटुआ खोलकर सोचने लगे, अब यह जा रहा है, इसे क्या दें ? इतना गूढ़ विचार किसी फाइनेंस-मैबरने अपने प्रान्तका सालाना बजट तैयार करते समय भी न किया होगा । आखिर जी-जानपर खेल कर उन्होंने दो रुपये निकाले, और पन्नालालके हाथपर रखकर बोले—भाभीको मेरा प्रणाम कहना ।

पन्नालाल चौंक पड़ा । उसने दीवान साहबकी तरफ़ अचरज-भरी आँखोंसे देखा । मानो कह रहा था, इतने धनी होकर भी तुम्हें धन इतना प्यारा क्यों है ? तब वह धीरे धीरे बाहर निकल आया । वहाँ एक छोटी-सी मेज़ पड़ी थी । पन्नालालने वे दोनों रुपये उस मेज़पर रख दिए, और आप स्टेशनको चला गया ।

दीवान साहबने बाहर आकर रुपये देखे, तो उनके तन-बदनमें आग लग गई । सोचने लगे, यह छोकरा मेरा अपमान करता है रस्सी जल गई, पर ऐंठन नहीं जली । समझता होगा, उठा कर थैलियाँ

दे देगा। इतना ख्याल नहीं कि इसके भी बच्चे-बाले हैं, हमें क्या दे? अपने घरमें भाँग भुनती है, बाहर अहङ्कारसे पाँव ज़मीनपर नहीं पड़ते। मैं भी कैसा मूर्ख हूँ, जो इसकी मीठी मीठी बातोंमें आ गया, और इसे नौकरी दिलानेको तैयार हो गया। बहुत अच्छा हुआ, कुत्तेकी जात पहचानी गई। देखता हूँ, अब कौन इसे डिप्टीकी नौकरी दिलाए देता है।

४

इतनेमें दरवाज़ेपर हार्न बजा, और एक मोटर अन्दर आया। इसमें लाहौरके मशहूर रईस रायबहादुर लखपतराय सवार थे। उनको देखकर दीवान साहब खड़े हो गए, और मोटरके पास आकर बोले—आज शायद आप रस्ता भूल गए हैं।

धन धनवानोंसे भी सत्कार करा लेता है।

रायबहादुरने मोटरसे उतरकर दीवान साहबसे हाथ मिलाया और कहा—क्या कहूँ दीवान साहब, दुनियाके धन्ये नहीं छोड़ते, नहीं तो आपके यहाँ रोज़ आता, रोज़।

दीवान—छः महीनेके बाद आए हैं आप।

राय०—शायद, मैं ऐसी बातोंका हिसाब नहीं रखता।

दीवान—मगर मैं तो बराबर रखता हूँ।

रायबहादुरने कहकहा लगाकर कहा—बहुत अच्छा करते हैं। इसीपर किसी दिन खिताब मिल जाएगा आपको।

यह कहकर रायबहादुरने कनखियोंसे दीवान साहबकी तरफ़ देखा। दीवान साहब उदास हो गए थे। वह हँसी, वह प्रसन्नता, वह निश्चिन्तता,

पता नहीं कहाँ छिप गई ? रायबहादुरने सिगरेट-केससे एक सिगरेट निकाल कर दीवान साहबको पेश किया । इसके बाद अपना सिगरेट सुलगाया, और कुरसीसे पीठ लगाकर धूआँ उड़ाने लगे ।

मगर दीवान साहबको सिगरेट पीनेकी सुध न थी । उन्होंने अपनी कुरसी रायबहादुरके पास सरका ली और धीरेसे कहा—तो क्यों जनाब, क्या हम खाली ही रह जाएंगे अबके भी ?

रायबहादुर सिगरेट पीते रहे ।

दीवान०—देखिए, कितने साल गुज़र गए हैं । मामूलीसे मामूली आदमी भी रायसाहब और रायबहादुर बन गए हैं । हमें कोई पूछता ही नहीं । हम अभी तक लाला ही बने हुए हैं ।

रायबहादुर फिर भी सिगरेट पीते रहे ।

दीवान०—मैंने हर सभाको, हर समाजको दिल खोलकर दान दिया है । इतनी भक्ति परमेश्वरकी करता तो परमेश्वर मिल जाता । मगर सरकार-देवता अभी तक प्रसन्न नहीं हुआ । और भक्त सोचर हा है, अब और क्या करे, क्या न करे । बताइए, सरकार कैसे खुश हो ?

रायबहादुर हँसने लगे ।

दीवान—आप अख़बार तो देखते होंगे । हर साल हजारोंका दान करता रहा हूँ । कोई अख़बार उठा लीजिए, आपको मेरी तारीफ़से भरा हुआ मिलेगा । मगर सरकारकी कृपा-दृष्टिसे अभी तक वञ्चित हूँ । ज़्यादा न सही, पर क्या मैं इस लायक भी न था कि रायसाहब या रायबहादुर ही बना दिया जाता ? आपकी सरकारसे इतनी बनती हो, और हम फिर भी मुँह देखते रह जाएं ! यह दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है ? मगर आपको क्या ? अभागें हम हैं, आप तो नहीं ।

यह कहते कहते दीवान साहबकी आँखोंमें आँसू लहराने लगे । रायबहादुरका दिल पसीज गया । धीरेसे बोले—दीवान साहब, सरकार खिताब अपने आदमियोंको देती है, दान देनेवाले आदमियोंको नहीं । बेशक आपने बहुत-सा रुपया खर्च किया है, पर इससे सरकारको क्या ? मुझे ज़रा बताइए, आपने सरकारके लिए क्या किया है ? आपने सरकारको क्या दिया है ? सरकार आपको क्यों खिताब दे ?

दीवान साहबकी आँखें खुल गईं । मुसाफ़िर सोया हुआ था, पानीके चार छींटोंने उठाकर बिठा दिया । दीवान साहबको ऐसा मालूम हुआ मानो वे आज तक उलटे रास्तेपर चलते रहे हैं । किधर जाना था, किधर चलते रहे ? उनका हरएक कदम उन्हें उनकी मंज़िलसे दूर लिए जाता रहा । भूला हुआ मुसाफ़िर, खूब दौड़ता है, खूब चलता है, खूब भागता है । समझता है, सफ़र पूरा होनेमें अब देर नहीं । मगर एकाएक मालूम होता है, यह तो मार्ग ही दूसरा है, मैं तो किसी दूसरे नगरको जा रहा हूँ । उस समय उसे कितना दुःख होता है ! उसका दिल टूट जाता है । वह निराश हो जाता है । वह रोने लगता है । यही दीन-दशा दीवान साहबकी थी । उन्हें किसीने उलटे रास्तेपर डाल दिया था । समझते थे, अखबारोंकी तारीफ़ उन्हें खिताब दिला देगी । इस झूठी आशामें उन्होंने हजारों रुपये दान कर दिए थे । इसमें सन्देह नहीं, वे लोगोंकी स्तुतिके भी भूखे थे । पर सरकारके दिए हुए खिताबमें कुछ और ही मज़ा है । सरकारके दिए आदरकी कुछ और ही अदा है । दीवान साहब सतर्क हो गए । रास्ता बदल लिया । अब मंज़िल दूर न थी, सामने नज़र आ रही थी ।

दूसरे सप्ताह दीवान साहबने गवर्नर महोदयको अपनी कोठीमें एक शानदार डिनर-पार्टी दी । अखबारोंमें शोर मच गया । कोई और होता तो यही अखबार पंजे भाड़कर उसके पीछे पड़ जाते । मगर ये दीवान साहब थे, जो उनकी संस्थाओंको दान दिया करते

थे। हम दानी आदमीके विरुद्ध नहीं बोल सकते। उसका दान हमारी जीभ पकड़ लेता है। लोग कहते थे, ऐसी पार्टी लाहौरमें आज तक किसीने नहीं दी। सजावट, प्रकाश, खाना सब उच्च कोटिके थे। मेहमान फड़क उठे। गवर्नर साहब बहुत खुश हुए। चलते समय उन्होंने दीवान साहबसे कहा—आपने हमारा खातर बहुत तकलीफ किया। ये शब्द न थे, देवताका वरदान था। दीवान साहबका सारा परिश्रम, सारा खर्च सफल हो गया। हिसाब किया गया तो मालूम हुआ कि डिनरपर तीन हजार रुपया उड़ गया है, मगर दीवान साहबको इसका ख्याल न था। खयाल यह था, किसी तरह सरकारसे खिताब मिल जाए। किसी तरह सरकार निहाल हो जाए। वे उस दिनके लिए अधीर हो रहे थे।

उधर पन्नालाल ऐमनाबादमें बैठा अपने प्रारब्धको रोता था। उसने दीवान साहबको बार बार पत्र लिखे। यह पत्र न थे उसके दुर्भाग्यकी कहानियाँ थीं। उन कहानियोंमें दिलका दरद था, आँखोंके आँसू थे, जीवनकी जलन थी। कोई गरीब आदमी उन्हें पढ़कर तिलमिला उठता और कुछ न कुछ कर देता। पर दीवान साहब अचल रहे। वे खिताबकी धुनमें तन्मय हो रहे थे। आज किसी एक अफसरसे मिलते, कल किसी दूसरेसे। उनको अब किसी और चीज़की चाह न थी, केवल खिताबका ख्याल था। वह उस दिनके लिए किसी प्रेमीकी तरह तड़प रहे थे, जब उनका नाम सुनहरी सूचीमें प्रकाशित हो, और उनकी मित्र-मण्डली उन्हें बधाई देने आए। वह दिन कैसा भाग्यवान् होगा? दीवान साहबने सारा साल सरकारी चन्दोंकी भेंट कर दिया। यहाँ तक कि उनके हिसाबकी किताबमें ३९ हजार रुपयेकी कमी हो गई। मगर उन्हें इस ३९ हजारकी ज़रा भी परवाह न थी। वे और भी आगे जाने को तैयार थे। इस राह में रुपये का मुंह कौन देखता है!

सड़कटमें समय भी नहीं गुज़रता । पन्नालालके लिए एक एक दिन एक एक साल हो गया । अब उसे दीवान साहबका नाम सुनकर ज़हर चढ़ जाता था । घायल अङ्गुपर हलकी-सी चोट भी बहुत दुखती है । हम उसपर बहुत जल्द झुँझला उठते हैं । पन्नालालने निश्चय कर लिया कि वह मरता मर जाएगा, पर दीवान साहबका मुँह न देखेगा । अब उसे किसी पराएसे आशा थी, किसी अपनेसे आशा न थी । उसने दीवान साहबकी आशा छोड़ दी और अपने तौरपर यत्न करने लगा कि कोई मामूली सी भी नौकरी मिल जाए तो कर ले । मगर कई महीने बीत गए, और कोई नौकरी न मिली । पन्नालाल घबरा गया । क्या करे ? क्या न करे ? दो छोटी बहनें थीं, एक विधवा माँ थी । घरमें जो चार पैसे जमा थे बेकारीके दिनोंमें वे भी उड़ गए । अब ग़रीब कौड़ी कौड़िको मोहताज था । कौन देगा ? इस स्वार्थी, बे-परवाह झूठे संसार में उनकी सहायता कौन करेगा ? दुःखकी इस अँधेरी रातमें उनकी बाँह कौन थामेगा ? पन्नालालने चारों तरफ़ देखा, पर उसे कोई सहायक, कोई सज्जन, कोई अपना दिखाई न दिया । सभी पराए थे, सभी बेरहम थे ।

एक दिन एक अख़बार देख रहा था, एकाएक उसमें एक विज्ञापन दिखाई दिया । पन्नालाल चौंक पड़ा । लाहौरके किसी रईसको एक लिखे-पढ़े चपरासीकी ज़रूरत थी, तनख़्वाह बीस रुपये महीना । पन्नालाल की आँखें चमकने लगीं । ऐसा मालूम हुआ, जैसे अँधेरेमें बिजली चमक जाए, या भूले भटक़ेको रास्ता सूझ जाए, या रास्तेमें पड़ा हुआ धन मिल जाए । इसमें शक नहीं, वह ख़ानदानी आदमी था । उसे आत्म-सम्मान और मान-मर्यादाका बहुत ख़याल था । मगर अब वह यह छोटी नौकरी करनेको भी तैयार था । जो पंखी ऊँचे आकाशमें उड़ता है, उसीके पंख कट जाएँ, तो ज़मीनपर भी रेंगने लगता है ।

पन्नालाल भागा भागा माँके पास गया और बोला—यह नौकरी मिल जाए तो कर लूँ ? क्या सलाह है ?

माँने आँखोंमें आँसू भर कर जवाब दिया—लोग क्या कहेंगे ? यह भी कोई नौकरी है ? ज़रा सोचो तो सही बेटा ।

पन्ना०—बहुत सोचा । अच्छी न मिले तो बेकार कब तक बैठा रहूँ ?

माँ—कहीं मुँह दिखानेके लायक न रहोगे ।

पन्ना—पर रोटी तो मिल जाएगी ।

माँ—ऐसी नौकरी हमारे वंशमें आजतक किसीने नहीं की ।

पन्नालालने बे-परवाईसे कहा—अब उन बातोंको भूल जाओ । या आनका ख्याल करो, या जानका ख्याल करो ।

माँ ठण्डी साँस भरकर बोली—मुझे अमृतलालसे यह आशा न थी । आदमी क्या है, राजस है । मरते समय यह धन छातीपर लादकर ले जाएगा क्या ? हम भूखों मरते हैं, वह ऐश करता है । लहू सफ़ेद हो गया ।

पन्ना० —मेरे सामने उसका नाम न लो । कहो, यह नौकरी कर लूँ या ख्याल छोड़ कर बैठ रहूँ ?

माँ—कर लो । जब परमात्माने ग़रीबी दी है, तो फिर अमीरोंका अहङ्कार कैसा ! ।

पन्नालाल लाहौर पहुँचा । किसमत अच्छी थी, जाते ही नौकरी मिल गई । पन्नालालने शान्तिकी साँस ली । यह नौकरी न थी, उसके सौभाग्यके द्वार थे । आज तक माँगता था, अब अपने बाहु-बलसे कमाने लगा । दो-चार दिन शरम रही, इसके बाद भाग गई ।

जनवरीकी पहली तारीख थी। दोपहरके समय रायबहादुर लखपतरायकी कोठीमें एक मोटर दाखिल हुआ। पन्नालालने दौड़कर दरवाजा खोला, और वह नम्रतासे एक तरफ़ खड़ा हो गया। सहसा उसकी दृष्टि मोटरमें बैठे हुए आदमीपर पड़ी। उसके पैरोंतलेसे ज़मीन खिसकने लगी। वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया—ये दीवान अमृतलाल थे। पन्नालालकी आँखोंमें ज़मीन-आसमान सब घूमने लगे। उसका शरीर, उसका दिल, उसका दिमाग़ घृणा, क्रोध और लज्जाकी अग्निमें खौलने लगा। हम दूसरोंके सामने घृणितसे घृणित काम भी कर सकते हैं, पर अपने सम्बंधियोंके सामने सिर झुकाते हुए भी लज्जा आती है। हम इसे सहन नहीं कर सकते। ऐसे समयमें हमारी देहमें आग लग जाती है।

पर दीवान साहबने उसे न पहचाना। वे बड़े आदमी थे। ग़ाज़ उन्हें रायसाहबका खिताब मिला था। वे अखबार हाथमें लिए लखपतरायके पास पहुँचे और बोले—भाई! वधाई दो! मुझे खिताब मिल गया। यह देखो अखबार। अब मैं रायसाहब हूँ।

शामको थानेपर सचना पहुँची कि रायबहादुर लखपतरायके चपरासीने आत्म-हत्या कर ली है। यह समाचार ऐमनाबाद पहुँचा, तो वहाँ कुहराम मच गया। पन्नालालकी माँ और बहनें पछाड़ें खाती थीं। लोग कहते थे, लड़का क्या मरा, सारा घर ही अनाथ हो गया। अब इनका कोई सहारा नहीं रहा। एक लड़केपर आशा थी, भगवानने वह भी छीन लिया। अब इनका क्या बनेगा। रोटीके टुकड़े टुकड़ेको लाचार हो गए।

इधर लाहौरमें राय साहब दीवान अमृतलालके यहाँ जलसा हो रहा था, और लोग उन्हें हँस हँसकर वधाई दे रहे थे। जब जलसा समाप्त हुआ तो दीवान साहबने खिताबकी खुशीमें पंजाब-हिन्दू अनाथालयको एक हजार रुपया दान दिया।

और दूसरे दिन सूबेके सारे अखबार उनकी स्तुतिसे भरे थे।

धर्मकी वेदीपर

१

सोलह सौ साल गुज़रे, सिसलीमें रोमन कैथोलिक लोगोंका राज्य था। प्रोटिस्टेंट ईसाई होना उस ज़मानेका सबसे बड़ा अपराध था। चोरो, डाकुओ, और हत्यारोंके लिए क्षमा थी, मगर प्रोटिस्टेंट ईसाइयोंके लिए क्षमा न थी। राज्य-कर्मचारियोंके अधिकार इतने अधिक थे कि जिसे चाहते, इस अपराधमें पकड़कर जुरमाना कर देते, कैद कर देते, गोली मार देते, कोई पूछनेवाला न था। प्रोटिस्टेंट अपनी जान छिपाते फिरते थे। उनको खुल्लम-खुल्ला यह कहनेका साहस न था कि हम प्रोटिस्टेंट हैं, वे छिप-छिपकर सभाएँ करते थे। दिलोंमें दम था, मुँहमें साहस न था। हाँ पकड़े जाते, तो झूठ न बोलते थे, न पाँव पीछे हटाते थे न मौतसे डरते थे। उस समय उनके धर्म प्रेमको देखकर लोग दंगरह जाते थे। कर्मचारी कहते, तुम केवल इतना कह दो हम प्रोटिस्टेंट नहीं हैं, छूट जाओगे और बच जाओगे। प्राणा-रक्षाकी यह सीधी-साधी और सरल विधि थी ! मगर वे सूरमा थे, प्राण दे देते थे, वे कायर न थे, प्रण न देते थे। जब उनके सिर हथौड़े मार-मारकर चूर-चूर किए जाते थे, जब उनकी आधी देह भूमिमें गाड़कर उनपर खूनी कुत्ते छोड़े जाते थे, तो दुश्मनोंकी आँखें भी सजल हो जाती थीं मगर उन धर्म-वीरोंका उत्साह भंग न होता था,

न मुँहपर मलाल आता था, न आँखमें पानी आता था । हँसते हँसते मरते थे; मरते मरते हँसते थे । यह शरीरकी शक्ति न थी, मनकी मस्ती थी । यह दुनियाकी दिलेरी न थी, धर्मका धीरज था । आदमी काहे को थे, परवाने थे ।

इस अँधेरे और अन्यायकी अमलदारी यों तो सिसलीके सारे इलाकेपर थी, मगर सिसलीकी राजधानी अकतानियाकी दशा तो अकथनीय थी । उसका अनुमान करना भी आसान नहीं । उस समय वहाँका गवर्नर कैतयानस था । सिसलीके आसमानने ऐसा अन्यायी, ऐसा सख्त ऐसा अय्याश गवर्नर कम देखा होगा । वह खड़े-खड़े आदमियोंकी खाल उतरवा लेता था, जीते-जागते आदमियोंको ज़मीनमें दबवा देता था । लोग तड़पते थे, और वह मुस्कराता था । मानों वे जीते जागते आदमी न थे, मरी मिट्टीके लोंदे थे । और ईसाइयोंके लिए तो वह जमदूत था । उसने अकतानियामें आते ही एक घोषणा की, जिसमें साफ़ साफ़ कह दिया कि मैं इस शहरके प्रोटेस्टेंट ईसाइयोंको चुन चुनकर मौतके घाट उतारूँगा । मुझसे पहला गवर्नर बहुत रहमदिल था, उसके राज्यमें तुमने बड़े बड़े ऐश किए हैं । मगर अब वह ज़माना नहीं है, अब कैतयानसकी हुकूमतमें साँपों और बिच्छुओंके लिए जगह है, शेरों और भेड़ियोंके लिए जगह है, बीमारियों और बागियोंके लिए जगह है, प्रोटेस्टेंट ईसाइयोंके लिए जगह नहीं । मैं अकतानियाकी पुण्य-भूमिसे इस पाप-कालिमाका निशान भी मिटा दूँगा । और यह केवल धमकी नहीं थी, अकतानियाकी भविष्य-नीतिकी घोषणा थी । ईसाई-प्रजा सहम गई । अब पुलिस जहाँ-तहाँ छापे मारने लगी । पहले आग कहीं-कहीं सुलगती थी, अब उसकी ज्वाला चारों ओर फैल गई । प्रोटेस्टेंट ईसाइयोंकी परीक्षाका समय आ गया ।

कैतयानसमें इससे भी बड़ा ऐब यह था कि वह विषयासक्त भी था । सदा सौन्दर्य और सुराको ढूँढ़ा करता था । उसके राज्यमें किसी सुन्दरीका सतीत्व सुरक्षित न था, जिसे चाहता, महलमें पकड़ मँगवाता और इज्जत लूट लेता । उसके सामने सिर उठानेकी किसीमें हिम्मत न था । वह गवर्नर था और उसके पास सेना थी, घोड़े थे, शस्त्र, शक्ति, शासन सब कुछ था । उसके सामने कौन बोलता ?

रातका समय था, अकतानियाके गली-कूचोंमें अँधेरा छाया हुआ था । मगर कैतयानसका राज-भवन चंद्रमुखी युवातियोंकी ज्योतिसे जगमगा रहा था । कैतयानस मांस और मदिराके मदमें मस्त था, और सौंदर्य और सुरासे चमकते हुए कमरेमें बैठा अपने रसिक मित्रोंमें डींग मार रहा था—सच कहना ! क्या मैंने अपना इस आधी रातकी सौरभ-सभामें अकतानियाकी सबसे सुंदर कामिनियोंको जमा नहीं कर लिया ? मुझे सच बताओ, मैं झूठसे नफ़रत करता हूँ ।

सब दोस्तोंने गर्दन झुका दी और कहा—ठीक है । मगर सैलोनियस चुप रहा । यह चुप्पी न थी, कैतयानसके अभिमानका अपमान था । कैतयानसकी देह क्रोधकी आगमें जलने लगी । बोला—क्यों सैलोनियस ! तू चुप क्यों है ? क्या तुझे मेरी बातमें शक है ?

सैलोनियस बोला—गवर्नर ! मुझे आपके कथनमें शक नहीं, न मुझमें यह साहस है । मैं स्वीकार करता हूँ कि आपके सामने इस सुन्दर शहरकी सबसे सुन्दर युवातियाँ हाज़िर हैं । मगर अभी यह चुनाव अधूरा है । तारे हैं, पर चाँद नहीं है ।

कैतयानस—तू बदतमीज़ है, और बेवकूफ़ है । तू नहीं जानता, तू क्या बक रहा है । मगर मैं तुझे माफ़ करता हूँ । तू नशे में है ।

सैलोनियस—मैं नशेमें ज़रूर हूँ, मगर बे-होश नहीं हूँ। मैंने जो कुछ कहा है, सोच समझकर कहा है।

कैतयानस—तो क्या अकतानियामें कोई ऐसी सुन्दरी भी है, जो चन्द्रमाकी इन बेटियोंसे खूबसूरत है और यहाँ — ?

सैलोनियस—हाँ सरकार है।

कैतयानस—अगर है, तो बोल, उसका नाम क्या है।

सैलोनियस—अगथा।

कैतयानस चौंक पड़ा। उसे इसपर विश्वास न आया कि अगथा उन परियोंसे सुन्दर होगी। उसने अपने माथेपर हाथ फेरा और कहा—मगर मैंने यह नाम आजसे पहले कभी नहीं सुना। साफ़-साफ़ कह, क्या वह सचमुच ऐसी सुन्दरी है ?

सैलोनियस—बस ! कुछ न पूछिए, अकतानियाकी शोभा है।

कैतयानस—(हैरानीसे) अच्छा !

सैलोनियस—जिसने अकतानिया में उसे न देखा, उसने अकतानियाका कुछ भी न देखा।

कैतयानस—मुझे मालूम ही न था।

सैलोनियस—ये औरतें उसके सामने कोई चीज़ ही नहीं हैं। वह यहाँ आ जाए, तो यह जगह जगमगाने लगे। आंखें चुंधिया जाएं आपकी।

कैतयानस—तो उसे कल यहाँ बुलवाओ।

सैलोनियस—आप देखकर दंग रह जाएँगे। स्त्री नहीं, परी है। आपका हृदय खिल उठेगा। पर आसानीसे बसमें न आएगी। ऊँचे

कुलकी कन्या है, माता-पिता मर चुके हैं, अब अकेली रहती है और चांदी-सोनेको मिट्टी समझती है। आप देखेंगे, तो मुझे इनाम देंगे। और आपको मालूम हो, मैं झूठ नहीं बोलता।

कैतयानस—इसका फैसला कल होगा। देख-भालकर, जाँच-तौलकर मुकाबिला करके। हम इस समय कुछ नहीं कहते।

सैलोनियस—मगर आप कल बहुत कुछ कहेंगे।

विषय-वासनाकी आगपर तेल पड़ गया। कैतयानस कुछ देर चुप रहा, फिर बोला—मैं कल आप उसके पास पहुँचूँगा।

३

यह कहकर कैतयानसने मित्र-मण्डलीको उठनेका इशारा किया, और खुद जाकर पलंगपर लेट गया। मगर उसे नींद न आई। सारी रात अगथाकी ख्याली तसबीर उसकी आँखोंमें फिरती रही। सोचता था, कब दिन चढ़े और कब जाकर उसे देखे। आज उसका राजसी बिस्तर अंगारोंकी तरह गरम था। उसपर लोटता था और तड़पता था। बार बार उठता था और आकाशके तारोंको देखकर झुंझलाता था। यह रात मामूली रात न थी, वियोगकी रात थी, जो धीरे-धीरे गुज़रती है। अगर उसके बसकी बात होती, तो वह इस चिन्ताकी रात और रातकी चिन्ता, दोनोंको क्षण-भरमें समाप्त कर देता। मगर प्रकृति अपने नियमोंको किसीकी खातिर नहीं बदलती।

आखिर दिन निकला। कैतयानसने अपना शाही लिबास पहना, और अपने अस्तबलके सबसे खूबसूरत धोड़ेपर सवार होकर राजमहलसे बाहर निकला। थोड़ी देर बाद वह अगथाके शांति-भवनके सामने खड़ा दिलमें सोच रहा था, उसे कैसे देखूँ? वह गवर्नर था। अगथा उसकी

प्रजा थी। वह उसके मकानके अन्दर जा सकता था। वह उसे बाहर बुला सकता था। यह सब कुछ उसके लिए ज़रा भी मुश्किल न था। मगर वह फिर भी सोच रहा था, क्या करे ?

सहसा दरवाज़ा खुला और एक भोली-भाली लड़की फूल चुननेकी टोकरी लिए बाहर निकली। उसके मुँहपर चाँदकी चाँदनी, कुसुमकी कोमलता, और प्रभातकी प्रतिभा थी, और उसके साथ बसन्तकी बहार थी। कैतयानसने उसे देखा, और सब कुछ समझ गया। यही अगथा थी, रूपवती लज्जाशील, मनको मोह लेनेवाली। यह स्त्री नहीं थी, देवी थी। उसके यौवनमें बदल जानेवाली, मर जानेवाली, नष्ट हो जाने वाली पार्थिव शोभा न थी, स्वर्गकी सुन्दरता थी, जो कभी नाश नहीं होती। यह मोहिनी मूर्ति उन पाप-पूर्ण वासनाकी बेटियोंसे कितनी ऊँची और पवित्र थी ? उनके साथ इसकी तुलना भी नहीं की जा सकती थी। कैतयानस हत-बुद्धि-सा रह गया। उसने आगे बढ़ना चाहा, मगर वह आगे न बढ़ सका। उसने बोलना चाहा, मगर उसकी जीभ गूँगी हो गई, और उसके शब्द उसके ओंठोंपर जम गए। जीतने आया था, हारकर लौट गया।

अब कैतयानसको ज़रा चैन न था, हर समय हारा हारा रहता था, जैसे जीवनमें ज्योति न रही हो। न वह दिनकी दिलचस्पियाँ थीं, न वह रातकी रंगरेलियाँ। उसके मनमें आग सी लग गई।

एक दिन सैलोनियसने पूछा—यह आपको हो क्या गया ? अब वह पहली-सी बात ही नहीं रही !

कैतयानसने ठंडी आह भरकर जवाब दिया—बड़े निर्दयी हो ! आप ही आग लगाते हो, आप ही गिला करते हो, कि यह धुआँ काहेका है ? क्या तुम नहीं जानते ?

सैलोनियसको उस आधी रातकी बातका ध्यान भी न था, हैरान होकर

बोला—यह आप क्या कह रहे हैं ? मुझे तो ख़याल ही नहीं कि मैंने क्या किया है ?

कैतयानस—अरे तो क्या तुम बिलकुल भूल गए ?

सैलोनियस—अब सरकार क्या बोलें ?

कैतयानस—उस रात तुमने कहा था, कि इस शहरमें एक लड़की है, जिसके बिना हमारा परिस्तान सूना है ।

सैलोनियस—(याद करनेकी कोशिश करते हुए) मैंने कहा था ?

कैतयानस—हाँ तुमने कहा था, तुमने !

सैलोनियस—आश्चर्य है, मुझे ज़रा भी याद नहीं । नशेमें बक दिया होगा कुछ ऊल-जलूल ।

कतयानस—तुमने उसका नाम भी बताया था ।

सैलोनियस—खूब रही ! क्या नाम बताया था मैंने ?

कैतयानस—बूझ जाओ ! (मुस्कराकर) अगथा ।

सैलोनियस—(चौंककर) सरकार ! नशेमें था, मगर नाम ठीक बताया था । ऐसी सुन्दरी हमारे सारे सिसलीमें नहीं सरकार ! सुन्दरी क्या है, चन्द्र-लोककी परी है । आप एक बार देखें तो सही उसे ।

कैतयानस—मैं देख भी आया, तुम्हारा कहना ठीक है ।

सैलोनियस—मैंने ऐसी लड़की सारी उम्रमें नहीं देखी ।

कैतयानस—अब आँखें उसे भूलती ही नहीं हैं ।

सैलोनियस—तो मुशकिल क्या है, आज आज्ञा कीजिए, आज आपके पास आ जाएगी । आपका कहना कैसे टाल सकेगी ? आखिर वह आपकी प्रजा है । आप उसके हाकिम हैं ।

कैतयानस—तुम मेरा मतलब नहीं समझे । (थोड़ी देर बाद) मैं उससे ब्याह करना चाहता हूँ ।

सैलोनियस—बड़ा शुभ विचार है। उसके तो भाग जाग उठे, बैठी राज करगी।

कैतयानस—तुम एक काम करो। कोई समझदार स्त्री बुलाओ, जो उसे मना ले। वह मुझसे डरती है। जब तक उसका डर न निकलेगा, यह काम बनना मुश्किल है। समझ गए ?

सैलोनियस—मगर ऐसी स्त्री कौन हो सकती है ?

कैतयानस—अब यह भी हम ही बताएँ। (मुस्कराकर) अफ़रोडेसियाको बुलाओ।

सैलोनियस—(उछलकर) वाह साहब ! खूब सोचा आपने। अब परी शीशेमें उतरी समझिए। अफ़रोडेसिया सब कुछ ठीक कर लेगी। वह औरत नहीं, जादूगरनी है। उसके लिए कोई बात मुश्किल नहीं मगर अगथाने कह दिया, मैं ब्याह न करूँगी।

इसके बाद छ महीने तक कैतयानस वह सब कुछ करता रहा, जो एक प्रेमी और पागल कर सकता है। उसने पत्र लिखे, संदेसे भेजे, प्रलोभन दिए, दीनता प्रकट की, आत्म-हत्याकी धमकी दी। मगर अगथापर किसीका भी असर न हुआ। उसने कहा—मैं ब्याह नहीं करूँगी, और इस निश्चयसे वह ज़रा भी विचलित न हुई। आखिर प्रेमने शत्रुताका रूप धारण कर लिया। कैतयानस हाकिम था ! एक लड़कीकी इतनी मजाल कि वह इस तरह उसकी बे-इज्जती कर सके ! और वह भी प्रोटिस्टेंट ईसाई लड़की ! हाँ, वह प्रोटिस्टेंट ईसाई थी और उसे नीचा दिखाना ज़रा भी मुश्किल न था। और कैतयानस जानता था, कि अगथा प्रोटिस्टेंट है, और देशका क़ानून उसकी ज़रा भी सहायता न करता था।

अगथा इस समय उस दीपकके समान थी जिसके चारों तरफ़ कोई दीवार या कोई ओट न थी। ऐसा दीपक वायुके तेज़ भोकोसे कितनी देर बच सकता है ?

आखिर एक दिन अगथा गिरफ्तार हो गई। अकतानियाके लोग हैरान रह गए। किसीको मालूम न था, कि अगथाका अपराध क्या है। हजारों लोग कचहरीपर टूट पड़े। उनके दिलमें सहानुभूति थी पर साहस न था। न बाँहोंमें बल था। अगथा उनके शहरकी शोभा थी। उसने कभी किसीसे बुरा सुलूक न किया था, किसीका दिल न दुखाया था। ग़रीब-अमीर सब उसके शुभचिन्तक थे, दुश्मन कोई भी न था। उसे इस संकटमें देखकर लोग लहूके आँसू रोते थे। पर कुछ कर न सकते थे।

अगथा कचहरीमें पहुँची। कैतयानसने पूछा—तू कौन है ? तेरे माँ-बाप कौन हैं ? तेरा धर्म क्या है ?

दर्शकोंके दम रुक गए। वे सोचते थे, कहीं यह लड़की प्रोटिस्टेंट ईसाई तो नहीं। अगर ऐसा हुआ, तो ग़ज़ब हो जाएगा। कैतयानस क़साई है, वह कभी दया न करेगा। सब आँखें अगथा चेहरेपर थीं, मगर वहाँ कोई चिन्ता, आत्मिक वेदनाकी कोई रेखा न थी। उसने गरदन उठाकर जवाब दिया—मेरा नाम अगथा है। मेरे माँ-बाप अकतानियाके निवासी थे। मैं ईसा मसीहकी दासी हूँ।

कैतयानसके दिलकी मुराद पूरी हो गई। समझा, अब यह मेरी मुठ्ठीमें है, बचकर जाती कहाँ है ? प्रकटमें बोला—क्या तुझे मालूम है कि हमारे देशमें इस अपराधके लिए मौतका दंड दिया जाता है ?

अगथाने निःसंकोच-भावसे जवाब दिया—मुझे मालूम है।

कैतयानस—और तू फिर भी कहती है तू प्रोटिस्टेंट ईसाई है ? जानती है, इसका परिणाम क्या होगा ?

अगथा—जानती हूँ।

कैतयानस—क्या जानती है ? बता।

अगथा—मैं सब समझती हूँ, नादान नहीं हूँ। मगर क्या करूँ, धर्म छोड़ना मुश्किल है। जान दूँगी, धर्म न दूँगी।

कैतयानस—यह निर्भयता मौतको सामने देखकर स्थिर न रहेगी।

अगथा—इसकी भी परीक्षा हो जाएगी। अगर मैं मरनेको तैयार नहीं, तो मैं ईसाई होनेके योग्य नहीं।

कैतयानस—ज़रा समझ-सोचकर जवाब दे, यह मामूली सवाल नहीं, जीवन और मौत का सवाल है।

अगथा—सब सोच चुकी। वीरोंके लिए जीवन और मौत दोनों बराबर हैं।

कैतयानसको क्रोध चढ़ आया। अगथाके वाक्य वाक्य न थे, लोहेके तीर थे। उनमें गवर्नरके लिए घृणा और अवहेलना थी। कैतयानसके दिलमें भाले चुभ गए। उसने क्रोधसे होठ काटे, और सिपाहियोंसे कहा—कैदखानेमें ले जाओ, कल फैसला करूँगा। और इसका फैसला लोगों की आँखें खोल देगा।

सारे शहरमें शोर मच गया। लोग कहते थे, यह न्याय नहीं, अंधेर है। कितनी धर्मात्मा लड़की है ! उसे देखकर आँखें खुश हो जाती हैं। बोलती है तो मुँहसे फूल झड़ते हैं। चलती है तो ज़मीन खूबसूरत हो जाती है। क्या अब इसे भी मृत्यु-दंड दिया जाएगा ?

रातको जब सब लोग सो गए और अकतानियाके गली-कूचे सुनसान हो गए, तो कैतयानस अपने राज-महलसे निकला और बंदी-गृहको चला, जहाँ उसका जीवन, उसका जगत, उसका भावी संतोष सोता था। उसे देखकर, कैदखानेके पहरदारोंने दरवाजा खोल दिया, और एक तरफ़ खड़े हो गए। कैतयानस अन्दर चला गया, और कैदखानेके दारोगासे बोला—मैं अगथासे मिलना चाहता हूँ। मुझे उसकी कोठड़ीमें ले चल।

थोड़ी देर बाद वह उसकी कोठड़ीमें था । उस समय कोमलांगी अगथा कैदखानेकी वज्र-भूमिपर बेसुध पड़ी सो रही थी; पर उसके चेहरेपर चिन्ता और मलिनताका कोई चिह्न न था । वस्त्र कैदियोंके थे, शक्ल-सूरत राजकुमारियोंसे भी बढ़कर थी । रूपको बुरे कपड़े भी नहीं छिपा सकते । कैतयानसने कुछ क्षणोंतक लोभी आँखोंसे उसके मुँहकी तरफ़ देखा, और तब आगे बढ़कर और उसके कंधेपर हाथ रखकर कहा—अगथा देख । तेरे सामने कौन खड़ा है ?

५

अगथा चौंककर उठ बैठी । उसने घबराकर इधर-उधर देखा, और समझ न सकी कि वह कहाँ है ! धीरे धीरे उसे उस दिनकी सारी घटनाएँ याद आ गईं । उसने अपने बिखरे हुए बालोंको बाँधा, अव्यवस्थित वस्त्रोंको संभाला, और खड़ी होकर बोली—तुमको क्या अधिकार है कि अकतानियाकी किसी कुँवारी कन्याके पास रातके समय आ सको ?

शब्द सख्त थे; पर कैतयानसको सख्त मालूम न हुए । अगथाके रूपने उसके शब्दोंकी सख्ती छीन ली थी । धीरेसे बोला—मैं तुम्हारे रूपका पुजारी हूँ और पुजारी अपनी देवीके मंदिरमें जब चाहे, आ सकता है । उसे कोई नहीं रोक सकता ।

अगथा समझ गई । उसका मुँह पीला पड़ गया । उसकी आँख निस्तेज हो गई । वह कोई जवाब न दे सकी ।

कैतयानसने फिर कहा—अगथा ! मैंने तुमसे कितनी बार बिनती की, मुझसे ब्याह कर लो, मगर तुमने हर बार मेरी बिनती ठुकरा दी । मैं अकतानियाका गवर्नर हूँ । सिसलीका बादशाह मुझपर मेहरबान है । मेरे पास धन है । मैं बीमार नहीं हूँ, मैं बदसूरत नहीं हूँ, मैं बूढ़ा नहीं हूँ । फिर तुम क्यों नहीं मान जातीं ? अगथा ! मैं झूठ नहीं कहता । मैं अपन

आपको बहुत कुछ समझता था, मगर जिस दिनसे तुम्हें देखा है, उस दिनसे मेरी धारणा बदल गई है। मैं समझता था, मैं गवर्नर हूँ, मेरे हाथमें शक्ति है; मैं जो चाहूँ, कर सकता हूँ। मगर तुम्हारे सामने आता हूँ, तो मेरी सारी शक्ति नष्ट हो जाती है। अब मुझपर दया करो, और मुझसे ब्याह कर लो। और मैं आकाशके अमर तारोंकी सौगंध खाकर कहता हूँ कि मुझसे कोई ऐसा काम न होगा जिससे तुम्हारा मन दुखनेकी संभावना हो—मैं तुम्हारी पूजा करूँगा, तुम्हारी हरएक आज्ञाका पालन करूँगा। तुम्हें अपने मन-मन्दिरकी देवी समझूँगा। आदमी इससे ज्यादा और क्या कर सकता है ?

अगथाने उसकी इस बातको सुना, और उत्तर दिया—मैं इसका जवाब बहुत देर पहले दे चुकी हूँ और आज भी जब कि मेरी स्थिति बदल गई है और मेरी आज्ञादीपर तुम्हारे हाथों वज्राघात हो चुका है, मेरा जवाब वही है। तुम्हें जो कुछ कहना था, तुम कह चुके, अब मेरा जवाब सुन लो। मुझे मौत मंजूर है, पर तुम्हारे साथ ब्याह मंजूर नहीं। तुम जो कुछ चाहो, कर लो और तुम देखोगे, मैं किसी भी हालतमें तुम्हारे खूनी हाथोंको चूमनेके लिए तैयार नहीं। रातका समय खुदाने आराम और विश्रामके लिए बनाया है। जाओ, आराम करो और आराम करने दो। राज्यके अपराधीसे इस समय तुम्हारा कोई काम नहीं। कचहरी दिनके समय होती है।

कैतयानसका सिर चकराने लगा। उसकी आँखोंसे आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं। वह न जानता था, क्या करे ? वह आत्माभिमानी था। वह हाकिम था। उसने शासन किया था। वह आज्ञा देनेके लिए पैदा हुआ था। उसकी आज्ञाओंका पालन होता था—और आज उसने अपना सिर एक मामूली लड़कीके पाँवपर झुकाया और उसने उसे घृणासे ठोकर मारकर परे हटा दिया। यह ऐसा अनादर था कि वह इसे सहन न कर सका। वह क्रोधसे पागल हो गया।

उसने अपना पाँव ज़ोरसे ज़मीनपर मारा और कड़ककर कहा—तू अपनी मौत बुला रही है। तेरी सुंदरताको मेरी आँखें देखती हैं, जल्लादकी तलवार न देखेगी।

यह कहकर कैतयानस बाहर निकल गया और अपने पीछे उस काल-कोठड़ीका दरवाजा बंद कर गया। यह एक झूठे आदमीका झूठा प्रेम था, जो आगकी एक आँच भी नहीं सह सकता और क्रोधका विकराल रूप धारण कर लेता है। विशुद्ध प्रेम कभी क्रोध नहीं करता, न बदला चाहता है। वह आप कष्ट उठाता है; मगर अपनी प्रेमिकाकी आँखमें आँस नहीं देख सकता।

कैतयानसने दूसरे दिन हुक्म दिया—अगथाको अज़ाब दिया जाए।

६

लोगोंके होश उड़ गए। सारे शहरमें कोलाहल मच गया। अब तक पुरुष मरते थे, अब स्त्रियोंकी बारी आ गई। कचहरीके बाहर खुले मैदानमें अकतानियाके निवासी इकट्ठे थे। वह देखना चाहते थे, कि देखें अब क्या होता है? चारों तरफ़ पुलिसके आदमी थे कि कहीं बलवा न हो जाए। बीचमें अगथा खड़ी थी और लोगोंसे कह रही थी—मैं भाग्यवान् हूँ जो मुझे यह मौत नसीब हो रही है! हर एकको यह सुनहरा अवसर प्राप्त नहीं होता। यह मामूली मौत नहीं है, शहीदोंकी मौत है, जो जीवन और जीवनके सुखोंसे भी बढ़कर है। इससे जातियाँ उन्नत होती हैं, धर्म अमरपथपर चलते हैं, देशोंमें जीवन पैदा होता है। आदमी अपनी मौत हर रोज़ मरते हैं, शहीदोंकी मौत कोई कोई भाग्यवान् ही मरता है। क्या तुम जानते हो मैंने क्या पाप किया है?

लोगोंने एक स्वरसे चिल्लाकर कहा—तू निर्दोष है।

अगथा—तो इससे बढ़कर खुशी और क्या हो सकती है कि मैं

अपने धर्मकी वेदपर निर्दोष कुरबान हो रही हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरी मौत मेरे धर्मके भाइयोंमें कभी न मरनेवाला जीवन छिड़क देगी। यह मौत जीवनसे भी बढ़कर है। मुझे इसपर गर्व है, मेरे लिए अफसोस न करो, मुझे बधाई दो। मुझे आसमान की बादशाही मिलेगी।

एकाएक जन-समूहमें हलचल मच गई। कैतयानस आ रहा था। लोगोंके दिल दहल गए। कैतयानसने अगथाके निकट जाकर कहा—अगर तू अब भी अपने-धर्मका त्याग कर दे और हमारे रोमन गिरजेमें चलकर प्रायश्चित्त कर ले, तो मैं तुझे बरी कर दूँगा।

लोग डर गए; मगर अगथा उसी तरह अभय खड़ी थी। उसने ऊँची आवाज़से कहा—मैं अकतानियाके इस महान् जन-समूहमें ऊँची आवाज़से कहती हूँ, कि मैं प्रोटिस्टेंट हूँ; और चाहे तुम मेरे एक हाथपर चाँद और दूसरेपर सूरज रख दो, मैं तब भी अपना धर्म बदलनेको तयार नहीं। मैं अपनी बात कह चुकी; अब तुम जो चाहो, कर लो।

जो प्रोटिस्टेंट थे, वे खुश हुए; जो प्रोटिस्टेंट नहीं थे, वे हैरान हुए; मगर कैतयानस क्रोधसे पागल हो गया। उसने अपने सिरको जोरसे हिलाया और हुक्म दिया—शिकंजा लाया जाए।

शिकंजा लाया गया। यह लोहेका नहीं, मौतका शिकंजा था। उसे देखकर, दर्शकोंके दिल धड़कने लगे; मगर अगथा बेपरवा खड़ी उस यन्त्रकी ओर देखती रही। फिर वह हँसती हुई आगे बढ़ी और अपने कोमल हाथ-पाँव मौतके मुँहमें डाल दिए। कैसा साहस था, कैसा हृदय, जो मौतके सामने भी भय-भीत नहीं होता! उसे यन्त्रणाकी चिन्ता न थी, मरनेकी चिन्ता न थी। उसे केवल धर्मरक्षाकी चिन्ता थी। यह एक अबलाकी परीक्षा न थी। यह अगथाकी परीक्षा न थी। यह एक धर्मकी परीक्षा थी, जिसकी कसौटी मृत्युकी आगके सिवाय और कोई नहीं है। शिकंजा कसा गया। उसके अगणित कील अगथाके कोमल शरीरमें

चुभ गए। हड्डियां टूट रहीं थीं, रुधिर बह रहा था, लोग रो रहे थे; मगर अगथाकी आँखोंमें पानी न था, न जीभपर आहका शब्द था। वह उसी तरह सतेज, सचेत, सतर्क खड़ी थी।

कैतयानसने यह अभूत-पूर्व धैर्य देखा, तो उसे और भी आग लग गई। उसने हुक्म दिया—शिकंजा खोल दो, और इसे ज़िंदा आगमें जला दो। यह जादूगरनी है।

आग जलाई गई और इसके साथ ही अकतानियाके हजारों दिलोंमें आगकी ज्वाला उठने लगी। कैतयानस बाहरकी आग देखता था और खुश होता था; मगर उसकी अन्धी आँखें दिलोंकी उस आगको न देखती थीं, जो विधाताने उसकी आगके मुक़ाबिलेमें जलाई थी। आग प्रचंड हुई, तो अगथाके गोरे सुन्दर हाथ-पाँओंको लोहेकी जंजीरोंसे बाँधा गया। अब दर्शकोंके दिलकी आग उनकी आँखोंमें आ गई थी; मगर कैतयानसकी आँखें इस ओरसे अभी तक बंद थीं। वह दुनियाको दिखाना चाहता था कि आदमी अन्धा होकर कितना नीचे जा सकता है? उसने कुछ सोचा और फिर कहा—इस पापिनीको इस आगके ऊपरसे घसीटो। इसकी सजा मौत है।

कितना भयानक दंड था, जिसकी कल्पनासे ही देहका खून जम जाता है! मगर अगथा अब भी शान्त थी। जैसे उसका इस सज़ासे कोई सरोकार ही न था। देखते देखते जल्लादोंने उसे आगके ऊपरसे घसीटना शुरू कर दिया। आगकी ज्वाला उठी, जैसे कोई किसीका स्वागत करनेको खड़ा हो जाए। उसके कपड़े देखते-देखते जल गए। अब वह नंगी थी। अकतानियाकी सबसे खूबसूरत, सबसे लज्जावती कुंवारी कन्याकी यह बेपर्दगी देखकर लोग सहन न कर सके। उनका खून खौलने लगा, वे होठ काटने लगे। अगथा जल रही थी, आगमें पड़े हुए शीशेके छोटे छोटे टुकड़े उसके शरीरमें चुभ रहे थे,

खूनके क़तरे आगपर गिरकर जल रहे थे और परमात्माका न्याय यह सब कुछ चुपकी आँखों देख रहा था ।

तब एक आदमीने आगे बढ़कर कहा—अकतानिया—निवासियो ! तुमको लज्जासे डूब मरना चाहिए । यह राजस, यह नरपिशाच कैतयानस तुम्हारे शहरके गौरवको पाँवतले मसलता है, उसे बिना किसी अपराधके ज़िन्दा आगमें जलाता है और तुम सामने खड़े मुँह देखते हो । अगर तुम मर्द हो, अगर तुम्हारी नसोंमें लहू और लहूमें जीवनकी आग है; अगर तुम्हारे सीनोंमें दिल और दिलमें जातीय प्रेम है; अगर तुम सभ्य हो और सभ्यताका लेशमात्र भी तुममें बाकी है तो अपना क़हर और क्रोध लेकर खड़े हो जाओ और इस खूनी भेड़िएको ज़िन्दा न जाने दो । इसकी ज़िन्दगी तुम्हारी मौत है; इसकी मौत तुम्हारी ज़िन्दगी है ।

दर्शक आगे बढ़े । कैतयानसने हुक्म दिया—पकड़ लो, यह विद्रोही हैं । मैं इन्हें भी सज़ा दूंगा ।

मगर समय पूरा हो चुका था । सिपाही भी बागी हो गए । उन्होंने हाथियार फेंक दिए और कहा—हमसे यह न होगा ।

लोगोंका उत्साह बढ़ गया । अब पुलिस भी उनके साथ थी । उन्होंने पुलिसके फेंके हुए हाथियार उठा लिए, और ज़ोर-ज़ोरसे चिल्लाने लगे—कैतयानसको जला दो । अगथाको आगसे निकाल लो । प्रोटिस्टेंट होना पाप नहीं है । हम जाग उठे हैं ।

कैतयानस यह देखता था, और ठंडी साँसें भरता था । अब वह जान छिपाता फिरता था । कहाँ जाए ? किधर भागे ? उसे कोई आश्रयका स्थान नज़र न आता था । समय कितनी जल्दी बदलता है । अभी हाकिम था, अभी अपराधी बन गया । वह डरता था कि अगर पकड़ा गया, तो लोग बोटियाँ नोच लेंगे । वह खुद दयाहीन था; उसे

किसीसे दयाकी आशा न थी। वह अपने महलकी तरफ नहीं गया, कचहरी की तरफ नहीं गया, किसी यार दोस्तके पास नहीं गया, अपनी फौजके पास नहीं गया; वह नदीकी तरफ भागा और एक मल्लाहकी नावमें बैठकर उससे बोला—मुझे पार उतार दे। मैं तुम्हें मालामाल कर दूँगा।

मल्लाहने उसे पहचान लिया और डर गया। उसे शहरका हाल मालूम न था। उसने नाव पानीमें डाल दी, और खेने लगा। कैतयानसने शान्तिकी साँस ली, और समझा कि प्राण बच गए। लोग किनारेपर खड़े देखते थे कि उनका शिकार हाथसे निकला जाता है और मल्लाहको गालियाँ देते थे। मल्लाह समझता न था कि मामला क्या है? और कैतयानस खुश हो रहा था। लोग किनारेसे निराश होकर लौट गए। मगर कर्म-फलने उसका पीछा अब भी न छोड़ा। उसकी राहमें कोई नदी न थी, कोई खाई न थी, कोई पानीकी लहरें न थीं। उसके कर्म-फलने उसे पकड़ लिया।

साँझका समय था। चारों तरफ सन्नाटा और अँधेरा था। कोई शब्द सुनाई न देता था, कोई शकल-सूरत दिखाई न देती थी। ऊपर नीला आसमान था, नीचे नदीका मैला पानी था और इन दोनोंके बीचमें एक नाव पापका भार उठाए धीरे-धीरे उस पार जा रही थी। मगर पापके लिए जीवनका किनारा कहीं नहीं है? उस नावपर दो घोड़े भी थे, वह दुलत्तियाँ भाड़ने लगे। देखते-देखते नाव उलट गई और कैतयानस उसकी मृत्यु-तुल्य लहरोंमें समा गया। मल्लाह और घोड़े बच गए। नाव भी पानीपर तैर रही थी; केवल कैतयानसकी लाशका पता न था। वह सोचता था-नदी पार उतरकर घोड़ेपर सवार हो जाएगा। मगर उसे क्या पता था कि उनमेंसे एक घोड़ा ही उसका काल बन जाएगा। वह अकतानियाकी आगसे निकल आया था; मगर परमात्माके पानीके प्रवाहसे

न बच सका। कितना बड़ा आदमी था, और कैसी शोचनीय मौत मरा, जिस पर कोई शोकके दो आँसू बहानेवाला भी न था।

उधर अकतानियाके लोग अगथाके गिर्द जमा थे और श्रद्धाके आँसू बहा रहे थे। मगर अगथा कहाँ थी? उसे लोगोंने आगके मुँहसे बचा लिया था; मगर मौतके मुँहसे न बचा सके। बहुत देर बेसुध रहनेके बाद उसने आँखें खोलीं और एक बार अपने चारों तरफ़ इस तरह देखा, जैसे कोई देवी अपने भक्तोंको देखती है और फिर सदाके लिए आँखें बंद कर लीं।

अब उसकी समाधिपर हर साल मेला लगता है और लोग उसके जीवनपर लैक्चर देते हैं।

जीवन और मृत्यु

१

हसन इकबाल

कितना ज़माना गुज़र गया, मगर आज भी वे दिन कलकी तरह याद हैं। जवानीके वे सुनहरे चमन बहारके वे खुशरंग फूल उम्मीदोंके वे दिलकश नज़ारे आज जाने कहाँ छिप गए ? दुनियाँके तारै-तरीके उसी तरह जारी हैं, उमंगोंके बाग़ आज भी अपनी जादू-भरी हवाओंसे जवानीके खूनको गरमा रहे हैं। मगर मेरे लिए और मेरे दिलके लिए उनमें कोई गरमी, कोई दिलकशी, कोई रंगीनी नहीं। सब कुछ सपना हो गया।

मैं और जहानआरा बचपनमें एक साथ खेले हैं। कैसे मासूम दिन थे, जब शरम-हयाकी बेड़ियाँ पाँवमें न पड़ी थीं। जहानआरा हुस्न और नज़ाकतकी पुतली थी; उसे देखकर मेरा दिल खुशीसे नाचने लग जाता था। मैं अपने आपमें न रहता था। मैं चाहता था, उसे कलेजेमें बिठा लूँ। मैं उसे सदा देखना और देखते रहना चाहता था। अकेला होता, तब भी उसीका ध्यान रहता। मुझे उससे मुहब्बत थी। यह मुहब्बत दुनियाकी हिंसे और हवाकी मुहब्बत न थी, न यह मुहब्बत कुछ दिनोंके

बाद बदल जानेवाली, मिट जानेवाली, मर जानेवाली मुहब्बत थी, जो बरसाती नालेकी तरह कभी किनारों तक उमड़ आती है, कभी बिलकुल खुश्क हो जाती है। यह खरी, असली, सच्ची, मुहब्बत थी, जिसके चश्मे बारह महीने जारी रहते हैं और जिसे सूरजकी सारी गरमी भी सुखाना चाहे, तो नहीं सुखा सकती। यही सबब है कि जहानआरा आज भी, जब कि दुनियाकी अनजान आँखें उसे देखनेसे कासिर हैं, अपने जोबनकी पूरी शान-शौकतसे मेरे सामने है और मेरी नींद और बेदारी दोनों पर हुकूमत कर रही है। और किसीमें मकदूर नहीं कि इस हुकूमतको मिटा सके।

२

बचपनका ज़माना था; दुनियादारीका दोनोंको खयाल न था। इर्द-गिर्दके हालसे बेखबर, माँ-बापकी मरजीसे बेपरवा, प्यार-मुहब्बतकी घाटियोंमें बड़े जाते थे और हमें इस बातका ज़रा भी ध्यान न था कि यह सफ़र कहाँ ख़त्म होगा। उस मुसाफ़िरकी तरह, जो आँखोंपर पट्टी बाँधकर दौड़ता जाए और यह न सोचे, न सोचनेकी ज़रूरत समझे कि रास्तेमें नदी-नाले पड़ते हैं, या काँटोंवाली झाड़ियाँ खड़ी हैं। मगर मैं ग़रीब था और मेरी जहानआरा अमीर बापकी बेटी थी। धीरे धीरे यह खाड़ी जो बचपनके पहाड़ोंमें पानीकी पतली-सी लकीर थी, बढ़ने लगी, फैलने लगी, चौड़ी होने लगी। यहाँ तक कि जवानीके मैदानमें पहुँचते-पहुँचते यही पानीकी मामूली धार एक दरियाकी सूरतमें तबदील हो गई। इधर मैं खड़ा था, उधर जहानआरा खड़ी थी और बीचमें गहरे पानीकी खौफ़नाक मौजें गरजती थीं। अब हमारी आँखें खुलीं, अपनी हिमाक़तपर पछताने लगे। पहले पता होता, तो यहाँ तक नौबत न पहुँचती। पहले प्यार बढ़ा था, अब प्यारकी चिंता बढ़ने लगी। कोई रास्ता नज़र न आता था, कोई सूरत दिखाई न देती थी। हम घबरा गए।

प्यार और खाँसी छिपाए नहीं छिपते । जब तक बच्चे थे, किसीने खयाल न किया । जवान हुए, तो हमारी अपनी ही आँखोंने राज खोल दिया । कुछ दिनों यह मजमून लड़के-लड़कियोंका दिलपसन्द मशगला बना रहा, इसके बाद बड़े-बूढ़ोंके कानों तक जा पहुँचा । नतीजा यह हुआ कि जहानआराका बाहर निकलना बंद हो गया । मुझपर पहाड़ टूट पड़ा । चारों तरफ़ घबराया-घबराया फिरता था । न दिनका आराम रहा, न रातकी नींद । अब नाउम्मीदी थी या ठंडी आहें थीं, या गरम आँसू थे । कुछ ही दिनमें सेहत खराब होने लगी । पानी न मिलनेसे पौधे मुरझाएँगे न तो और क्या होंगे ?

मेरे माँ-बाप मुझसे नाराज़ थे । कहते—तूने हमें कहीं मुँह दिखानेके लायक नहीं रक्खा । खूबसूरती देखी, अपनी हैसियत न देखी । ब्याह-शादियोंके रिश्ते बराबरवालोंमें हुआ करते हैं । हमारा उनका क्या मेल ? ज़मीन ज़मीन है, आसमान आसमान है । इन दोनोंमें क्या संबंध ? जब मेरी सेहत बिगड़ने लगी, तो उन्होंने परवा न की । मगर जब हालत ज्यादा खराब होने लगी; तो उनको भी फ़िक्र हुई । माँ-बाप बच्चेके रोने और रूठनेकी परवा करें या न करें; लेकिन उसे घरसे बाहर निकलते देखकर उनका दिल ठिकाने नहीं रहता । एक दिन मेरा बाप बहुत देरतक मुझे समझाता रहा । मगर पागल और प्रेमीको कौन समझाए ? मेरे दिलपर ज़रा भी असर न हुआ । मेरा बाप आखिर हारकर बोला—अच्छा, तू यह मानता है या नहीं कि हम ग़रीब हैं ?

मैंने सिर झुकाकर जवाब दिया—हाँ, मानता हूँ ।

बाप—और उसका बाप अमीर है । चाहे तो हमें ख़रीद ले, चाहे तो हमें नौकर रख ले ।

मैं—पता नहीं ।

बाप—पता नहींका बच्चा ! सब कुछ देखता है और फिर भी अन्धा बन रहा है ! हमारी उनके रूबरू हकीकत ही क्या है ? अपनी तरफ़

नहीं देखता, चला है इश्क करने । नासिरअली बड़ा ज़ालिम आदमी है । अगर उसे गुस्सा चढ़ गया, तो कोई इलजाम लगाकर सारे घरको बँधवा देगा । वह तो जानो, पड़ोसी होनेका लिहाज़ कर रहा है वर्ना अब तक कुछ कर चुका होता । अब भी भला चाहे, तो उसकी लड़कीका ध्यान छोड़ दे ।

मैं—आप तो यों ही .गुस्सेमें आ जाते हैं । मुझे उसका ज़रा भी खयाल नहीं ।

बाप—खयाल कैसे नहीं ? सारे शहरमें मिट्टी उड़ रही है । बेईमान कहींका ! कहता है, मुझे उसका खयाल नहीं । *Glindi Sem.*

मैं—अब आप न मानें, तो मैं क्या कर सकता हूँ ? *OSMANIA*

बाप—करना क्या है ? उसका खयाल दिलसे निकाल दे और समझ ले कि यह रिश्ता कभी न होगा; भगड़ा ख़त्म । (पुचकारकर) बेटा ! तूने मेरा कहा आजतक नहीं टाला । मुझे तुझपर हमेशा नाज़ रहा है । तू यह भगड़ा क्या ले बैठा ? बेहतर यही है, कि यह खयाल दिलसे निकाल दे ।

मैं—बहुत बेहतर ! मैं आजसे उसका नाम भी लूँ, तो जूते मारकर घरसे निकाल देना ।

बाप—शाबाश ! मुझे यही उम्मीद थी । मगर कोई ख़त-वत न लिख बैठना । पकड़ा गया, तो बड़ी बुरी बात होगी । उसका बाप बड़ा ज़ालिम है । बुरी तरह बदला लेगा ।

मैं—यहाँ फैसला कर चुके कि उसका नाम भी न लेंगे । उसका खयाल भी न करेंगे । वह अपने घर खुश; हम अपने घर .खुश ।

बाप—तो मैं अब बेफ़िक्र हो जाऊँ ?

मैं—पूरे तौरपर ।

बाप—बेटा ! ऐसे कामोंमें हमेशा बुराई निकलती है ।

मैं—आप बजा फ़र्माते हैं ।

बाप—खुदा तुम्हें हिदायत दे ।

मैं—अब आपको शिकायतका मौका न मिलेगा ।

मेरे बापने मुझे गलेसे लगा लिया और रोने लगा । मेरी आँखोंमें भी आँसू आ गए; मगर जहानआराका खयाल दिलमें उसी तरह मौजूद था ।

३

जहान आरा

अब कई-कई दिन बीत जाते हैं, और मुलाकात ही नहीं होती । खुदा इस दौलतको ग़ारत करे, मुहब्बतके बीचमें खड़ी है और हँसती है । मगर मुझे रोना आता है । मैं चाहती हूँ, कोई इस रुपए-पैसेको आग लगा दे, तो अमीरी-ग़रीबीका सवाल ही न रहे । अम्माजानने भी ग़ज़ब किया; अब्बाजानसे साफ़-साफ़ कह दिया । अब अब्बाजान उनकी जानके दुश्मन बने फिरते हैं । मालूम होता है, उनको भी ख़बर मिल गई है; इसी लिए इधरसे गुज़रना छोड़ दिया है । पहले हर रोज़ आते थे, अब कई दिनसे नहीं आए । सोचते होंगे, कहीं बात न बढ़ जाए । थुड़ी थुड़ी होने लगेगी । लोग तमाशा देखेंगे और हँसेंगे ।

लेकिन यह जुदाई कैसे सहूँ ? मुहब्बत और सब कुछ सह सकती है; पर जुदाई सहनी मुश्किल है । मेरी आँखोंमें दुनिया अँधेरी हो गई । कोई भी चीज़ अच्छी मालूम न होती थी; न मीठी, न नमकीन ।

बिमारीमें मुँहका ज़ायका ही बदल जाता है। उस समय हवा और रोशनी भी बुरी मालूम होती है।

सोच-सोचकर मैंने चोरी चोरी मिलनेका इरादा किया। कोई मुझे बुरा-भला न कहे, यह कुदरती था। पानी सीधा रास्ता बंद पाता है, तो इधर-उधरका रुख अख्तियार कर लेता है। मैंने अपने दिलके साथ कई दिन तक कशमकश की; मगर मुहब्बतने माँ-बापके खौफ़ और बदनामीके भूत दोनोंको पछाड़ दिया। मैंने अपनी सहेली ख़दीजासे कहा—जैसे भी हो, अपने यहाँ मुलाकात करा दो; नहीं तो मैं मर जाऊँगी।

ख़दीजाके ख़ाविंद मियाँ हलीम और मेरे बापसे बहुत अच्छे ताल्लुकात थे। ख़दीजाका भी हमारे यहाँ काफी आना-जाना था। उसपर हमारे घरवालोंको कभी शक न हो सकता था। ख़दीजाने मेरी तजवीज़ सुनी, तो डर गई। उसे अन्देशा था कि अगर किसीको इस मुलाकातका हाल मालूम हो गया, तो वह भी बदनाम हो जाएगी; लेकिन मेरे आँसुओंने उसका मुँह बन्द कर दिया, हारकर रज़ामन्द हो गई। दूसरे दिन उसके मकानपर हमारी मुलाकात हुई।

मैंने उन्हें देखा, तो डर गई। आदमी इतनी जल्दी इतना बदल सकता है, यह मैंने कभी न सोचा था। न आँखोंमें वह शोखी थी, न होठोंपर वह हँसी। बरसोंके बीमार मालूम होते थे। उन्होंने आते ही मुझे गलेसे लगा लिया और फूट-फूटकर रोने लगे। मेरा दिल भी बे-अख्तियार हो गया; मगर मैंने अपनी आँखोंको बे-अख्तियार न होने दिया और प्यार-भरे लहजेमें कहा—वाह ! क्या शक्लसूरत निकाली है ?

उन्होंने मेरी तरफ़ देखा और ठंडी आह भरकर जवाब दिया—जहान आरा ! यह सवाल मुझसे न पूछो, अपने दिलसे पूछो। मुझे ख़्वाबमें भी ख़याल न था कि हम इस तरह बेगाने हो जाएँगे। ग़ज़ब खुदाका

एकही शहरमें रहै और इतने दिन मुलाक़ात न हो । आज शुक्र है, तुम्हारी सूरत तो नज़र आई ।

मैं—बड़ी दिक्कतोंसे आई हूँ । अगर अब्बाजानको मालूम हो जाए, तो गरदन ही उड़ा दें ।

इक़बाल—बस-बस । ऐसी मनहूस बात मुँहसे न निकालो । मैंने भी बापसे वादा किया है, कि इधरका रुख़ भी न करूँगा । और देख लो (हँसकर) वादा पूरा कर रहा हूँ ।

मैं—तुम्हारा रंग-रूप ही बदल गया, पहचाने नहीं जाते । कुछ बीमार हो क्या ? किसी हकीमको दिखाओ; बेपरवाही ठीक नहीं । बीमारी बढ़ जाएगी तो सँभालना मुश्किल हो जाएगा ।

इक़बाल—मेरी दवा सिर्फ़ एक आदमीके पास है; मगर क्या करूँ ? वह दवा देता नहीं है ।

मैं—अरे ! ऐसा संगदिल कौन है वह ?

इक़बाल—ख़ानसाहब नासिरअलीका नाम तो तुमने सुना ही होगा ? वही संगदिल है वह ।

मैं—(शर्माकर) जाओ, तुम तो मज़ाक़ करते हो (थोड़ी देर बाद) मैं कहती हूँ, तुम्हें हो क्या गया है ?

इक़बाल—पहले अपना मुँह शीशेमें देख लो, फिर मुझे कहना ।

मैं—तुम इतनी फ़िक्र काहेको करते हो ?

इक़बाल—यही सोचता हूँ कि अब क्या होगा ?

मैं—जो .खुदाको मंज़ूर है, हो जाएगा । इस तरह रोने-धोनेसे हासिल खाक़ न होगा, सेहत भी खो बैठेंगे ।

इकबाल—जहान आरा मुझे । अपना आइंदा ज़माना बिल्कुल अंधेरा दिखाई देता है । मेरे दिलमें कोई कह रहा है, हमारी मुहब्बतका अंजाम अच्छा न होगा । तुम अमीर बापकी बेटी हो; मैं ग़रीब आदमीका बेटा हूँ और समाज कहता है, ग़रीबों और अमीरोंमें ब्याह-शादीका रिश्ता नहीं हो सकता ।

मैं—अगर कोई मुझसे पूछे, तो साफ़ कह दूँ कि मुझे रुपये-पैसेकी ज़रा भी परवा नहीं, मुझे तुम्हारी परवा है ।

इकबाल—और तुम्हारे बापका बस चले, तो मुझे आज ही गोलीसे उड़ा दे और तुम्हारी किसी अमीरसे शादी कर दे ।

मैं—दुनिया अंधी है, रुपया-पैसा देखती है, मुहब्बत नहीं देखती । अच्छा, मुझे यह तो बताओ, क्या बूढ़े कभी जवान न थे, जो जवानोंके दिलको नहीं समझते ?

इकबालने बेवसीसे कहा—जहान आरा ! तुम मुझसे छीनी जा रही हो । मैं सामने खड़ा अपने दिलकी यह बरबादी देखता हूँ और कुछ कर नहीं सकता । जी चाहता है ज़हर खा लूँ ताकि यह तबाही अपनी आँखोंसे तो न देखूँ ।

मेरे सीनेमें जैसे किसीने तीर चुभो दिया, आँखोंमें पानी आ गया । लेकिन मैंने हौसलेसे कहा—तुम मर्द होकर ऐसी बातें करोगे, तो मेरा क्या हाल होगा ? यों जान देना बुज़दिली है; बहादुर बनो ।

उन्होंने मेरी तरफ़ हैरानीसे देखा और कहा—जहान आरा ! तुम्हारा क्या मतलब है ?

मैं—मेरा मतलब है, कमर कसो, रुपया पैदा करो, फिर देखती हूँ, हमारे रास्तेमें कौन खड़ा होता है ?

इकबाल—मगर तुम्हारा बाप मेरा इन्तज़ार भी न करेगा । तुम खूबसूरत

हो, तुम्हारा बाप अमीर है, और दुनियामें अमीर बापकी खूबसूरत बेटीसे ब्याह करनेवालोंकी कमी नहीं।

मैं—मैं साफ़ कह दूंगी कि मुझे यह ब्याह मंजूर नहीं। कोई बाँधके थोड़े ही कर देगा।

इकबाल—तुम भी बड़ी भोली हो ! क्या तुम समझती हो, तुम्हारा बाप यह बर्दाश्त करेगा कि वह तुम्हारा ब्याह करना चाहे और तुम लोगोंके सामने इनकार कर दो ? ज़रा सोचो।

मैंने आँसू-भरी आँखोंसे उनकी तरफ़ देखा और पूछा—तो क्या ज़बरदस्ती मेरा ब्याह कर देंगे ?

इकबाल—अगर ज़बरदस्ती भी कर दें, तो उनको कौन रोक सकता है ? कोई भी नहीं—सब तुम्हारे खिलाफ़ बोलेंगे, उनके खिलाफ़ कोई भी न बोलेंगा। सब लोग उनकी बात करेंगे।

मैं रोने लगी। मैं चारों तरफ़ देखती थी, मगर मुझे बचावका कोई तरीका नज़र न आता था। इस अथाह अँधेरेमें रोशनीकी किरन कहाँ थी ? मैंने उनकी तरफ़ देखा। वह भी रो रहे थे। 'मेरा रहा-सहा सब-करार भी जाता रहा। मायूसी रोनेके सिवाय और कर ही क्या सकती है ?

४

इतनेमें दरवाज़ा खुला और ख़दीजा और उसका शौहर हलीम अन्दर आए। हम दोनों घबरा गए। मैं बुर्का ओढ़कर एक कोनेमें दबक गई, उनके चेहरेपर पसीना आ गया। मगर हलीमने हमें तसल्ली देते हुए कहा—मैं तुम्हारा ख़ैरख़्वाह हूँ, दुश्मन नहीं हूँ। हौसला रखो और मेरी दो बातें सुनो। खुदा तुम्हारी मदद करेगा।

हमारी जानमें जान आई । हलीमने उनके कन्धेपर हाथ रखकर कहा—औरतोंकी तरह रोना बेफ़ायदा है। तुम इधर रोते रह जाओगे, उधर ब्याह होजाएगा। इश्क़बाज़ी बच्चोंका खेल नहीं, जानबाज़ोंका मैदान है। मर्द बनो, मर्दानगी दिखाओ, कोशिश करो, चार पैसे कमाओ, गोया साबत करो कि तुम कुछ कर सकते हो। फिर देखता हूँ, किसमें हिम्मत है कि जहान आराकी तरफ़ आँख उठाकर भी देख जाए। जहान आरा तुम्हारी होगी।

ना-उम्मीदीमें उम्मीदका नाम भी बहुत कुछ होता है। मियाँ हलीमकी बात सुनकर उनका चेहरा चमकने लगा। बोले—क्या करके दिखाऊँ मैं? मुझे तो कोई रास्ता नहीं सूझता।

हलीमने मुस्कराकर कहा—अमीर बाप अपनी बेटी किसी ग़रीबको क्यों दे? ब्याह-शादियोंके रिश्ते बराबरवालोंमें होते हैं। इस वक़्त दो सूरतें तुम्हारी शादीकी हैं—एक तो यह कि नासिर अली ग़रीब हो जाए और तुम्हारी सतह पर आ जाए; दूसरी यह कि तुम अमीर हो जाओ और उसकी सतह पर पहुँच जाओ। पहली सूरत तुम भी पसन्द न करोगे; दूसरी सूरतका तुमपर दार-मदार है। जहान आरा हसीन लड़की है, उसके हाथका हक़दार वही हो सकता है, जो बहादुर हो और कुछ करके दिखा सके। इस हक़ीक़तकी रोशनीमें जवाब दो—क्या तुममें हिम्मत है?

उन्होंने सिर ऊँचा करके जवाब दिया—हिम्मत तो है, मगर ख़तरा यह है कि कहीं ख़ान साहब जहान आराका किसीसे ब्याह ही न कर दें। सारी उम्र रोता रहूँगा। कैसी आफ़त है? मैं मौक़ा चाहता हूँ, मुझे मौक़ा नहीं मिलता।

हलीम—मौक़ा तुम्हें मैं दिला सकता हूँ।

इक़बाल—क्या मतलब?

हलीम—वे मेरा कहना कभी न टालेंगे। मैं उन्हें इस बात पर रज़ामन्द कर लूँगा।

उम्मीदके खयालने उनका चेहरा रोशन कर दिया। बेसब्रीसे बोले—
कितनी मुद्दतके लिए ?

हलीम—अब यह क्या कह सकता हूँ ? दो-तीन सालसे ज़्यादा न मानेंगे। तुम कितनी मोहलत चाहते हो ?

इकबाल—तीन साल दिला दीजिए। मैं इसी बीचमें कुछ न कुछ करके दिखा दूँगा।

हलीम—मगर तुमने कुछ सोचा भी है, या यों ही पागलोंकी तरह हवामें क़िले बना रहे हो ? कहीं ऐसा न हो, बादमें कहो, तीन सालमें होता ही क्या है ? इसलिए पहले अच्छी तरह सोच लो, फिर बोलो। मैं अभी जाकर फैसला किए आता हूँ।

उनका चेहरा उम्मीदकी रोशनीसे रोशन था, बोले—जो साँचना था, सोच चुका। तीन साल बहुत हैं, आदमी चाहे तो इतनी मुद्दतमें पहाड़ उलट दे। आप इतनी मोहलत दिला दें, तो सारी उम्र दुआएँ देता रहूँगा। समझूँगा, आपने मेरी ज़िंदगी बचा ली।

हलीम चला गया। थोड़ी देर बाद लौटा, तो चेहरा कामयाबीकी खुशालीसे चमक रहा था। आते ही बोला—खाँसाहब बड़े गुस्सेमें थे। कुछ मानते ही न थे, पर मैंने रज़ामंद कर लिया। कहते हैं, तीन साल तक शादी न करेंगे। उन्हें यह मंज़ूर है।

ख़दीजाने झुककर मेरे कानमें कहा—शीरनी खिलाकर जाना। पहला मैदान फ़तह हो गया।

मैंने दोनों हाथ उसकी पीठपर मारे और प्यारके गुस्सेसे कहा—बड़ी बुरी

हो तुम ! मज़ाक़ करते शरम नहीं आती ? इतना भी नहीं सोचती, कि यह वक्त मज़ाक़का नहीं है ।

हलीम—मगर एक शर्त और भी है ।

इक़बाल—फ़रमाइए ।

हलीम—ख़त-किताबत न हो सकेगी ।

इक़बाल—बड़ी टेढ़ी शर्त है । मेरा दिल न मानेगा । ख़त आता जाता रहता, तो हिम्मत बनी रहती, हौसला बँधा रहता, मनमें उमंग भरी रहती । मगर खैर, यह भी मंज़ूर ।

हलीम—कहते हैं, अगर मेरे कानमें भनक भी पड़ गई कि यह शर्त टूटी है, तो मैं जहान आराको फ़ौरन् ब्याह दूँगा ।

इक़बाल—बहुत अच्छा, न लिखेंगे । जहाँ और सदमे हैं, वहाँ एक यह भी सही ।

मगर मुझे पूरी उम्मीद थी कि वह ख़त लिखना कभी बंद न करेंगे ।

५

दूसरे दिन वह चले गए । कहाँ ? यह किसीको भी मालूम न था । मुझपर पहाड़ टूट पड़ा । अब दुनियामें मेरा कोई भी न था । यहाँ तक कि मेरे माँ-बाप भी अपने न थे । अकेली बैठी रोया करती थी । जवानाँके वे रंगीन नग़मे, बहारके वे दिलनवाज़ कहकहे, न-मालूम, नाउम्भीदीके किस गोशेमें गुम हो गए ! मेरे लिए गरमीकी दुपहरियाँ और सरदीकी रातें थीं, जो काटे नहीं कटतीं । इसके सिवा मेरे लिए कुछ भी न था । इस उम्रमें लड़कियोंको कितनी ही खुशियाँ होती हैं, मुझे एक भी न थी । अक्सर सोचा करती, वह कहाँ होंगे ? क्या करते होंगे ? इस लम्बी-चौड़ी दुनियामें उनका अपना कौन है ? कब लौटेंगे ?

और किस हालमें लौटेंगे ? अपने अजीजोंके बारेमें हमारे दिलमें बुरे बुरे खयाल आया करते हैं। मेरे दिलमें खयाल आता, परदेसमें बीमार न हो जाएँ, कौन इलाज करेगा ? कौन दवा देगा ? कौन देखभाल करेगा ? बेपरवा हैं, अपना खयाल ही नहीं किया करते। फिर क्या होगा ? इसके आगे मैं न सोच सकती। नाउम्मीदीके अंधेरेमें खयालकी आँखें भी नहीं देख सकतीं। मायूसी के नाहमवार रास्तोंपर हिम्मतके पाँव भी नहीं बढ़ सकते।

इसी तरह फ़िक्र-चिन्ताके छः महीने बीत गए, मगर उनका कोई ख़त न आया। न मालूम हुआ कि कहाँ हैं और क्या करते हैं ? उनके माँ-बाप भी रोया करते थे; मगर मैं तो पागल-सी हो गई थी। हर रोज़ सोचती थी, आज ख़त आएगा। मगर दिन गुज़र जाता, कोई ख़त न आता और मैं मायूस होकर रोने बैठ जाती। ख़दीजा कहती थी, तू तो पागल हो गई है। अगर चिढ़ी नहीं आई, तो क्या हुआ ? तुझे भूल थोड़ा गया है। सोचता होगा, चिढ़ी पकड़ी गई, तो सारी मेहनतपर पानी फिर जाएगा। मगर इन बातोंसे मुझे इतमीनान न होता था। अन्दर ही अन्दर घुलने लगी। खुशीको ग़मका कीड़ा लग गया।

यरक़ानकी तरह इश्क़ भी पोशीदा नहीं रहता। उसका भी रंग बोलता है। मेरी हालत भी किसीसे पोशीदा न थी। माँ-बाप दोनों देखते थे और कुढ़ते थे; पर मुझसे कुछ कहते न थे। शायद डरते थे कि कुछ कहा, तो सामने बोलने लगोगी। जवान लड़की है, कहीं आँखोंका पानी न मर जाए। वे चुप थे, मगर वे ग़ाफ़िल न थे। एक दिन मालूम हुआ, मेरे निकाहका फैसला हो गया है; कोई बड़े इंजीनियर हैं, उनके साथ। मैं सन्नाटेमें आ गई। मुझे यह गुमान भी न था कि मेरे माँ-बाप मुझसे दगा करेंगे। मैं चारपाईपर लेट गई और फूट-फूट कर रोने लगी।

लेकिन रोनेसे क्या होता था ? मैं दौड़ी-दौड़ी ख़दीजाके घर गई और उससे बोली—देखती हो, यह क्या अंधेर होनेवाला है ? वह कहीं

दुनियाके धक्के खाते फिरते होंगे, यहाँ निकाहकी तैयारियाँ हो रही हैं! तीन सालका इकरार किया था, अभी तो छः महीने ही गुज़रे हैं। आखिर इस ऐहद-शिकनीके क्या माने?

ख़दीजाने ठंडी आह भरकर सिर झुका लिया।

मेरी आँखोंसे आगके शरारे निकलने लगे, तलमलाकर बोली—तो क्या तुम बिलकुल ही चुप रहोगी? जाकर अपने शौहरसे कहो, अब्बाजानसे मिलें और यह फ़ितना यहीं दबा दें। वरना बात बढ़ गई, तो फिर बहुत मुश्किल हो जाएगी।

ख़दीजाने मेरी तरफ़ देखा, और कहा—उन्होंने सब कुछ कहा है, मगर तुम्हारा बाप नहीं मानता। कहता है, मैंने इकरार न किया था, उसे टाला था। अब यह मौका मिला है, इसे न खोऊँगा।

मैं तीरकी तरह तनकर खड़ी हो गई और बोली—तो अब मुझे ही बोलना पड़ेगा। निकाहके वक्त मुँह फाड़कर कह दूँगी, मुझे यह रिश्ता मंजूर नहीं। समझते होंगे, लड़की है, क्या कर लेगी? यह मालूम नहीं। मुहब्बत और गुस्सा सब कुछ कर सकते हैं। किसीको मुँह दिखानेके काबिल न रहेंगे। सारे शहरमें बदनाम हो जाएँगे। सारी इज़ज़त और दौलत धरी धराई रह जाएगी।

मगर कहने और करनेमें बड़ा फर्क है। मुझसे कुछ भी न हो सका। वह नाज़ुक वक्त आया और गुज़र गया और मेरी ज़बान न खुल सकी। न किसीने कुछ सुना—न कोई बदनाम हुआ। मेरा निकाह हो गया।

६

हसन इक़बाल

मैं कलकत्ते पहुँचा। इस वक्त तक मैंने ज़रा भी न सोचा था कि वहाँ जाकर क्या करूँगा? सोचता था, पहले कलकत्ते पहुँच लें, फिर

देखेंगे, क्या होता है ? इतना बड़ा शहर है, क्या मेरे ही नसीबोंको आग लगी है ? मैं नहीं कह सकता, इसकी वजह क्या थी ? मगर मेरा दिल उम्मीदोंसे भरा था। मुझे यकीन हो गया था कि मैं कामयाबीके रास्तेपर चल रहा हूँ। पर कलकत्ते पहुँचकर दिल बैठ गया। खयाल आया—इस पुर-रैनक शहरमें, सभी बेगाने हैं, अपना कोई भी नहीं। सारे दिन शहरमें घूमता रहा, पर बिजलियों और रोशनियोंके इस बड़े शहरमें मेरे लिए अँधेरेके सिवाय कहीं जगह न थी। यहाँ तक कि रातके नौ बज गए। अब मैं घबराने लगा कि कहाँ जाऊँगा ? रातको कहाँ रहूँगा ? मेरा दिमाग काम न करता था। परदेसमें सबसे परेशानीकी चीज़ रात होती है और खासकर एक बे-ज़र, बे-घरके लिए, जिसे पढ़ रहनेको भी ठिकाना न हो। दिन इधर-उधर चल-फिरकर भी गुज़र जाता है, मगर रात कैसे कटे ? मैंने जेबमें हाथ डाला, सिर्फ़ पौने दो रुपए थे। और यह वह असासा था, जिसके बल-बूतेपर मैं कलकत्तेके बाज़ारोंमें कामयाबी जीतने आया था। किसी होटलमें इन पैसोंसे एक रातके लिए भी जगह न मिल सकी। मैं इधर-उधर फिरने लगा।

यकायक मेरे हाथपर किसीने एक इश्तिहार रख दिया। मैंने एक दूकानके सामने खड़े होकर देखा, खापरडे-सरकस-कंपनीका इश्तिहार था जिसमें एक एक्टर शेरोंको खुला छोड़कर उनके साथ खेलनेवाला था। मैं परेशान था। मेरे पास खाने-पीनेको सिवा ग़मके कुछ न था। लेकिन तफ़रीहकी स्वाहिश आदमीको हमेशा रहती है। मैं सरकस देखने चला गया। कल क्या होगा, यह खयाल न था, खयाल यह था, इस वक्त तमाशा देख लो। यह कंपनी बड़ी भारी कंपनी थी; बंदरों, रीछों, कुत्तों घोड़ों, हाथियोंके तमाशे देखकर लोग वाह-वाह करते थे ! मगर जब एक नौजवान मराठा खूँख़वार और वहशी शेरोंको खुला छोड़कर उनके साथ खेलने लगा, तो तमाम तमाशाइयोंके रोंगटे खड़े हो गए। शेर गुर्राते थे और नौजवान मुस्करा-मुस्कराकर उनको छोड़ता था और तुरी यह कि

नौजवानके पास सिवा होश-हवासके कुछ भी न था । देखते देखते नौजवानने अपना सिर एक शेरके मुँहमें दे दिया । लोगोंके दम रुक गए । चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था । किसी तरफसे भी आवाज़ सुनाई न देती थी । यह जिस्मकी चुस्ती-चालाकीका तमाशा न था, मौत और ज़िन्दगीका तमाशा था । लोग समझते थे, शेर इसे चबा जाएगा । मगर शेरने उसे जरा भी नुकसान न पहुँचाया । ज़िन्दगी मौतके मुँहमें गई, वहाँ कुछ देर ठहरी, कुछ देर खेली और ज़िन्दा बचकर लौट आई । नौजवानने शेरोंको इशारा किया, वे पालतू कुत्तोंकी तरह पिंजरेमें दाखिल हो गए । नौजवानने झुककर सलाम किया और चला गया । लोगोंने तालियोंसे आसमान सिरपर उठा लिया ।

अब सबकी ज़बानपर उसीका ज़िक्र था । लोग कहते थे, टिकटके दाम वसूल हो गए । वाह-वाह ! कैसा जाँबाज़ है ? शेरके मुँहमें सिर दे दिया । एक पुराने खयालका आदमी बोला—सब जादूका खेल है, शेर-वेर कुछ भी न थे, खयाली तसवीरें थीं । इसीको नज़रबन्दीका तमाशा कहते हैं । दूसरेने कहा, जादू न था; मगर ये शेर भी न थे, शेरकी खालमें आदमी थे । तीसरा बोला, वाह जनाब ! आदमी हों, तो इतनी तनख्वाह कौन दे ? कुछ मालूम भी है ? इसकी तनख्वाह तीन हजार है, तीन हजार ! आज नौकरी छोड़ दे, कल कंपनीमें उल्टू बोलने लगें । कुत्तों और बिल्लियोंके तमाशे कौन देखने आता है ? सब इसीकी दिलावरी देखने आते हैं । गर्जे कि जितने मुँह थे, उतनी बातें थीं ।

तमाशा खत्म हुआ, तो मैं भी लोगोंके साथ बाहर निकला । पर अब मैं वह मायूस परदेसी न था । मुझे नौजवान मराठाने कामयाबीकी राह दिखा दी थी । खयाल आया, रुपया कमानेका यही तरीका है । आदमी जानकी परवा न करे, तो दौलत पैरोंमें लौटती है । और दौलत आती है तो शोहरतको साथ लाती है । लोग अपने अपने घरोंको चले गए; मगर

मैं कहाँ जाता ? मेरा कोई घर न था । मैंने सरकसके गिर्द फिर फिरकर रात गुज़ार दी और सुबहको नौजवान मराठासे मिलने चला ।

उसने मेरी कहानी बड़े गौरसे सुनी और फिर मुस्कराकर कहा— मेरी भी यही जीवनी है । लड़की सुंदरी थी और उसका पिता अमीर था । परन्तु मैंने इन बातोंका ध्यान न किया । परिणाम वही हुआ, जो हुआ करता है । और मैंने प्रतिज्ञा की, मैं रुपया कमाऊँगा और मैंने कमाकर दिखा दिया—अब वह मेरी स्त्री है । और हम दोनों खुश हैं ।

मैंने लजाजतसे कहा—मैं परदेसी हूँ, मेरा यहाँ सिवा परमेश्वरके और कोई नहीं । अगर आप दस्तगिरी करें, तो शायद मुझे भी कामयाबी हो जाए । वरना मैंने यही फैसला किया है, कि हुगलीमें डूब मरूँ । नाकामयाबीसे मौत भली ।

मराठा मेरी बात काटकर बोला—भगवान्पर भरोसा रखो, वह सब कुछ कर देगा । परन्तु एक बात हृदयमें बाँध लो । रुपया कमाना आसान नहीं । जोखममें पड़ना होगा ।

मैं—मैं आगमें कूदनेको भी तैयार हूँ ।

मराठा—तुमने देखा, मैं शेरके मुँहमें जाता हूँ, तब जाकर रुपया मिलता है ।

मैं—खूब देखा, देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं ।

मराठा—लोग तनख्वाह देखते हैं, काम नहीं देखते । सिंहका नाम सुनकर मृत्युका चित्र सामने आ जाता है । मैं उसके मुँहमें सिर दे देता हूँ । यह आसान नहीं है ।

मैं—मैं सुनकर भी यकीन न करता कि आदमी यह भी कर सकता है । मगर अब तो आँखोंसे देख लिया ।

मराठा—पर मेरी स्त्री कहती है, अब यह धंधा छोड़ दो । शेर

फिर भी शेर है, राम जाने, किस समय आँखें बदल ले । स्त्री है, डर जाती है । बड़ी कठिनाईसे आता हूँ । मगर अब ज़्यादा दिन यह काम न कर सकूँगा । मुझे डर है, कहीं कंपनीको नुक़सान न पहुँच जाए । इसलिए मैं चाहता हूँ कि कोई मन-चला मुझसे यह विद्या सीख ले; मगर प्राण हरएकको प्यारे हैं, सब कानोंपर हाथ रखते हैं । कोई आगे नहीं बढ़ता ।

मैं—मैं तैयार हूँ । मुझे प्राण प्यारे नहीं हैं । अगर होते, तो आपके पास न आता, यह विद्या सीखनेकी ख़्वाहिश न करता, बढ़ बढ़कर बातें न बनाता । मुझे अज़मा कर देखिए ।

मराठा—तुम ज़रूर सीख लोगे । प्यार बुरा होता है जो आदमीसे कभी न हो, वह प्यारमें हो जाता है ।

मैं—मैं आपकी जानको सारी उम्र दुआएँ देता रहूँगा ।

मराठा—मुझे अब दुआओंकी भी चाह नहीं । बहुत ले चुका, और ले कर क्या करूँगा ? अब तुम आगे आओ, और दौलत और शोहरत कमाओ । मुझे खुशी होगी ।

मेरी खुशीका ठिकाना न था । कामयाबीकी सरज़मीन बहुत करीब, बिलकुल पास, दिखाई देती थी । कैसे अच्छे वक्त घरसे निकला था, आते ही काम बन गया ! मैंने मराठे की शागिर्दी की ।

७

छः महीने बाद कंपनीमें मेरे नामके डंके बजने लगे । कंपनी वही थी, कंपनीकी शोहरत वही थी, सिर्फ़ शेरोंका पहलवान बदल गया था । पहले मराठा नौजवान था, अब पंजाबी मुसलमान था । इश्तिहार निकलते, प्रोफ़ेसर इक़बालकी जाँबाजीके लासानी कर्तब जिसने न देखे, उसने कुछ

न देखा। मैं यह पढ़ता था और खुश होता था और कामयाबी अपने खुले दरवाजोंके साथ मुझे सामने दिखाई देती थी। मैं वही था, जो आजसे छः महीने पहले शेरोंका यही तमाशा देखकर दंग रह गया था; आज खुद मुझे देखकर लोग तालियाँ पीटते थे। जब मैं अपनी चमकीली वरदी पहनकर शेरोंके सामने जाता था तो लोग मुझे हैरानी और अकीदतसे देखते थे। कई दफ़ा मुझे अंदेशा होता था कि शायद आज रात मेरा आखरी तमाशा हो। अगर शेरने ज़रा भी मुँह दबा लिया, तो क्या होगा? मैं सहम जाता था। मेरी रगोंका खून सर्द हो जाता था। मेरा दिल मौतके खौफसे काँप उठता था। मैं चाहता था, नौकरी छोड़ दूँ, और घर लौट जाऊँ। मगर जहान आराकी मुहब्बत गिरे हुए हौसले सँभाल लेती थी। दुनियामें हुस्न और इश्क़ कितना काम करते हैं, इसका अंदाज़ा लगाना भी आसान नहीं। मैं काम करता रहा, रुपया कमाता रहा, अपनी खुशीके करीब पहुँचता गया।

इस बीचमें हमारी कंपनी कई रियासतोंमें भी गई। वहाँ मुझे राजों-महाराजोंसे बड़ी-बड़ी रक़में मिलीं। महाराजा सतगढ़ने दस हज़ार दिया, महाराज सिकंधीरने आठ हज़ार। मेरी तनख्वाह इसके अलावा थी। मगर मैं खर्च न करता था, बचाता था। यह रुपया मेरे लिए न था, मेरी जहान आराके लिए था, जिसका बाप चाँदीका भूखा था। जो ब्याह के लिए चाँदीसोने को ज़रूरी समझता था।

खुदा खुदा करके दो साल ख़त्म हुए और मैं अस्सी हज़ारके करीब रुपया लेकर अपने वतनको रवाना हुआ। इस वक़्त मेरे पाँव ज़मीनपर न पड़ते थे। उम्मीदोंके आसमानमें उड़ा चला जाता था। मैंने हलमिको सब कुछ लिख दिया था। सोचता था, शहरके लोग सुनेंगे तो हैरान रह जाएंगे। और जहान आराकी तो जानमें जान आ जाएगी। मेरे आनेका हाल सुनेगी, तो उछल पड़ेगी। पता नहीं, जुदाईका यह ज़माना ग़रीब दुखियाने कैसे गुज़ारा है! रो रोकर आधी

भी न रही होगी। चेहरेका रंग बदल गया होगा। पर अब खुश हो जाएगी। जाकर हलीमसे कहूँगा, उसके बापसे कहे, इकबाल कुछ बन गया है। अब आपको क्या एतराज़ है ?

फ़ंटियर-मेठ अपनी पूरी रफ़्तारसे उड़ा चला जाता था; मगर मैं बार बार झुँझला उठता था कि गाड़ी जल्द-से-जल्द रावलपिंडी क्यों नहीं पहुँच जाती। मैं चाहता था, यह तमाम फ़ासिला एक मिनटमें तय हो जाए। इन्तिज़ारकी आखिरी घड़ियाँ बहुत लम्बी होती हैं, उनका गुज़रना मुश्किल हो जाता है। लेकिन वक्तने किसीकी परवा कब की है ? गाड़ी अपनी रफ़्तारसे चलती रही। आखिर रावलपिंडीका स्टेशन आ गया। मैं गाड़ीसे बाहर निकला, स्टेशनपर कोई भी न था। न हलीम न कोई और। मैं स्टेशनसे बाहर निकला, और टैक्सी लेकर घर पहुँचा। इस वक्त मेरे दिलकी जो कैफ़ियत थी, उसे बयान नहीं किया जा सकता। मेरे माँ-बापको बेहद खुशी हुई। माँ बार-बार मेरी बलाएँ लेती थी, और पूछती थी—बेटा, तूने हमें एक ख़त भी न लिखा। मैं तो रो-रोकर अन्धी हो गई। मैं हँसता था, और कहता था—माँ, मैंने अस्सी हजार रुपया कमा लिया। अब हम अमीर हैं।

मेरे बापकी आँखें खुशीसे चमकने लगीं। मेरे सिरपर हाथ फेरकर बोला—नासिर अली कहता था, परदेस गया है तो क्या हो जाएगा ? क्या परदेसमें हुन बरसता है, जो उठा लाएगा।

मैं—हाँ, बरसता ही है, वरना मैं इतना रुपया कहाँसे उठा लाता ?

माँ—मगर बेटा, तू शेरके मुँहमें सिर कैसे दे देता था ? क्या तुझे माँका खयाल न आता था ?

मैं—शेर सधे हुए थे।

बाप—पर शेर तो थे। शेरोंका क्या एतबार ?

माँ—मैं अब न जाने दूँगी। मुझे रुपयेकी ज़रूरत नहीं।

मैं—मेरा अपना भी इरादा अब जानेका नहीं है। हाँ खान साहबका क्या हाल है आज कल?

बाप—मेरे सामने उसका नाम न लो, बड़ा बेईमान है।

मेरे दिलमें यकायक अन्देशा पैदा हुआ। क्या कहीं....मेरा दिमाग खोलने लगा। शामका वक्त था, अँधेरेमें मेरी माँने मेरे चेहरेकी कैफियत न देखी, और बोली—उसने इकरार करके पूरा न किया और तुम्हारे जानेके छः माह बाद बेटीका ब्याह कर दिया। तेरे दोस्त हलीमने बहुत समझाया, हमने भी बहुत कुछ कहा, मगर उसने एक न सुनी।

मेरा सर घूमने लगा। आँखोंके सामने शामके वक्त आधी रातका अँधेरा छा गया। अब मेरे लिए दुनियामें कोई दिलचस्पी, कोई रंगीनी न थी। मैं कैसा बद-किस्मत था! मैंने बाज़ी जीतकर हार दी! मुझे नासिर अलीपर गुस्सा था; मगर इससे भी ज्यादा गुस्सा जहान आरापर था। मैंने सर्द आह भरी और पूछा—जहान आराका क्या हाल है?

मेरे वालिद साहब बाहर चले गए।

माँ—उस बदनसीबका हाल क्या बताऊँ! जब तक ब्याही रही, उसके होठोंपर किसीने हँसी नहीं देखी। हर घड़ी रोती रहती थी। आखिर आज उसके दुखोंका स्वात्मा हो गया। मुहल्लेके लोग और हलीम उसीके जनाजेके साथ गए हैं।

मैं जहाँ बैठा था, वहीं बैठा रह गया। पहले बाज़ी हारी थी, अब उम्मीद भी हार गया। मेरे मुँहसे कोई आवाज़ न निकली, न आँखसे पानी निकला; मगर दिलमें आग लग गई। मैं थोड़ी देर चुप-चाप बैठा रहा, इसके बाद जोशसे उठ खड़ा हुआ। माँकी प्रमत्ता बोलती ही रह गई; मगर मेरे पागलपनके कान न थे। थोड़ी देर बाद मैं कब्रिस्तानमें जहान आराकी कब्र उखाड़ रहा था। अब मैं खुद नहीं बता सकता कि

उस वक्त मेरे सरपर कौन-सा भूत सवार था, न मुझे मालूम था कि मैं क्या कर रहा हूँ। दीन-दुनियासे बेख़बर क़ानूनसे बेपरवा, रातके अँधेरेमें एक पागल क़ब्र खोद रहा था, और उसे देखनेवाला सिवाय आसमानके तारों और ज़मीनके दरख़्तोंके और कोई न था।

मैंने लाश बाहर निकाली, और उसका मुँह चूमकर कहा—जहान आरा ! बता, तूने यह बेवफ़ाई क्यों की ? तूने तो मुझसे वादा किया था कि तू मेरा रास्ता देखेगी ? अब वह प्यार-मुहब्बतके क़ौल करार क्या हुए ? देख, तेरा प्यारा इक़बाल रुपया कमाकर लाया है, मगर तू यहाँ अँधेरेमें आ लेटी है। चलकर अपने हरीस बापसे कह, मेरा रुपया देखे, और तुझे मुझसे ब्याह दे। मैं अस्सी हज़ार लाया हूँ।

यकायक मुझे लाशमें हरकत-सी मालूम हुई। मैंने सीनेपर हाथ रखकर देखा, वह गर्म था। नब्ज़ टटोली, वह चल रही थी। मैं डर गया। मौतसे पागल भी डरता है। मैंने लाशको ज़मीनपर रख दिया, और आप दूर भाग गया। सरकस-कंपनीमें शेरोंके साथ हँस हँसकर खेलनेवाला बहादुर इस वक्त एक औरतकी लाशसे डर रहा था। हम जिंदोंकी निसबत मुद्दोंसे कहीं ज्यादा डरते हैं। इतनेमें जैसे अँधेरेमें बिजली कौंध गई। ख़याल आया, मुमकिन है, इसके दिलकी हरकत थोड़ी देरके लिए बंद हो गई हो, मरी न हो और अब फिर वह हरकत शुरू हो गई हो। हिकमतकी किताबोंमें ऐसे बीमारोंका ज़िक्र आया है। अब मेरी ख़ुशीका ठिकाना न था। मैंने जल्दीसे आगे बढ़कर जहान आराको गोदमें उठाया और सड़कपर आकर खड़ा हो गया। इतनेमें उधरसे एक मोटर गुज़री। मेरी मुश्किल हल हो गई। चंद दिनके बाद मैंने दस हज़ार रुपया वालिदको भेज दिया, और बाकी रुपया और जहान आराको लेकर काबुल चला गया।

राहत हुसैन

जहान आराकी मौत एक ऐसा दिल-खराश हादिसा है, जिसने मेरी ज़िन्दगी तबाह कर दी है। दुनिया में सब कुछ है, मगर मेरे लिए कुछ भी नहीं है। हर घड़ी उसीका हसीन चेहरा आँखों में फिरा करता है। क्या खबर थी कि मौतका फ़रिश्ता इतनी जल्दी उसकी ज़िन्दगीपर छापा मार लेगा। सुबह दफ़्तर गया, तो बिलकुल तंदुरुस्त थी; शामको लौटा, तो घरमें वह न थी, उसकी लाश थी। इतना भी तो न हुआ कि मरते वक्त दो बातें ही कर लूँ। या इलाज और खिदमत करके दिलकी हसरत ही निकाल लूँ। पहले खयाल नहीं आया, मगर अब मालूम होता है, कि उसके दिलमें कोई ग़म था, हर वक्त सहमी सहमी रहती थी; लेकिन मेरे सामने अपना ग़म उसने कभी ज़ाहिर नहीं किया। ऐसी वफ़ा-शुआर, ऐसी नेकनीयत, ऐसी खूबसूरत औरत कहाँ पाऊँगाँ ? जब याद आती है, दिलसे हूक उठती है और आँखों में आँसू आ जाते हैं। जी हर वक्त रोता रहता है। अलबत्ता उसकी बेटी इसमत आराको देखकर दिल बहल जाता है। वह न सही, उसकी निशानी ही सही। यही बहुत है।

१९२० का साल हिन्दुस्तानकी तारीख़में खास साल है। यह वह साल है, जब हिन्दुस्तानके मुसलमानोंमें हिजरतकी तहरीक शुरू हुई। हजारों मुसलमान अपना वतन छोड़कर अफ़ग़ानिस्तान चले गए। मैं पहले ही रंजीदा था, नौकरी छोड़ दी, और हिजरतकी तैयारियाँ करने लगा। ख़ान साहबको मुझसे बहुत मुहब्बत हो गई थी। मेरा इरादा सुनकर उनके होश उड़ गए। कई दिनतक समझाते रहे कि यह जोश सोडावाटरका उबाल है। तुमको क्या हो गया ? भले-चंगे बैठे हो, बैठे रहो। यहाँ अच्छी नौकरी है, कमाते हो, खाते हो, ऐश करते हो।

अफ़ग़ानिस्तान नई जगह, नए हालात, नए आदमी । खुदा जाने वहाँ कैसी पटे, कैसी न पटे ? दाना आदमी ऐसी ग़लती कभी नहीं करते । बुढ़ापेमें जहान आराकी मौतने कमर तोड़ दी है, और कोई लड़का है, न लड़की । अब तुम भी छोड़ जाओगे, तो हम बे-मौत मर जाएंगे । और कुछ नहीं, तो इसमत आराका ही खयाल करो । माँकी मौतसे पहले ही उदास रहती है, परदेसमें जाकर और भी उदास हो जाएगी । परदेसमें चारों तरफ़ देखेगी और रोएगी ।

मगर जब मेरे इरादेमें ज़रा फ़र्क़ न आया, तो हारकर वह भी तैयार हो गए । शहरमें शोर मच गया । लोग हैरान रह गए । उनको कभी खयाल भी न हो सकता था कि खान साहब जैसा आदमी भी हिजरत जैसी तहरीकमें शरीक हो जाएगा । लेकिन असली राज़की किसीको भी ख़बर न थी । रुपयोंका माल कौड़ियोंमें निकल गया; पर हमने परवा न की, और काबुल जा बसे । वहाँ सैकड़ों हिंदुस्तानी थे । उनको उम्मीद थी कि हुकूमत उन्हें सिर आँखोंपर उठा लेगी । और हुकूमतने उनकी मेहमान-नवाज़ी की भी । मगर उनका इतमीनान न हुआ । अलबत्ता हमारे साथ खास सुलूक खा रक्खा गया । दौलत घरमें भी काम आती है, बाहर भी । ग़रीबोंको कोई कहीं भी नहीं पूछता । वह घरमें भी रोते हैं, बाहर भी रोते हैं ।

वहाँ रहते हुए अभी तीन या चार ही महीने गुज़रे थे कि एक दिन कुदरतका हैरत-अंगेज़ करश्मा देखनेमें आया । शाम हो गई थी । मैं इसमत आराके लिए मिठाई और खिलौने लिए घरको लौट रहा था कि एक मकानकी खिड़कीमें एक चेहरा दिखाई दिया । मैं चौंक पड़ा । मेरे बदनका बाल-बाल काँप गया—यह जहान आराका चेहरा था; वही रंग, वही आँखें, वही नक्श-निगार । उसने मुझे देखा, और फ़ौरन ही पीछे हट गई । मगर मेरे पाँव वहीं गड़ गए । दिमाग़ मानता न था, अक्ल तस्लीम न करती थी । वह मर चुकी थी, मेरे सामने दफ़न हुई, मैंने

अपने हाथसे मिट्टी दी। रावलीपिंडीमें आज भी उसकी लाशपर पक्की कब्र बनी है, और यह इस जगह जिन्दा मौजूद है ! नहीं, मुझे धोखा हुआ है। यह मेरी अक्लका फूटूर है। यह मेरी आँखकी गलती है। यह वह न होगी, उसीके जैसी कोई दूसरी औरत होगी। मैं घर लौट गया; मगर इस बातका खयाल ज़हनसे न उतरा। सारी रात परेशान रहा, ज़रा नींद न आई। बार बार वही खिड़की नज़र आती थी। बार बार वही चेहरा दिखाई देता था, और मैं चकरा जाता था। दूसरे दिन मैं फिर उधरसे गुज़रा; लेकिन आज भरोखा बन्द था। मैंने कई चक्कर काटे; मगर भरोखा एक बार भी न खुला। मेरा शुबह बढ़ने लगा। शायद सचमुच मेरा शुबह ठीक हो। शायद सचमुच यह जहान आरा ही हो, जभी मुझे देखकर चौंक पड़ी थी। उसका रङ्ग बदल गया था। उसके मुँहसे, याद आता है, हलकी-सी चीख भी निकल गई थी ! कपड़े भी पंजाबियोंके-से थे, अफ़ग़ानोंके-से न थे। फिर खयाल आता, तेरा दिमाग़ चल गया है, वरना तुझे यह खयाल कभी न आता। मुहब्बतने तेरी निगाहोंको धोखा दे दिया है ! जहान आरा तेरे घरमें मरी, तेरे सामने मरी, जनाज़ा उठा, दफ़न हुई, कब्र बनी, और आज तू कहता है, वह जिन्दा है और तूने उसे देखा है। यह जनून नहीं, तो और क्या है ? दिमाग़का इलाज कर।

चन्द दिन इसी कशमकशमें गुज़रे। इसके बाद एक दिन फिर वह भरोखा खुला, और मैंने उसे देखा। वह शायद किसीकी राह देख रही थी। उसे मालूम न था कि कोई उसे देख रहा है। मैं उसे जितना देखता था, मेरा शक़ उतना ही बढ़ता जाता था। यकायक उसकी आँखें मेरी तरफ़ उठ गईं। डर, हैरानी और शर्मिंदगीकी ग़ैर-मामूली लहर-सी पैदा हुई, और वह बिजलीकी तेज़ीसे पीछे हट गई। अब मुझे यकीन हो गया कि यह वहीं है, कोई दूसरी नहीं। मगर फिर भी ज़रूरी था, कि मैं अपने यकीनकी तसदीक़ करूँ। चुनांचे मैं एक 'दूकानदारके पास गया, और उससे पूछा—क्यों बिरादर, यह मकान किसका है ?

दूकानदारने मुझ सिरसे पाँवतक देखा, और फिर कहा—तेरा हिन्दुस्तानी भाई है, रावलपिंडीका रहनेवाला। मुहम्मद इक़बाल या हसन इक़बाल कुछ इसी तरहका नाम है।

मेरा कलेजा धक धक करने लगा।

९

अब शककी ज़रा भी गुंजायश न थी। मैंने उसी वक़्त जाकर ख़ान साहबसे कहा—एक अजीब ख़बर सुनाऊँ ?

ख़ान साहब—ज़रूर सुनाओ।

मैं—आप हैरान रह जाएंगे।

ख़ान साहब—ऐसी ख़बर है वह, तो ज़रूर सुनाओ। मैं हैरान होना चाहता हूँ।

मैं—आप यकीन ही न करेंगे। कहेंगे, तुम पागल हो गए हो। आप कहेंगे, तुम्हारी अक़ल मारी गई है।

ख़ान साहब—अच्छा ! तो तारीफ़ रहने दो, पहले ख़बर सुनाओ। मैं ख़बर सुनना चाहता हूँ।

मैं—मुझे अंदेशा है, आप यकीन न करेंगे।

ख़ान साहब—अरे भई ! बात क्या है ? कुछ कहोगे भी या दीवाचा ही लिए जाओगे ?

मैंने रुक रुक कहा—जहान आरा जिंदा है।

ख़ान साहब चौंककर खड़े हो गए। उनको यकीन हो गया कि मैं पागल हो चुका हूँ। मेरी तरफ़ आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे।

मैं—खुदाए-बरतरकी क़सम ! मैंने उसे अपनी आँखोंसे देखा है।

आदमी कानों सुनी बात पर शक कर सकता है, मगर आँखों देखी बात पर कैसे शक करे ?

खान साहब—अरे मियाँ ! मुर्दे क़यामतसे पहले कभी न उठेंगे ।
मैं—मगर वह ज़िन्दा है ।

खान साहब—मालूम होता है, तुम्हारा सिर फिर गया है ।

मैं—अगर आप देख लें, तो आपका सिर भी फिर जाए । आप भी वही कहने लगें, जो मैं कह रहा हूँ ।

खान साहब—मैंने अपने हाथसे दफ़न किया, तुम्हारी बात कैसे मान लूँ ? तुमने ख़्वाब तो नहीं देखा है ? कहाँसे आ रहे हो ?

मैं—बाज़ारसे आ रहा हूँ । आप ज़रा मेरी आँखें देखिए, मैं पागल नहीं हूँ ।

खान साहब—मगर तुम्हारी बातें पागलोंसे भी बढ़कर हैं । जानते हो क्या कह रहे हो तुम ?

मैं—ख़ूब जानता हूँ ।

खान साहब—क्या जानते हो ?

मैं—यह कि जहान आरा ज़िन्दा है, और उसे मैंने अपनी इन दोनों आँखोंसे, अभी आध घण्टेसे .ज्यादा नहीं गुज़रा देखा है । रावलपिंडीके किसी मुहम्मद इक़बाल या हसन इक़बालके पास है ।

खान साहब चौंक पड़े—हसन इक़बाल ! वही हमारे पड़ोसी रहीम बख़्शका बेटा तो नहीं ?

मैं—यह .खुदा जाने ! नाम कुछ ऐसा ही है ।

खान साहब किसी गहरे ख़यालमें ग़र्क़ हो गए । मैंने कहा—मेरी रायमें वह मरी न थी, यह गहरी चाल थी । क्या अजब है, उसे कोई

दवा देकर बेहोश कर दिया गया हो, और दफ़न होनेके बाद फ़ौरन खोदकर निकाल लिया गया हो। वरना वह ज़िन्दा होकर यहाँ कैसे आ जाती। ज़रा सोचकर कहिए।

ख़ान साहब—यह तो अलिफ़लैलाके किस्सोंकी-सी बात हो गई। मगर मुझे अब भी यकीन नहीं आता। वह जहान आरा न होगी, कोई उसकी हमशक्ल होगी। तुमने दूरसे देखा है। दूरसे धोखा हो जाता है।

मैं—अपने दूर से भी पहचाने जाते हैं। मुझे इसमें ज़रा भी शुबह नहीं। एक दिन पहले भी देखा था। उस दिन शक हुआ था। मगर आज तो पूरा यकीन हो गया। आखिर उसके चेहरेका रंग क्यों उड़ गया ? ज़रूर वही है, और कोई नहीं है।

ख़ान साहब—(सोच-सोचकर) बड़े ही त-अज्जुबका मामला है। जितना सोचता हूँ, उतनी हैरानी बढ़ती है।

म—अब आपकी क्या राय है ?

ख़ान साहब—मैं क्या कहूँ मियाँ ? मेरी तो अक्ल काम नहीं करती। तुम्हारी जो मरज़ी हो, करो। मैं सिर्फ़ यह कहूँगा, कि जहान आरा ऐसी लड़की न थी कि ऐसी हरकतें करे।

मैं—काज़ी साहबके पास जाऊँ ? जैसा कहेंगे, वैसा करूँगा।

ख़ान साहबने ठंडी आह भरी, और हवामें देखने लगे।

१०

मैं भागा भागा काज़ी साहबके मकानपर पहुँचा। वह बहुत हमदर्दीसे पेश आए। हिन्दुस्तानी हाकिमोंमें ऐसी मुरब्बत और खुलूस-दिली मैंने कम देखी है। मेरा किस्सा सुनकर उनको भी हैरानी हुई। बहुत देर सोचते रहे, इसके बाद बोले—इज़्ज़तका सवाल है, मैं नहीं

चाहता कि यह मुकद्दमा खुली अदालतमें पेश हो । बड़ी बदनामी होगी । अगर तुम चाहो, तो घरपर बुलाकर फैसला कर दिया जाए । तुम्हारी क्या राय है ?

मैंने सिर झुकाकर जवाब दिया—आपका खयाल बजा है । आप सबको अपने मकान पर ही बुला लें ।

काज़ी साहबने पहले खान साहब और उनकी बीवीको बुलाकर एक कमरेमें बिठा दिया । इसके बाद हसन इक़बाल और उसकी बीवीके पास आदमी भेजा । मैं उम्मीद और ना उम्मीद के बीच में लटकने लगा ।

थोड़ी देर बाद दोनों आ गए । हसन इक़बाल निहायत खूबसूरत नौजवान था । चेहरेसे शराफ़त टपकती थी । उसपर किसी साजिशका गुमान भी न होता था । उसने बड़े तपाकसे पहले काज़ी साहबको, फिर मुझको सलाम किया, और बैठ गया । औरत बुर्का ओढ़े हुए थी । वह सिमटकर एक कोनेमें बैठ गई । काज़ीसाहबने मेरी तरफ़ देखा, मैंने काज़ीसाहबकी तरफ़ देखा ।

हसन इक़बालने पूछा—क्या हुक्म है ?

काज़ी साहब बोले—यह साहब कहते हैं, यह खातून इनकी बीवी हैं, और आप इसे किसी चालसे उड़ा लाए हैं । अब आप फ़रमाइए, आपके पास इसका क्या जवाब है ?

हसन इक़बालके चेहरेपर ख़फ़गीके आसार ज़ाहिर हुए । उसने मेरी तरफ़ ऐसी निगाहोंसे देखा, जिनका मतलब यह था कि तुम्हें यह हिम्मत कैसे हो गई ? इसके बाद काज़ीसाहबसे कहा—बिल्कुल नहीं, यह एक शरीफ़ मुसलमान और उसकी बीवीकी बदतरीन तौहीन है । और मुझे अफ़सोस है कि यह तौहीन करनेवाला एक मुसलमान है । मैं चाहता हूँ, वह मुझसे माफ़ी माँगे ।

मैं घबरा गया। हसन इक़बाल ऐसी दिलेरीसे जवाब देगा, यह मुझे खयाल न था। मगर काज़ी साहबने इसकी परवा न की और उस औरतसे पूछा—क्यों बेटी, तू बता, यह क्या मामला है ? क्या इनका इलज़ाम ठीक है ?

औरतने मुँहसे जवाब न दिया, सिर्फ़ सिर हिला दिया।

काज़ी साहब फिर बोले—मुँहसे जवाब दो। मैं मुँहका जवाब चाहता हूँ।

आहिस्तासे एक बारीक आवाज़ आई—मैं नहीं जानती, यह कौन हैं ? इनका इलज़ाम ग़लत है।

आवाज़ बारीक थी; मैंने पहचान ली। यह वही थी। आदमी शक़्क़ बदल सकता है; मगर आवाज़ नहीं बदली जा सकती। मेरे बदनसे पसीना छूटने लगा। मैंने जोशसे चिल्लाकर कहा—काज़ी साहब, मेरा ख़ुदा गवाह है, यह सचमुच मेरी बीवी है। मैं इसकी आवाज़ पहचानता हूँ। मैं इसकी आवाज़ लाखों में पहचान लूँ।

काज़ी साहब—मगर कोई सुबूत ? यह तो इनकार करते हैं।

मैं—(औरतसे) क्या तुम जहान आरा नहीं हो ? क्यों झूठ बोलती हो ? ख़ुदाका ख़ौफ़ करो।

औरत—(जल्दीसे) मैं रूहा हूँ। मैं जहान आरा नहीं हूँ। मैं किसी जहान आराको नहीं जानती।

काज़ी साहब—बुर्का उतार दो। अभी मालूम हुआ जाता है।

हसन इक़बालके चेहरेपर हवाइयाँ छूटने लगीं। घबराकर बोला—काज़ी साहब, एक शरीफ़ मुसलमान औरत किसी ग़ैर मर्दके सामने मुँह कैसे खोलेगी ? यह तो सोचिए।

काज़ी साहब—मैं मजबूर हूँ। बुर्का उतारना होगा।

औरतने बुर्का उतार दिया, मैं चौंकर पीछे हट गया। अब ज़रा भी शक न था, यह वही थी। वही जहान आरा, जो मर चुकी थी, और जिसकी जिन्दगीका राज़ हमारी समझसे बाहर था। पर उसके चेहरेपर ज़रा भी घबराहट न थी। औरत ऐसी हालतमें अपने औसानपर ऐसा काबू रख सकती है, यह मेरे लिए नया तजुर्बा था। मैं समझता था, बुर्का उतरते ही राज़ फ़ाश हो जाएगा। जहान आरा मेरे सामने सिर न उठा सकेगी। मगर ऐसा न हुआ। वह मेरी तरफ़ देख रही थी। और ऐसे, जैसे वह मुझे जानती भी न हो। ऐसे जैसे उसने कभी मुझे देखा भी न हो। ऐसे जैसे मैं उसके लिए बिल्कुल अजनबी था। मेरा दिल धड़कने लगा। खयाल आया, क्या मैंने दो सालमें अपनी औरतको भी नहीं पहचाना ?

इस मौक़ेपर ख़ान साहब अंदर आ गए। वह रो रहे थे। उनकी दाढ़ी उनके आँसुओंसे तर थी। उन्होंने आगे बढ़कर उस औरत के सिरपर हाथ रख दिया, और कहा—बेटी, खुदा जानता है, तू जहान आरा है। अब झूठ न बोल, हम तेरी ख़ता माफ़ कर देंगे। यह राज़ हम नहीं जानते। लेकिन तू मेरी बेटी है। तू दुनियाको धोका दे सकती है, पर बापकी आँखोंको धोका नहीं दे सकती। वह देख तेरी माँ है, वह रो-रोकर आधी भी नहीं रही—और तू हमारी बेटी है।

जहान आराने पहले ख़ान साहबकी तरफ़ देखा, फिर अपनी माँकी तरफ़ और इसके बाद मिन्नतें करके बोली—खुदाके लिए मुझे पागल न कर दो। मैं तुम्हारी बेटी की जगह हूँ मगर मैं जहान आरा नहीं हूँ। मैं सच कहती हूँ, मैं रुहा हूँ।

और उसके चेहरेपर इस वक्त भी कोई परेशानी न थी। अब मुझे भी शुबह होने लगा कि शायद यह जहान आरा न हो, कोई और ही हो। मैं अपनी जल्दबाज़ी और हिमाक़तपर पछुता रहा था, और न जानता था कि उनसे किन लफ़्ज़ोंमें माफ़ी माँगू ?

इसमत आरा नई जगह और नए आदमियोंको देखकर कुछ सहम-सी गई थी, इसलिए अपने नाना नानीके पीछे छिपी खड़ी थी। खान साहब और उनकी बीवीको रोते देखकर वह आगे बढ़ी। शायद सोचती हो कि यह रोते हैं, मैं चुप करा दूँगी। इतनेमें उसकी निगाह उस औरतके चेहरेपर पड़ी, जिसे हम सब जहान आरा समझ रहे थे और जो जहान आरा होनेसे इनकार कर रही थी। इसमत आरा वहीं रुक गई। उसने बड़े गौरसे उसकी तरफ़ देखना शुरू किया। कुछ देर वह इसी तरह फटी फटी आँखोंसे उसे देखती रही, जैसे उसे पहचान रही है। तब उसकी आँखोंमें एक अजीब-सी चमक पैदा हो गई। उसका चेहरा .खुशीसे चमकने लगा। उसने अपने माथेपर बिखरे हुए लम्बे बालोंको हाथसे पीछे हटाया, लपककर उसकी तरफ़ बढ़ी, और उसकी टाँगोंसे लिपटकर बोली—अम्मी !

अब उस औरतसे ज़ब्त न हो सका। देखते-देखते उसके चेहरेपर सुर्खी दौड़ गई, और आँखोंसे आँसू बहने लगे। उसने इसमतको उठाकर गलेसे लगा लिया, और उसके मुँहको, गालोंको, आँखोंको सिरके बालोंको पगलोंकी तरह चूमने लगी। इसमत माँके पागल प्यारसे बचरा गई, और उसके मुँहको अपने नन्हे-नन्हे हाथोंसे पकड़कर परे हटानेकी कोशिश करने लगी। मगर माँकी ममता मानती न थी। उसने उसे कसकर गलेसे लगा लिया, और फूट-फूटकर रोने लगी।

काज़ी साहब माँकी मुहब्बतका यह पाक नज़ारा देखकर बहुत मुतासर हुए, और भराई हुई आवाज़में बोले—जिस सचाईको हम मालूम न कर सके थे, वह इस लड़कीने मालूम कर ली। अल्लाह तआलाका शुक्र है कि मेरी छत तले बेइसाफ़ीका फैसला नहीं हुआ, वरना क़यामतके रोज़ मेरा दामन मजलूमोंके हाथमें होता। .खुदा बड़ा है, .खुदाके कायदे बड़े हैं। .खुदाकी तारीफ़ हो।

हसन इक़बाल

अब हमारे लिए सिवाय इक़बाल-जुर्मके कोई चारा न था। जहान आराको मैंने जैसा समझाया था, उसने वैसा ही किया। उसने शौहरकी तेज़ निगाहोंका मुक़ाबिला किया, और भिन्नकी नहीं। उसने माँ-बापकी आँखोंके आँसू देखे, और अपने आपको सँभाले रही। मगर बेटीको देखकर बेक़ाबू हो गई। वह अब रो रही थी। क़ाज़ी साहब सब कुछ समझ गए। उन्होंने मेरी तरफ़ क़हरकी निगाहोंसे देखा और कहा—ख़ुदाने फ़ैसला कर दिया कि तू झूठा है, और इसका इलज़ाम ठीक है। अब ख़ुदा और उसके ग़ज़बसे डर, और जो कुछ बीती है, साफ़-साफ़ कह दे। और अल्लाह मेहरबान है, और बख़्शिश करनेवाला है।

मैं इनकार न कर सका। मैंने तमाम वाक़्यात सिलसिलेवार बयान कर दिए, और आख़िरमें कहा—क़ाज़ी साहब ! माँ-बाप, शौहर और दुनियाके लिए यह मर चुकी थी। उन्होंने इसे दबा दिया था। वह इसका मातम कर चुके थे। अगर मैं दीवानगीकी हालतमें जाकर क़ब्र न उखाड़ लेता, तो यह दुनियाकी हवा और रोशनीमें कभी साँस न ले सकती। इसे मैंने जिंदा किया है। लाश इनकी थी, जिंदा जहान आरापर मेरा हक़ है। यह मेरी है, मुझे मिलनी चाहिए।

मगर क़ाज़ी साहबने कहा—नहीं। वह तेरी नहीं। अगर वह जिंदा है, और उसका तलाक़ नहीं हुआ, तो अपने शौहरकी है। वह शौहरको मिलेगी।

मैं—तो अब मुझे एक बात और कहनी है। जब यह होशमें आई, तो मुझे देखकर बहुत घबराई। यह मुझे चाहती थी, मेरे आनेकी ख़बर सुनकर ही इसके दिलकी धड़कन बंद हो गई थी। मगर इसके बावजूद

कहती थी, मेरे लिए दुनिया तुम्हारे वजूदसे खाली है, मेरा निकाह हो चुका है, और मेरा शौहर ज़िन्दा है। लेकिन इसके साथ ही शौहरके यहाँ जाते हुए भी इसकी रूह काँपती थी। इसका दिल एक तरफ़ दौड़ता था, दिमाग़ दूसरी तरफ़ दौड़ता था। यह पसोपेशमें थी। इसे दोनों तरफ़ तबाही-नज़र आती थी, एक तरफ़ दीनकी, दूसरी तरफ़ दुनियाकी। आखिर हमने फैसला किया, कि यह मेरे साथ रहे, मगर हम अपने आपसे बाहर कभी न हों। मैं खुदाकी और उसके रसूल पाककी क़सम खाकर कह सकता हूँ कि हम आज तक अपने इक़रारपर कायम हैं, और जहान आरा आज भी वैसी ही पाक-साफ़ है, जैसी क़ब्रमें थी। हम एक ही मकान में रहे हैं, मगर हमेशा एक-दूसरे से परे रहे हैं।

मेरी तक़रीर सुनकर सबके चेहरे खुशीसे चमकने लगे। काज़ी साहबने इतमीनानकी साँस लेकर कहा—तू गुनहगार है, मगर तू फ़रिश्ता है। किसीकी क़ब्र उखाड़ना शरियतकी रूसे गुनाह है, और इसकी सज़ा बड़ी सख़्त है। लेकिन चूँकि तू जुनूनकी हालतमें था, और इससे एक औरतकी ज़िंदगी बच गई है, इसलिए मैं इससे दरगुज़र करता हूँ। मगर तुझे औरत नहीं मिल सकती। यह इनकी है, (राहत हुसैनकी तरफ़ इशारा करके) इनको मिलेगी। और मैं हुक्म देता हूँ, कि यह इनके साथ जाए। शरियतका यही फैसला है।

खान साहब और राहत हुसैनने मेरी मदद और शराफ़तका शुक्रिया अदा किया, और जहान आराको अपने साथ ले गए। उसके क़दम सुस्त थे, मगर वह जा रही थी। उसी दुनियामें, जहाँ फ़र्ज़की पाबदियाँ थीं, पर मुहब्बतकी खुशियाँ न थीं। मैं देखता रह गया। कितनी दूर भागकर आए थे, मगर हमारी बद-किस्मतीने यहाँ भी पीछा न छोड़ा। चार दिनमें आ पकड़ा।

वह अब राहत हुसैनकी थी। मेरा उससे कोई वास्ता न था। हम अब बेगाने थे। मगर मेरे दिलने अब भी न माना, और मैं उनके पीछे

पीछे चला । यहाँ तक कि वे अपने मकानके पास पहुँच गए । मैंने ठंडी आह भरी, और वापस मुड़ा । यकायक मुझे कुछ शोर-सा सुनाई दिया । मैंने पीछे मुड़कर देखा, जहान आरा दरवाज़ेमें गिर पड़ी थी, और राहत हुसैन उसके ऊपर झुककर उसे सँभाल रहा था । और खान साहब और उनकी बीवी सामने खड़े काँप रहे थे ।

मैं दौड़कर उनके करीब चला गया, और घबराकर बोला—क्यों क्या हुआ ?—क्या हुआ ?

राहत हुसैन—इक़बाल ! दौड़कर किसी हकीमको बुलाओ । जहान आरा बेहोश हो गई है ।

हकीमने आकर देखा, और मायूसीसे सिर हिला दिया । जहान आरा मर गई, मगर उसने दीन और दुनिया दोनों बचा लिए । इसमत रोती थी, मगर उसकी माँ चुप थी । उसके आंसू सदा के लिए खुरक हो चुके थे ।

राहत हुसैनने मुझसे मुख़ातिब होकर कहा—तुमने लाश ली थी, लाश ही दी । तुमने कहा था, हमारा हक़ जहान आरापर नहीं, जहान आराकी लाशपर है, तुम्हारा कहा पूरा हो गया । वह मेरे पास आकर भी मेरे पास न रही । काज़ीने दिला दी थी, खुदाने छीन ली । अब सबके सिवा चारा ही क्या है ।

मैंने सिर झुका लिया, और आँखोंके आँसू पोंछने लगा । मगर सोचता हूँ, क्या यह आँसू कभी खुरक भी होंगे ।

हेर-फेर

१

एक गरीब मज़दूर सारा दिन लहू-पसीना एक कर देनेवाली मेहनत करनेके बाद, साँझके समय दो आने पैसे अपनी फटी-पुरानी चादरके कोनेमें बाँधकर शहरसे निकला और मज़दूरोंकी बस्तीकी तरफ़ रवाना हुआ। बहुत दूरी पर उसने अपने कच्चे भोंपड़ेके धुएँको आकाशमें चक्कर काटते देखा, और देखते ही समझ गया कि उसकी माँ उसके लिए खाना बना रही है।

वह नंगे सिर, नंगे पाँव जा रहा था। उसके घरमें सिवाय उसकी बूढ़ी माँके और कोई सगा-संबन्धी न था। उसके घरमें सिवाय एक चूल्हे और दो चार बर्तनोंके और कोई साज़-सामान न था। मगर वह फिर भी खुश था—उसकी चादरमें दो आने पैसे बँधे थे।

सामनेसे एक बारात आ रही थी। मज़दूरने उसे देखा और उसे ख्याल आया, मुमकिन है, कभी मेरा भी ब्याह हो, और मैं भी बारात लेकर ब्याहने निकलूँ। उस समय मैं कितना खुश हूँगा, मेरे साथ साथ बाजे बज रहे होंगे, और—। बारातके आगे चलनेवाले नौकरोंने उससे कहा—एक तरफ़ हट जा।

मजदूरके व्याहकी काव्य-कल्पना मिट्टीमें मिल गई। वह खीझकर बोला—क्यों हट जाऊँ ? सड़क सिर्फ तुम्हारे लिए नहीं है, इसपर हम भी चल सकते हैं।

बारातवालोंने उसकी चादर फाड़ दी, और उसे उठाकर सड़कके किनारे भाड़ियोंमें फेंक दिया।

बारात चली गई। बारातके बाजोंका शोर धीरे धीरे दूर जाकर शहरके प्रकाशमें गायब हो गया। अब वहाँ अकेला मजदूर था। उसके चारों तरफ़ रातका सन्नाटा था, निराशाका अँधेरा था और दुखी दिलकी आहें थीं। वह घुटनोंके बल ज़मीनपर बैठ गया और अपनी सजल आँखें आकाशकी तरफ़ उठाकर बोला—हे प्रभो ! हमारे पास न धन-दौलत है, न महल अटारियाँ, न नौकर-चाकर। फिर तूने हमें क्यों पैदा किया है ? क्या सिर्फ़ इस लिए कि अमीरोंके नौकर आएँ और हमें उठा कर सड़कके किनारे फेंक दें। आखिर दुनियाको हमारी क्या ज़रूरत है ?

२

कई साल बीत गए।

मजदूरने जी-जान तोड़कर काम किया। दिनका आराम बेचा, रातकी नींद बेची, शतरंजकी चालें चलीं, छल कपट धोखेसे धन कमाया, और धनी बन गया।

अब वह मजदूर न था, शहरका नामी रईस था। उसके सन्दूकोंमें रुपये और मुहरें थीं। उसके रहनेको बड़ा भारी महल था। उसकी सेवा करनेको दास और दासियाँ थीं। उसकी सवारीको घोड़े और पालकियाँ थीं, और लोग उसके सामने सिर झुका कर आते थे।

एक दिन, साँझके समय वह पालक़ीपर सवार होकर अपने घरको

लौट रहा था कि एकाएक उसकी पालकी रुक गई । उसने पूछा—
क्या है ?

नौकर—सरकार, मज़दूरोंकी बारात आ रही है । OSMAN.

धनी—उन्हें कहो, एक तरफ़ हट जाएँ ।

नौकर—वह कहते हैं, सड़क सिर्फ़ तुम्हारे लिए नहीं है । इसपर हम
भी चल सकते हैं ।

धनी—पाजियोंको डंडे मार कर भगा दो । ये हमारा रास्ता क्यों
रोकते हैं ?

डंडा बरसने लगा । मज़दूर चीखें मारते हुए इधर उधर भागने लगे ।
थोड़ी देरमें वहाँ एक भी मज़दूर न था । मगर उनकी चीखोंसे अमीर
पालकी-सवारका दिमाग़ खराब हो गया । उसने कहा—मुझे पालकीसे
उतार दो । मैं आराम करूँगा ।

नौकरोंने सड़कके किनारे ग़ालीचे बिछा दिए और अपने मालिकको
आरामसे बिठा दिया । और उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे वह यहाँ कभी
पहले भी बैठ चुका है । शायद पहले जन्म में ।

इस समय उसका शरीर अपनी पोशाकमें गरम था, उसके सामने
उसके नौकर हाथ बाँधे खड़े थे, और शहरमें उसके राजसी महलका
द्वार उसके लिए खुला था ।

वह नरम ग़ालीचेपर पालथी मारकर बैठ गया, और अपनी आँखें
आकाशकी तरफ़ उठाकर बोला—हे प्रभो ! इन आभागे मज़दूरोंके पास
न धन-दौलत है, न महल अटारियाँ, न नौकर-चाकर । फिर तूने
इन्हें क्यों पैदा किया है ? क्या सिर्फ़ इस लिए कि यह हम लोगोंके
रास्तेमें आ खड़े हों और हमारा समय नष्ट करें । आखिर दुनियाको
इनकी क्या ज़रूरत है ?

• हमार कइ और प्रकाशन

नगीने : (कहानी-संग्रह) मौलिक, ले. पं. सुदर्शन

‘नगीने’की एक एक कहानी एक नगीना है, और खासकर इन संग्रहकी ‘आप बीती’ तो इसका मुकुट-मणीही है । सजिल्द : पृष्ठ संख्या २०८, मू. ३)

गांधीजीकी यूरोप-यात्रा : ले. म्यूरिअेल लेस्टर, अनु० श्री ‘रंजन’ शर्मा
[श्री प्यारेलालजीकी प्रस्तावनाके साथ]

लन्दनमें आयोजित द्वितीय गोलमेज-परिषदके समय गांधीजीने उक्त परिषदके अलावा इंग्लैण्ड और यूरोप के जिन विभिन्न प्रसंगोंमें योग दिया उनके रेख-चित्रोंकी एक गांधीवादी विदूषी द्वारा भारतको अनुपम देन ! उक्त परिषद् सम्बन्धी आजतक प्रकाशित पुस्तकोंमें केवल यही एक ऐसी पुस्तक है जिसमें स्व० सम्राट् पंचम जार्जसे हुआ गांधीजीकी मुलाकात का विस्तृत वर्णन दिया गया है । सचित्र : पृ. १५८ : मू. २।)

गांधीजीके सम्पर्कमे : सरदार पटेलके आशीर्वचनके साथ; सं. श्री चंद्र-शंकर शुक्ल : गांधीजीके दैनंदिन जीवनके सत्य, शिव, सुन्दर स्वरूपका दर्शन करानेवाली कृति, जो उनके अनुयायी, प्रतिगामी और निरपेक्ष ऐसे : ३२ स्त्री-पुरुषोंकी कलमसे उतरी है और अन्ततक अप्रकाशित थी । सजिल्द, सचित्र, पृष्ठ संख्या २२४ मू. ३।)

नेताजी सुभाषचंद्र बोस : सं. प्रल्हाद ब्रह्मभट्ट; अनु० सुधाकर त्रिवेदी एक ऐसा बेजोड़ जीवन-चरित्र जो सदियोंतक किसी भी देशाभिमानकी अपनी आजादी के लिये लड़नेकी प्रेरणा देता रहेगा । सचित्र, सजिल्द, मू. ३)

आम्रपाली : (उपन्यास) ले. रामचन्द्र ठाकुर; अनु० ‘दर्शन’ बौद्धकालीन भारतकी एक कोमलांगी ललनाके संघर्षमय जीवनका औपन्यासिक चित्रण जो रजतपटपर भी गुण-गौरवका विषय बना । श्री. कन्हैयालाल मुंशी, इतिहासवेत्ता स्व० ओझा आदि द्वारा प्रशंसित । सजिल्द, पृष्ठ संख्या २६४, तिरंगी जेकेट, मूल्य ४)

अंगूठीका मुकदमा (लडकोके लिये कहानिया) ले. पं. सुदर्शन. सुन्दर छपाई, सुन्दर चित्र. मूल्य १)

शेषदान (कहानी-संग्रह) मौलिक ले. वीरेन्द्र कुमार

[भूमिका : श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी]

अभिनव कहानी-संग्रह, सुन्दर शैली, उत्कृष्ट चित्रण, मू. २॥।)

जीवन-विहार (निबंध संग्रह) ले. काका साइब कालेलकर मूल्य, २)

कृपा-किरण (प्राण शंकर) ले. “ रैहान ” मूल्य, १॥।)

मुद्रक—आर. आर. बाखले, बम्बई वैभव प्रेस, सॅन्डहर्स्ट रोड, बम्बई नं. ४

प्रकाशक—अम. के. वोरा, वोरा ऐंड कंपनी, पब्लिशर्स, लिमिटेड,
३, राउंड बिल्डिंग, बम्बई नं. २

